हिंदी साहित्य का इतिहास

एम.ए., हिन्दी Semester-II, Paper-I

अनुपालन और पाठ लेखक

डॉ. मंजुला

एम.ए., एम, फिल., पी-एच.डी.
हिन्दी विभाग
रामकृष्ण हिंदू हाई स्कूल
अमरावती, गुंटूर।

निर्देशक

डॉ.नागराजूबट्टू

एम.एच.आर.एम., एम.बी.ए., एल.एल.बी., एम.ए., (मनो) एम.ए., (सामा) एम.ई.डी., एम.फिल., पी-एच.डी
दूरस्थ शिक्षा केंद्र, आचार्य नागार्जुना विश्वविद्यालय
नागार्जुना नगर-522510
Phone No-0863-2346208, 0863-2346222, Cell No. 9848477441
0863-2346259 (अध्ययन सामग्री)
Website: www.anucde.info
E-mail: anucdesemester2021@gmail.com

एम.ए., हिन्दी

First Edition: 2021

No. of Copies:

©**Acharya Nagarjuna University**

This book is exclusively prepared for the use of students of एम.ए., हिन्दी Centre for Distance Education, Acharya Nagarjuna University and this book is meant for limited circulation only.

Published by:

Dr. NAGARAJU BATTU,
Director

Centre for Distance Education,
Acharya Nagarjuna University

Printed at:

FOREWORD

Since its establishment in 1976, Acharya Nagarjuna University has been forging ahead in the path of progress and dynamism, offering a variety of courses and research contributions. I am extremely happy that by gaining 'A' grade from the NAAC in the year 2016, Acharya Nagarjuna University is offering educational opportunities at the UG, PG levels apart from research degrees to students from over 443 affiliated colleges spread over the two districts of Guntur and Prakasam.

The University has also started the Centre for Distance Education in 2003-04 with the aim of taking higher education to the door step of all the sectors of the society. The centre will be a great help to those who cannot join in colleges, those who cannot afford the exorbitant fees as regular students, and even to housewives desirous of pursuing higher studies. Acharya Nagarjuna University has started offering B.A., and B.Com courses at the Degree level and M.A., M.Com., M.Sc., M.B.A., and L.L.M., courses at the PG level from the academic year 2003-2004 onwards.

To facilitate easier understanding by students studying through the distance mode, these self-instruction materials have been prepared by eminent and experienced teachers. The lessons have been drafted with great care and expertise in the stipulated time by these teachers. Constructive ideas and scholarly suggestions are welcome from students and teachers involved respectively. Such ideas will be incorporated for the greater efficacy of this distance mode of education. For clarification of doubts and feedback, weekly classes and contact classes will be arranged at the UG and PG levels respectively.

It is my aim that students getting higher education through the Centre for Distance Education should improve their qualification, have better employment opportunities and in turn be part of country's progress. It is my fond desire that in the years to come, the Centre for Distance Education will go from strength to strength in the form of new courses and by catering to larger number of people. My congratulations to all the Directors, Academic Coordinators, Editors and Lesson-writers of the Centre who have helped in these endeavors.

Prof. P. Raja Sekhar
Vice-Chancellor (FAC)
Acharya Nagarjuna University

SEMESTER - II

PAPER - I : HISTORY OF HINDI LITERATURE

201HN21 - हिन्दी साहित्य का इतिहास (आधुनिक काल)

पाठ्य पुस्तकें :

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ।
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास - संपादक, डॉ, नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 23 दरियागंज, नई दिल्ली -110 002 ।

पाठ्यांश :

अ. आधुनिक काल : पृष्ठभूमि और काव्यः आधुनिक काल का सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक संदर्भ, भारतीय नवजागरण और राष्ट्रीय आन्दोलन, नवीन साहित्यिक चेतना का विकास, नये रूप और भाषा - शैली, भारतेंदु युग, द्विवेदी युगीन काव्यधारा, छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता और समकालीन कविता, काव्य धारा का सामाजिक संदर्भ और प्रवृत्तिमूलक ऐतिहासिक विकास और प्रमुख कवि ।

आ. आधुनिक काल : गद्य साहित्य - आधुनिकता बोध और साहित्यिक प्रवृत्तियाँ, हिन्दी साहित्य के संदर्भ में । निबन्ध विधा : ऐतिहासिक विकास एवं वर्गीकरण, प्रतिनिधि रचनाएँ और रचनाकार ।

उपन्यास विधा : ऐतिहासिक विकास और वर्गीकरण, प्रतिनिधि रचनाएँ और रचनाकार ।

कहानी विधा : ऐतिहासिक विकास और नया रूप, प्रतिनिधि रचनाएँ और रचनाकार ।

अन्य विधाएँ : एकांकी, रेडिया नाटक, रेखाचित्र, संस्मरण आदि । ऐतिहासिक विकास और वर्गीकरण, प्रतिनिधि रचनाएँ और रचनाकार । समसामयिक समाजिक सांस्कृतिक समस्याएँ और हिन्दी का समकालीन गद्य साहित्य ।

सहायक ग्रंथ :

1. हिन्दी साहित्य - उद्‌भव और विकास, हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, 8 - नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली - 110 012 ।
2. हिन्दी साहित्य का अतीत (भाग -1) विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, वाणी वितान प्रकाशन, वारणासी ।
3. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - रामकुमार वर्मा, इलाहाबाद ।
4. हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी - नन्ददुलारे वाजपेयी, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद ।
5. हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास - राजनाथ शर्मा - विनोद पुस्तक मंदिर, रांगेयराघव, अव आगरा - 2 ।

Dr. K. SRIKRISHNA, M.A.,Ph.D
Asst. Co-ordinator
DEPARTMENT OF HINDI
ACHARYA NAGARJUNA UNIVERSITY
NAGARJUNA NAGAR - 522 510

विषय

	नुक्रमनिका	पृष्ठ संख्या
1	आधुनिक काल - पृष्ठभूमि - राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि और नव - जागरण	1.1 – 1.17
2	भारतेन्दु युगीन कविता	2.1 – 2.9
3	द्विवेदी युगीन कविता	3.1 – 3.13
4	छायावादी काव्यधारा- प्रमुख कवि एवं काव्य	4.1 – 4.11
5	प्रगतिवादी काव्यधारा - प्रतिनिधि कवि एवं काव्य	5.1 – 5.13
6	प्रगतिवादी काव्यधारा - प्रतिनिधि कवि एवं काव्य	6.1 – 6.12
7	नई कविता एवं समकालीन कविता-प्रतिनिधि कवि एवं काव्य	7.1 – 7.5
8	आधुनिक काल : गद्य साहित्य का विकास	8.1 – 8.17
9	उपन्यास विधा	9.1 – 9.13
10	कहानी विधा	10.1 – 10.11
11	अन्य विधाएँ	11.1 – 11.26

1. आधुनिक काल - पृष्ठभूमि - राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि और नव - जागरण

हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल सन् 1900 से शुरु होता है। इस काल को क्यों आधुनिक काल कहा गया है। इसे लेकर अनेक मतभेद हैं। आधुनिक काल नामकरण में 'आधुनिक' शब्द काल बोध एवं प्रवृत्ति बोध करानेवाला शब्द है। आधुनिक शब्द प्राचीन शब्द का विलोमी पर्यायवाची शब्द है। यानी जो प्राचीन नहीं है वह आधुनिक है। इस दृष्टि से आधुनिक शब्द का अर्थ अर्वाचीन है। साहित्येतिहास के संदर्भ में आधुनिक शब्द का यह अर्थ ग्रहण अत्यधिक सतही स्तर का माना जा सकता है। क्यों कि इसके अनुसार 10 वीं सदी की रचना से 11 वीं सदी को रचना आधुनिक है और अर्वाचीन है। परन्तु 11 वीं सदी की रचनाओं को आधुनिक रचनाओं के रूप में मानना उचित नहीं हैं। इस दृष्टि से आधुनिक शब्द काल बोध शब्द के रूप में सही नहीं लगता है। साधारणतया सन् 1875 के बाद के साहित्य को हिन्दी में 'आधुनिक साहित्य' माना जाता है। हिन्दी में इस दृष्टि से आधुनिक साहित्य की एक निश्चित काल सीमा है। इस निश्चित काल सीमा के बाद लिखे गये संपूर्ण साहित्य को 'आधुनिक साहित्य' माना जाता है। यहाँ सन् 1875 तारीख काल बोध कराते हुए भी आधुनिक शब्द का बोधक नहीं है। आधुनिक शब्द यहाँ स्वभाव बोधक व प्रवृत्ति बोधक है। आधुनिक शब्द प्रवृत्तिपरक नवीनता किंवा स्वभावपरक नवीनता को द्योतन करता है। यानी अपने पूर्व युग से (प्राचीन युग) प्रवृत्ति व स्वभाव की दृष्टि से नवीन साहित्य को आधुनिक साहित्य माना गया है। साहित्यिक प्रवृत्ति का बदलना व साहित्यिक स्वभाव का बदलना ही इस आधुनिक साहित्य का मूल आधार माना जा साकता है साहित्य और जीवन के परस्पर संबंध, साहित्य के प्रति लेखक की दृष्टि, लेखकीय जीवन का संघर्ष आदि साहित्यिक प्रवृत्ति या साहित्यिक स्वभाव का नियमन करते हैं।

आधुनिक काल अपने पूर्व युगों से सर्वथा नए बदलाव को लेकर आया युग है। फिर साहित्यिक स्वभाव व साहित्यिक प्रवृत्ति में आये बदलाव का रेखांकन तुलनात्मक दृष्टि से ही संभव है। पूर्व युग के स्वभाव को जाने बिना बाद के युग में हुए बदलाव का रेखांकन संभव नहीं हो पाता है। इस दृष्टि से आधुनिक साहित्य के स्वभाव को रेखांकन करने के लिए उसके पहले के युग के साहित्यक स्वभाव की पहचान करनी होगी। उसके परिप्रेक्ष्य में साहित्य में अगर कोई बदलाव आया है तो ही उसे स्वीकार करना होगा। यह निर्विवाद है कि हिन्दी का आधुनिक साहित्य अपने पूर्व युग रीतिकाल के साहित्य से स्वभाव व प्रवृत्ति की दृष्टि से अलग था। साहित्य के स्वभाव व प्रवृत्ति में आये

बदलाव के आधार पर ही 'आधुनिक युग' या 'आधुनिक साहित्य' का नामकरण किया गया है। प्रश्न उठता है कि आधुनिक साहित्य का स्वभाव या प्रवृत्ति अपने पूर्व युग रीतिकाल के स्वभाव या प्रवृत्ति से किन किन मामलों में भिन्न थी। भिन्नता की मात्रा और स्वरूप क्या था। अर्थात आधुनिक साहित्य को आधुनिक कहने के पीछे स्वभावगत एवं प्रवृत्तिगत बोधक तत्व क्या है और ये प्रवृत्तिगत बोधक तत्व अपने पूर्व युग, क्षीण युग से किस मात्रा में तथा किस रूप में भिन्न हैं।

हिन्दी के अधिकांश साहित्येतिहासकारों ने आधुनिक साहित्य या आधुनिक युग के ठीक पूर्व युग को 'रीति काल' कहा है। यह युग विभाजन और युग नामकरण काल बोधक नहीं है। बल्कि प्रवृत्ति बोधक है। मात्रा और कलात्मकता की दृष्टि से रीतिकाल का साहित्य अपने पूर्व युगों से भिन्न है। यानी कमजोर है। सतत युद्धों की विभीषिकाओं से आतंकित राजनीति के क्षेत्र में एक प्रकार का ठहराव आ गया था। राजाश्रय के द्वारा पोषित तथा राजा की प्रशंसा में एवं राजा के इशारे से लिखे जानेवाले साहित्य का बोल बाला हो गया था। युद्धोन्मुख राजा तथा युद्धों से विरक्त राजा साहित्य की ललित कोमल छाया में आराम करने लगे थे। राजा में तथा राज दरबार में विलासिता की मात्रा बढ़ गयी थी। फल स्वरूप राज दरबार को प्रतिबिंबित करनेवाला साहित्य भी विलासमय बन गया। मांसल, श्रृंगार को साहित्य में बढ़ावा मिला। अद्‌भुत एवं चमत्कार वृत्तियों को साहित्य के श्रेष्ठ साधन माने जाने लगे। साहित्य इस रूप में अपने उदात्त मूल्यों से गिर कर क्षीणता की गर्त में गिर गया। इसलिए इसे क्षीण युग कहा गया।

हिन्दी के साहित्येतिहासकारों ने रीतिकाल का समय सन् 1700 से सन् 1900 कर माना है। उन की दृष्टि में हिन्दी साहित्य का यह समय साहित्य की उदात्तता, श्रेष्ठता और नैतिकता की दृष्टि से घोर अंधकार का समय था। उनका विचार है कि इस समय के जन जीवन के साथ साहित्य भी अपनी जीवंतता खोकर निस्तेज हो गया था। प्राचीन काव्यों के नकल करने तथा अनुकरण करने की प्रवृत्ति बढ़ गयी थी। प्राचीन प्रबंध काव्यों के अनुकरण में राजाश्रय की प्राप्ति के लिए प्रबंध रचे गये। इस के साथ साथ सस्ती, गाली-गलौज की रचनाएँ, श्लेष चमत्कार जगानेवाली रचनों की मात्रा बढ़ गयी। 19 वीं सदी के मध्य भाग तक तेलुगु साहित्य की यही दुर्गति रही है। साहित्य की इस पतनोन्मुख प्रवृत्ति से विलोमी सुधारवादी प्रवृत्तिवाला साहित्य सन् 1895 से लिखे जाने लगा था। साहित्य का समाज सुधारवादी गुण जनता के सुख-दुखों को प्रतिफलित करनेवाला साहित्य अपने पूर्व युग से (रीतिकाल से) सर्वथा नया था। साहित्य के इस नये स्वभाव व नयी प्रवृत्ति को देखते हुए साहित्येतिहासकारों ने इस युग को आधुनिक युग कहा है। यह पूर्व युग से काल की दृष्टि से नया है ही। साथ ही साहित्य

स्वभाव व साहित्यिक प्रवृत्ति की दृष्टि से भी नया है। इसलिए आधुनिक साहित्य या आधुनिक काल का आधुनिक शब्द मात्र कालबोधक ही नहीं बल्कि प्रवृत्ति बोधक है। अपने पूर्व युग से कदाचित नये उन्मेष के साथ उभरा नवीन बोध का है। स्पष्ट है कि आधुनिक साहित्य या आधुनिक काल के काल विभाजन एवं नामकरण के पीछे साहित्यिक स्वभाव व साहित्यिक प्रवृत्तिगत भिन्नता ही मूल कारण रही है। न कि मात्र काल विषयक युग बदलाव।

अपने पूर्व युग से भिन्न साहित्यिक प्रवृत्तिवाले साहित्य को आधुनिक साहित्य कहा गया है। यह आधुनिकता या आधुनिक भाव किसी एक लेखक की–देन नहीं। बल्कि समस्त युग की देन है। परिवेशगत नये संदर्भों की देन है। युग जीवन में आया यह बदलाव क्षणिक नहीं है बल्कि काल क्रमिक है। इस में देशीय संस्कृति के साथ साथ पाश्चात्य संस्कृति की समान देन है। विदेशी संस्कृतियों से भारतीय संस्कृति का ठकराव कोई नया नहीं है। फिर भी इसके पहले के यानी मध्य युगीन ठकराव इतना बलवती नहीं था। साहित्य एवं कलाओं को उसने इतना बलवती नहीं था। साहित्य एवं कलाओं को उसने इतना प्रभावित नहीं किया था। लेकिन 19 वीं सदी के भारतीय संस्कृति एवं पाश्चात्य संस्कृति का यह ठकराव विस्फोटात्मक परिणाम लाया। उस ने साहित्यक प्रवृत्ति एवं साहित्यिक स्वभाव में आमूल परिवर्तन ही कर दिया। इस ठकराव ने जंग लगी सभी पुरानी परंपराओं को तोड़ दिया। एक नवजागरण को साहित्य में भर दिया। नवचेतना एवं नव जागरण से भरे इस साहित्य को आधुनिक साहित्य कहना इसलिए ज्यादा समीचीन लगता है। यह विस्फोटात्मक परिणाम 19 वीं सदी का अपना ही है और किसी भी युग में इस स्तर का परिणाम नहीं देखा जा सकता है।

1.1 आधुनिक हिन्दी साहित्य की पृष्ठभूमि :-

साहित्य सामजिक जीवन की कलात्मक अभिव्यक्ति होता है। सामयिक जीवन का सही व समग्र प्रतिबिंब साहित्य में देखा जा सकता है। इस का कराण यही है कि साहित्यकार अपने युग से और आस पास के जीवन से परे नहीं हो सकता है। जीवन और समाज के साथ दायित्व पूर्ण संबंध रखनेवाला साहित्यिकार अपने साहित्य को जीवन से अलग नहीं रख सकता है। साथ ही परिवेशगत जीवन से ही अपनी कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए आवश्यक ऊर्जा प्राप्त करता है। इसलिए साहित्य जन जीवन का सच्चा आईना बन जाता है। परिवेश के साथ साहित्य के इस अटूट व अनिवार्य संबंध के कारण ही साहित्य के विश्लेषण व उस की सही पहचान के लिए सामजिक परिस्थितियों को जानना आवश्यक हो जाता है। परिस्थितियों के आकलन से न केवल साहित्य को समझ सकते हैं बल्कि उसकी गहराइयों में छिपे जीवन की सच्चाइयों को भी समझ सकते हैं। किसी भी साहित्यकार के

साहित्य का मूल्यांकन तत्कालीन परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में ही सही व सफल रूप में किया जा सकता है। क्यों कि साहित्यकार भी सामाजिक प्राणी होता है। अपने चारों तरफ की परिस्थितियों से प्रभावित होना और उन्हें प्रभावित करना भी एक सहज धर्म है। परन्तु महान साहित्यकार युगीन परिस्थितियों से प्रभावित होते हुए भी उनसे आवश्यक प्रेरणा मात्र ग्रहण करके अपने मौलिक चिंतन, विश्वास तथा मान्यताओं के अनुसार साहित्य रचता है। साहित्य और साहित्यकार संबंधी इन मान्यताओं को किसी भी युग के साहित्य पर लागू करके देखा जा सकता है।

हिन्दी का आधुनिक युगीन साहित्य भी इस का अपवाद नहीं है। लंबी व समृद्ध परंपरा को रखनेवाला हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग में आते आते मानो कायाकल्प ही हो गया। एक बार साहित्यिक श्रेष्ठ शिखरों पर पहुंचनेवाला हिन्दी साहित्य अचानक 18 वीं 19 वीं शताब्दियों के बीच में साहित्यिक मूल्यों के उत्तुंग शिखरों से गिर गया इस युग के साहित्य को इसलिए हिन्दी साहित्येतिहासकारों ने 'रीतिकाल' कहा है। बड़े राजाओं एवं उनके राज्यों के पतन से शेष छोटे छोटे सामंत जमींदार ज्यादा विलासी व भोगवादी बन गये थे। साहित्य और संगीत आदि ललित कलाओं के प्रति उनकी धारणाएँ बदल गयी। वे भी भोग-लालसा के साधन मात्र रह गये। पूर्व कृतियों का अनुकरण करना चोरी करना भी साहित्य के क्षेत्र में शुरू हो गया था। साहित्य अपने सभी मानवीय मूल्यों से वंचित रह गया था। परिणाम स्वरूप पूर्व युगों की तरह इस युग में कोई श्रेष्ठ साहित्य लेखन संभव नहीं हो सका था। हिन्दी के आधुनिक युगीन साहित्य के पूर्व युग की यही पतनोन्मुख पृष्ठभूमि रही है। इस के विपरीत अनेक सुधार नीतियों, ऊंचे आदर्शों एवं मूल्यों के साथ आधुनिक युग शुरू हुआ। आधुनिक युग के हिन्दी साहित्यक लेखन के पीछे उस युग की परिस्थितियों का प्रभाव ज्यादा रहा है। परिस्थितियों के बुनियादी फेर बदल के कारण ही हिन्दी में अपने पूर्व युगों से भिन्न साहित्य लेखन शुरू हो गया। गद्य में स्वतंत्रलेखन व गद्य की अनेक नयी विधाओं का विकास तथा काव्य के क्षेत्र में अनेक काव्यांदोलन इस तथ्य के साक्ष्य प्रमाण है। यह कहना ज्यादा उचित है कि हिन्दी साहित्य के आधुनिक युगीन साहित्य रचना के लिए उस युग की परिस्तितियाँ ही ज्यादा जिम्मेदार हैं। हिन्दी में अभूतपूर्व साहित्य लेखन के लिए जिम्मेदार इन परिवेशगत विशेषताओं का आगे विश्लेषण किया जा रहा है। आधुनिक युग के आरंभ के पहले आंध्र प्रांत में अंग्रेजों का शासन कायम हो चुका था। भारतीय जीवन अपने समूचे में उस शासन से प्रभावित था।

1.1.1 राजनीतिक पृष्ठभूमि :-

अंग्रेजों के आने से पूर्व हिन्दी साहित्य उत्तर भारत के राजाओं के आश्रय में तथा उनके प्रोत्साहन में खूब विकसित हुआ था। परन्तु आलोच्य युग में उत्तर भारत में राज्यों तथा राजाओं के पतन का समय था। उत्तर भर में क्या संपूर्ण भारत में राजनीतिक वातावरण तेजी से बदल रहा था। ईस्टिंडिया के नाम पर अंग्रेजों ने उत्तर भारत के एक एक राजा पर आक्रमण करके उन्हें अपने वश में कर लिया। इस रूप में उत्तर भारत पर अंग्रेज शासन शुरू हो गया था। निजाम नवाब और टीपु सुलतान की पराजय व समझौते के कारण दक्षिण भारत भी ईस्टिंडिया कंपनी के अधिकार क्षेत्र में आ गया। इस अंग्रेज शासन के दौरान ही उत्तर भारत के राजनीतिक वातावरण अपने पूर्व युगों से अलग नया रूप धारण करने लगा था। अंग्रेजों की नीति फूट ड़ालो और राज करो, नीति के कारण उत्तर भारत के छोटे छोटे सामंत, जमींदार आदि अंग्रेजों के समर्थन में ही अपनी सुरक्षा व भलाई देखकर उनके गुलाम बनते गये। फल स्वरूप देश भर में अशांति के बादल मंडराने लगे। असंतुष्ट तथा अधिकारों से वंचित देशीय राजा अपनी मुक्ति का मार्ग ढूंढ़ने लगे। मुसलमान नवाब इस संकट के अपवाद नहीं रहे। देश से जब तक वे नहीं निकाले जाएंगे तब तक भारत का कुशल क्षेम नहीं होगा, ऐसा विचार समस्त भारतवासियों में घर कर गया। परिणाम स्वरूप सन् 1857 में पहली बार स्वतंत्रता संग्राम का पहला दौर शुरू हो गया। परन्तु आजादी के लिए की गयी यह पहली लड़ाई असफल ही रही।

इस घटना के होते भारत का शासनभार ईस्टिंडिया कंपेनी से ब्रिटिश पार्लमेंट के हाथों में चला गया। महारानी विक्टोरिया ने भारत की साम्राज्ञी की हैसियत से यह घोषणा भी की थी कि भारत में सभी जातियों व धर्मों के प्रति पूर्ण रूपेण न्याय का व्यवहार होगा। यह घोषणा कुछ सीमा तक कार्यान्वित भी हुई। परिणाम स्वरूप भारत में आशा और उत्साह तरंगित होने लगे। रेल, तार, शिक्षा आदि की व्यवस्था भी इन्हीं दिनों में की गयी। आंध्र के साथ साथ समस्त भारत एक राजनीतिक सूत्र में बंध गया। परन्तु यह उत्साह तथा विश्वास दीर्घावधि तक नहीं रहा। रेल, डाक आदि साधन ब्रिटिश के लिए अपनी स्वार्थ सिद्धि के निमित्त काम में लाये जाने लगे। इस को देखते हुए भारतीय जनता में अंग्रेजों के विरुद्ध अविश्वास तथा विद्रोह के विचार बढ़ने लगे। इन्हीं परिस्थितियों में सन् 1885 में इंडियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना हुई। यह संस्था धीरे धीरे राजनीतिक चेतना को देश भर में जागृत करने लगी। फल स्वरूप अंग्रेजों की कूट नीति का भंड़ा फूटने लगा।

सन् 1900 के आस पास भारत में राष्ट्रीय आंदोलन जोर पकडा। राष्ट्रीय आंदोलन से संबंधित कई ऐसी घटनाएँ हैं जिन्होंने पूरे भारत को प्रभावित किया है। समाज के सभी वर्गों को राष्ट्रीय

आंदोलन में भाग लेने के प्रेरित किया है। सन् 1904 में वैसराय लार्ड कर्जन ने बंगाल को दो भागों में खंडित कर दिया था। जो समस्त भारतवासियों के लिए अपमानजनक प्रतीत हुआ। पूरे भारत में वंदेमातरम का गीत चारों ओर गूंज उठा। सन् 1905 के कलकत्ता के अधिवेशन में कांग्रेस संस्था अतिवादी एवं मितवादी जैसे दो दलों में विभक्त हो गयी। अध्यक्षीय आसन से श्री दादा भाई नौरोजी ने भारत का अंतिम लक्ष्य स्वराज्य घोषित किया। सन् 1906 में सैयद अहमद खां के अनुयायियों ने मुस्लीम लीग की स्थापना की। कांग्रेस और मुस्लीम लीग दोनों कंधे से कंधा मिलाकर राजनीतिक चेतना को आगे बढ़ाने लगी। भारत में शिक्षा विकास के लिए अंग्रेज सरकार की ओर से सन 1812 में मद्रास के सेंट जार्ज फोर्ट में एक कालेज की स्थापना की गयी। इस के परिणाम स्वरूप आंध्र में शिक्षा का विकास होने लगा था।

सन् 1914 के प्रथम विश्व युद्ध में भारतीय जनता ने तन मन से ब्रिटन का समर्थन किया। पर सन् 1918 में विजयी होने के उपरांत अंग्रेजी सरकार ने न्याय का व्यवहार नहीं किया था। इस के अतिरिक्त सन् 1919 में चेर्म्सफार्ड सुधार पत्र सामने रखा गया। रौलट ऐक्ट भी पास किया गया था। तब तक भारत के राजनीतिक क्षेत्र में गाँधीजी का प्रवेश हो गया था। संपूर्ण भारत ने उनके नेतृत्व में सभी प्रकार से सरकार का विरोध किया था। उन्हीं दिनों पंजाब के जलियानवाला बाग का हत्या कांड स्वयं दंश ने देखा था। डैय्यर के अमानुषिक निर्णय से हजारों निरीह भारतवासी गोलियों के शिकार हो गये थे। इस के विरोध में गाँधीजी ने असहयोग आंदोलन की योजना जनता के सामने रखी। स्कूल कालेजों का बहिस्कार, सरकारी उपाधियों का त्याग, आदि के द्वारा भारत ने अपना रोष प्रकट किया था। समस्त उत्तर भारत ने भी इस आंदोलन में तन मन से भाग लिया था।

सन् 1928 में सरदार पटेल ने बार्डोली में सत्याग्रह आंदोलन का नेतृत्व किया था। सन् 1930 में नमक सत्याग्रह के दौरान भारत की जनता प्रकट रूप से विदेशी सरकार से संघर्ष करने लगी। इसी समय आंध्र में अल्लूरी सीतारामाराजु के नेतृत्व में अंग्रेज सरकार का विरोध किया गया। दूसरी ओर सरकार ने कांग्रेस को अवैद्य घोषित किया। तो गांधीजी ने आमरण अनशन की घोषणा की। फिर समस्त भारत में आजादी के लिए संघर्ष करने की इच्छा बलवती होने लगी। समस्त देश एक सूत्र में बंध गया था। इस का पूरा पूरा श्रेय गांधीजी को ही जाता है। अंत में सन् 1947 में भारत को राजनीतिक स्वातंत्रता प्राप्त हुई। इस के पहले ही लार्ड मेकाले की चेष्टा से अंग्रेजी शिक्षा की नींव आंध्र प्रांत में पड़ गई और उस का प्रचार हमारे लिए वातायन के रूप में काम आया। हमारी विचारधारा में परिवर्तन आने लगा। ये सारी राजनीतिक घटनाओं तथा परिस्थितियों ने आधुनिक युगीन हिन्दी साहित्यकारों

को प्रभावित किया था। सशक्त राष्ट्रीय आंदोलन, नैतिक बल, न्यायबद्ध प्रयत्नों के बावजूद भारत का स्वतंत्रता संग्राम कभी कभी असफल प्रतीत होने लगा। जलियनवाला बाग के हत्या कांड, देश भक्तों को निर्ममता से कुचल डालना आदि घटनाओं ने कवि लेखकों को भी कुछ क्रोध, कुछ निराशा, ग्लानि आदि का अनुभव करने को प्रेरित किया था।

1.1.2 सामाजिक पृष्ठभूमि :-

पश्चिमी शिक्षा, पश्चिमी सभ्यता – संस्कृति और पश्चिमी साहित्य के संपर्क ने भारतीय सामाजिक जीवन का कायाकल्प ही कर दिया। अंग्रेजों के आगमन के पहले भारतीय सामाजिक जीवन भोग–विलास के अंधकारमय वातावरण में भटक गया था। भारत प्रधानत: कृषि प्रधान देश रहा है। अंधविश्वास उनके जीवन के अभिन्न अंग थे। धर्म और अंधविश्वास के दायरे में सामाजिक जीवन दब सा गया था। अंग्रेजों के संपर्क ने इस दायरे को तोड़ा। अंग्रेजों के संपर्क में आने के बाद उनका वैज्ञानिक दृष्टिकोण, आधुनिक सुविधाएँ, विश्वास, आदतों आदि से उत्तर भारत का समाज धीरे धीरे प्रभावित होने लगा। इस में राजाराम मोहनराय, स्वामी दयानंद सरस्वती जैसे महान मनीषियों का भी बड़ा हाथ रहा। पूर्व युगों में भारतीय नारी भोग–वस्तु मात्र रह गयी थी। परिवार और समाज में उस की कोई सही पहचान नहीं थी। भारतीय नारी समाज यह अनुभव करने लगा था कि भारतीय आचार विचार तथा रस्म रिवाजों के पालन मात्र से उनके कर्तव्य की इतिश्री नहीं हो पायेगी। आगे समाज सुधारकों के प्रयासों के फल स्वरूप नारी को सामाजिक क्षेत्र में प्रवेश करने का अवसर मिला। आधुनिक युग में समाज को प्रभावित करनेवाले चार मुख्य तथ्य हैं। 1. सुधारवादी आंदोलन 2. अंग्रेजी शिक्षा तथा नवीन भावविचार 3. मुद्रण कला 4. उदारतावाद, व्यक्तिवाद तथा मानवतावाद।

1.1.2.1 सुधारवादी आंदोलन :-

19 वीं सदी के आरंभ से ही भारत में समाज को सुधारने के लिए अनेक आंदोलन किए गये। धार्मिक व सांस्कृतिक क्षेत्र में व्याप्त अविश्वासों, अंधविश्वासों, रूढ़ियों को दूर करने के लिए किये गये थे। आंदोलन समाज को भी प्रभावित करते आये हैं। ये आंदोलन भारत में अनेक धार्मिक – सांस्कृतिक संस्थाओं के नेतृत्व के किए गये। उन में सब से महत्वपूर्ण संस्थाएँ निम्नांकित हैं।

1.1.2.1.1 ब्रह्मसमाज :-

इस संस्था के संस्थापक श्री राजा राममोहन राय थे। विज्ञान तथा पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली, इसाई धर्म की व्यावहारिकता का प्रभाव भारत पर धीरे–धीरे पड़ने लगा था। सर्वप्रथम इस आधुनिकता

से उत्तर भारत में बंगाल द्रुतगति से परिचित होने लगा था। पाश्चात्य ज्ञान विज्ञान के प्रचार और प्रसार के कारण परंपरागत रूढ़िग्रस्त सामाजिक एवं धार्मिक व्यवस्था में भी परिवर्तन के लक्षण प्रत्यक्ष होने लगे। इन्हीं परिस्थितियों में राजा राममोहन राय ने सन् 1927 में इस संस्था की स्थापना की।

राजा राममोहन राय ने पाश्चात्य सभ्यता के तर्कवादी प्रगतिशील तत्वों को पहचाना और उन्हें स्वीकार किया। भारतीय समाज में उन को स्थापित करने की चेष्टा की। सर्वप्रथम उन्होंने सती प्रथा का विरोध किया। नारी जीवन की इस मूल विभीषका को जड़ से उखाड़ फेंकने का सफल प्रयास किया। उन के अनुसार सती प्रथा का मूल कारण बहु विवाह प्रथा है। जो बंगाल में ज्यादा थी। बहु विवाह के कारण ही नारी परिवार में सम्पत्ति अधिकार से वंचित थी। पिता अपनी पुत्री के लिए शादी के रूप में आर्थिक स्वावलंबन ढूंढ़ता है तथा पति अपनी संपत्ति सुरक्षित रखने के लिए पुत्र प्राप्ति के लिए कई शादियों की छूट पा लेता है। पारिवारिक संपत्ति पर इस रूप में पुरुष का ही अधिकार होता गया। राजा राममोहन राय ने इस अन्याय को पहचाना। इन्होंने उदाहरण साहित यह सिद्ध करना चाहा कि प्राचीन परंपराओं में नारी को पारिवारिक संपत्ति में भाग मिलता था। इस के आधार पर उन्होंने बहु विवाह का विरोध किया और विधवा विवाह का समर्थन किया। राजा राममोहन क्रांतिकारी भी थे। ब्रह्मण परिवार में जन्म लेकर भी अपने संप्रदाय के विरोध में यूरोप की यात्रा की। वहाँ की प्रगतिशील धारणाओं से प्रभावित हुए। उन के प्रकाश में भारतीय समाज की समस्याओं का समाधान ढूंढ़ने का सफल प्रयास किए।

राजा राममोहन राय संस्कृत, फारसी, अंग्रेजी के अच्छे ज्ञाता थे। साथ ही विविध धर्मों का गहन अध्ययन भी उन्होंने किया था। ईसाई मिशनरियों के साथ संपर्क भी था। इसलिए उन्होंने धार्मिक सहिष्णुता तथा एकेश्वरवाद पर बल दे कर विश्वबन्धुत्व की भावना से अपने विचारों को ओत-प्रोत किया था। धर्म और समाज की व्याख्या के लिए उन्होंने बौद्धिक दृष्टिकोण अपनाया था। 'बंगदूत' नामक पत्रिका के द्वारा अपने विचारों का प्रचार किया था। मूर्ति पूजा को उन्होंने धर्म का बाह्याडंबर माना और इस के समर्थन में जितने तर्क दिए जाते थे उन का खंडन उपनिषदों के आधार पर किया। अंध श्रद्धा और परंपरावादिता को उन्होंने खतराजनक बताया। उनके मतानुसार परंपरा का प्राचीनतम रूप शुद्ध ब्रम्ह की उपासना है न कि मूर्ति पूजा। धर्म हिन्दू समाज की रीढ़ है। हिन्दू समाज की रचना धर्म के आधार पर ही की गई है। इसलिए धार्मिक सुधार सामाजिक सुधार से अनिवार्यत : संबद्ध हो जाता है। राजा राममोहन राय तथा अन्य धर्म के सुधराकों ने इसे अच्छी तरह पहचान लिया था। अत: राय के नेतृत्व में ब्रह्मसमाज ने कई प्रकार की सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार किया। जाति

प्रथा को उन्होंने अमानवीय और राष्ट्रीयता विरोधी कहा। सती प्रथा के विरोध में उनका प्रयास सर्वथा समरणीय रहेगा। उन्होंने विधवा विवाह तथा स्त्री-पुरुष के समानाधिकार का भी समर्थन किया।

राजा राममोहन राय ने पाश्चात्य शिक्षा और संस्कृति को मूल्यवान समझा। इसीलिए अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली के प्रसार में उचित योग भी दिया। महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर और केशवचंद्र सेन आदि महान नेताओं का योगदान भी इस समाज को प्राप्त हुआ। फल स्वरूप ब्रह्म समाज का प्रभाव देश-व्यापी रहा।

1.1.2.1.2 आर्यसमाज :

इस सांस्कृतिक संस्था की स्थापना सन् 1875 में स्वामी दयानंद सरस्वती ने की। यह महत्वपूर्ण सामाजिक-सांस्कृतिक संस्था है। भारतीय समाज पर इस का व्यापक प्रभाव रहा है। यह शिक्षित उच्च वर्ग और अशिक्षित आम वर्ग तक पहुंचकर अपने कार्यों से प्रभावित करता रहा है। शहर और गाँव दोनों पर इस का प्रभाव रहा। इस संस्था ने अपने विचारों का प्रचार अंग्रेजी भाषा के माध्यम से न करके देशी भाषा हिन्दी के माध्यम से किया। दयानंद अन्य सुधारकों की तरह उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति न थे। लेकिन सामाजिक क्षेत्र में वैज्ञानिक एवं क्रांतिकारी परिवर्तन किए। इस संस्था की सब से बड़ी स्थापना यह थी कि जाति व्यवस्था का आधार जन्म न होकर गुण, कर्म तथा स्वभाव होना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता के अनुसार उच्च जाति प्राप्त कर सकता है। ब्रह्मसमाज और प्रार्थना समाज का जाति विरोध एक सुधारवादी था। उस से निम्न जातियाँ आत्म विश्वास नहीं पा सकी थीं। लेकित आर्य समाज ने स्वयं अपने वैदिक धर्म से जाति व्यवस्था का आधार गुण, कर्म तथा स्वभाव उपस्थित कर के जाति व्यवस्था को ईश्वरीय देन समझनेवालों की मानसिक दासता दूर की। आर्य समाज ने अछूत लोगों की शिक्षा पर विसेष ध्यान दिया था। उनका विश्वास था कि अछूत वर्ग बिना शिक्षित हुए उच्च वर्ग के समक्ष नहीं जा सकता। आर्यसमाज ने नारी शिक्षा पर भी जोर दिया था। वैवाहिक आयु के संबंध में भी उन के निश्चित विचार थे।

आर्यसमाज का प्रभाव उत्तर भारत पर ज्यादा रहा। दक्षिण में हैदराबाद तक ही इस का प्रभाव सीमित रह गया। आर्यधर्म का पुनरुत्थान इस का प्रधान लक्ष्य रहा। प्रचार सामग्री संस्कृत गर्भित हिन्दी में लिखी जाती थी जिस से हिन्दी गद्य को एक नई शैली प्राप्त हुई। सन् 1953 के पूर्व तक हैदराबाद राज्य के अंतर्गत तेलंगाणा प्रांत नाम से आंध्र का कुछ हिस्सा रहता था। इस पर मुसलमान राजाओं का बड़ा आतंक रहा। अत: हैदराबाद में आर्य समाज की शाखाएँ खोली गयीं। आर्य समाज ने

सामाजिक और नैतिक मूल्यों को देखते हुए एक आचार संहिता बनाई। इस में जातिभेद, मनुष्य-मनुष्य या स्त्री पुरुषों में असमानता के लिए कोई स्थान नहीं था। निश्चय ही यह एक लोकतांत्रिक दृष्टि थी। वैदिक धर्म के व्याख्याता होने के बावजूद समझते थे। उत्तर भारत के आचार-विचार, रहन-सहन, साहित्य-संस्कृति पर आर्य समाज का गहरा प्रभाव पड़ा। आर्य समाज के कार्य एक ओर प्रगतिशील थे तो दूसरी ओर प्रतिक्रियावादी। जहाँ तक मानवीय समता, अस्पृश्यता आदि का संबंध है, इसे प्रगतिशील माना जायेगा। किन्तु मुसलमानों के प्रति इस का आक्रामक रूख प्रगतिगामी प्रवृत्ति का सूचक नहीं हैं।

1.1.2.1.3. थियोसाफिकल सोसाइटी :-

इसकी स्थापना न्यूयार्क नगर में सन् 1875 में रूस महिला लवेवास्की तथा न्यूयार्कवासी आरकाट साहब दोनों ने की थी। सर्वप्रथम भारत में इसका प्रवेश सन् 1879 में हुआ। तीन वर्ष पश्चात मद्रास के अडयार में इस का प्रधान केन्द्र स्थापित किया गया। श्रीमती एनीबीसेंट सन् 1888 में इस संस्था की इंगलैंड शाखा से संबद्ध हो गयी। सन् 1893 में वे भारत आई और सोसाइटी के विकास में लग गयी। यहाँ की शिक्षा और धर्म के प्रचार के लिए शिक्षा संस्थाओं की वे स्थापना भी करने लगी। उनका विचार था विश्व के सभी धर्मों में हिन्दू धर्म से बढ़ कर पूर्ण वैज्ञानिक, दर्शनयुक्त एवं अध्यात्म परिपूर्ण-धर्म दूसरा और कोई नहीं। इस दिशा में इस संस्था ने आर्य समाज एवं ब्रम्ह समाज सा हिन्दुओं का बड़ा उपकार किया था। आर्य समाज जैसे इस में खंडन मड़ंन की शैली नहीं मिलती है। यह सामूहिक धार्मिक गोष्ठियों तथा प्रार्थनाओं को प्रोत्साहित करता है। अत: भारत के शिक्षित तथा आभिजात्य वर्ग इस की ओर अधिक आकर्षित हो गये थे। आंध्र में यह सोसाइटी दिव्य ज्ञान समाज नाम से लोकप्रिय हुआ था। इसका प्रधान कार्यालय मद्रास में रहने के कारण अंग्रेजी प्रणाली में शिक्षित लोगों में विशेष कर यह समाज अधिक लोकप्रिय हुआ।

1.1.2.1.4. रामकृष्ण परमहंस तथा विवेकानंद जी का प्रभाव :

ये दोनों भारत में ही नहीं बल्कि पश्चिमी देशों में भी हिन्दू धर्म का प्रचार करने में अत्यंत सहायक हुए। श्रीराम कृष्ण परमहंस भक्ति, विश्वास एवं सात्विकता की जीवित प्रतिमा थे। उन्होंने धर्म को बोध गम्य ही नहीं अनुभूतिगम्य सिद्ध किया था। तब तक ब्रह्म समाज, आर्य समाज तथा दिव्य ज्ञान समाज ने धर्म के क्षेत्र में जो प्रचार एवं प्रसार किया था उससे हिन्दू समाज जागृत हो चुका था। अत: रामकृष्ण परम हंस को पहचानने में तथा उन्हें स्वीकृत करने में कोई विलंब नहीं हुआ था।

भारतवासी पाश्चात्य शिक्षा, उसके साहित्य के रंग में अत्यंत रंग चुके थे। विलासिता, भौतिक सुख-सुविधा की बहुत सामग्री भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध भी होती थी। वे प्राचीन धार्मिक आचार-विचारों, कथा पुराणों तथा अनुष्ठानों के प्राण तत्व को ढकोसला समझने लगे थे। ऐसी स्थिति में रामकृष्ण के उपदेश भारतवासियों के लिए शुद्ध प्राणवायु के समान प्रमाणित हुए।

राम कृष्ण के अनुयायियों में स्वामी विवेकनंद जी अविस्मरणीय हैं। यह कहा जा सकता है कि इन दोनों का मिलन यूरोप और भारत का, बुद्धि और श्रद्धा का अपूर्व मिलन था। विदेशी भ्रमण के बाद विवेकानंद जी ने गुरु रामकृष्ण की साधना तथा चिंतन संपन्न अनुभूतियों को व्यावहारिक सिद्धांतों के रूप में ढाल कर तत्कालीन सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थितियों में सुधार लाने के लिए राम कृष्ण मिशन और रामकृष्ण मठ संस्थाओं की स्थापना की थी। इन संस्थाओं ने हिन्दुओं में अपने धर्म तथा संस्कृति के प्रति विश्वास और गर्व को उद्‌भूत कर उनमें नवचेतना भर दी। उन्होंने उपदेश दिया था - तुम गर्व से प्रकट करो कि मैं भारतीय हूँ, तुम यह मत भूलो कि सीता, सावित्री और दमयंती तुम्हारे आदर्श नारीत्व हैं। तेरा भगवान सर्वशक्तिमान शंकर है। उनके उपदेशों तथा भाषणों का अच्छा प्रभाव भारतवासियों पर पड़ा था।

1.1.2.5 प्रार्थनासमाज :-

केशवचंद्र सेन के प्रभाव से सन् 1867 में महादेव गोविंद रानाडे के द्वारा इस की स्थापना हुई। इस संस्था के मुख्य चार लक्ष्य थे। जाति व्यवस्था को समाप्त करना, विधवा विवाह, नारी शिक्षा का प्रचार तथा बाल विवाह का निषेध। इस की विशेषता यह रही कि उस युग के अन्य समाजों की अपेक्षा यह धार्मिक न होकर सामाजिक संस्था अधिक रही। विधवाओं के लिए, निराश्रित नारियों के लिए, बच्चों लिए निराश्रित नारियों के लिए, बच्चों के लिए अनेक सेवा संघटन इस के द्वारा स्थापित किए गए। उसने धार्मिक तत्वों को सामाजिक क्षेत्र में लाने की आवश्यकता नहीं समझी। न उसने ब्रह्म समाज की तरह अंग्रेजियत की ओर लालासा भरी दृष्टि से देखा और न आर्य समाज की तरह प्राचीन गौरव का यशगान किया। इस संस्था के सामने सदैव ''मनुष्य की सेवा में ही ईश्वर का प्रेम है'' आदर्श रहा। इस की सफलता का पूरा श्रेय महादेव गोविंद रानाडे को है।

वे बुद्धिजीवी विधिवेता और मेधावी व्यक्ति थे। वे चालीस वर्षों तक सामाजिक रुढ़ियों और अंधविश्वासों के विरुद्ध संघर्ष करते रहे। उन्होंने धार्मिक और सामाजिक समस्याओं पर तर्कपूर्ण ढंग से विचार किया। उन्हें हिन्दू होने का गर्व था। वे भागवत धर्म के अनुयायी थे। उन्होंने शंकराचार्य के

अद्वैत का विरोध करते हुए रामानुज के द्वैतवाद का मसर्थन किया। रानाडे अतीत के मृततत्व को मृत मानकर चलने वाले व्यक्ति थे। उन्होंने मनुष्य की समानता पर जोर दिया। वे जाति पांति के विरोधी और अंतर्जातीय विवाह के पक्षधर थे। स्त्री-शिक्षा पर उन्होंने बराबर बल दिया। उनका वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण, तर्क पद्धति और सामाजिक परिष्कार के प्रति अभिरुचि आदि से स्पष्ट है कि वे पाश्चात्य विचारधारा से प्रभावित थे। किन्तु पाश्चात्य मत को भी उन्होंने बिना वितर्क के स्वीकार नहीं किया। वे भारतीय संस्कृति को नवीन वैज्ञानिक विचार-प्रणाली के अनुरूप ढ़ालने की कोशिस कर रहे थे।

1.1.3. अंग्रेजी शिक्षा तथा मुद्रण कला :

इस नवीन चेतना के विकास में अंग्रेजी शिक्षा के योगदान को ठुकराया नहीं जा सकता है। अंग्रेजों के आगमन के पहले भारतीय शिक्षा मुलत: शांस्त्रों पर आधारित थी। वह भौतिक उन्नति की दिशा में कम आध्यात्मिक उन्नति की दिशा में ज्यादा प्रेरणा जगानेवाली थी। जो करीब करीब इस समय तक जनता में अनावश्यक मानी जाती थी। सामाजिक नयी मांगों के लिए उस में सही समाधान नहीं था। अत: दूरदर्शी समाज सुधारकों और सांस्कृतिक उन्नायकों ने अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली का सहर्ष स्वागत किया। इस के परिणाम स्वरूप युवकों में अंग्रेजी भाषा और साहित्य के प्रति आकर्षण उत्पन्न हुआ था। फलस्वरूप क्या उत्तर और क्या दक्षिण समस्त भारत विदेशियों के सामाजिक जीवन से परिचित होने लगा था। आंध्र में अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली के विकास से सामाजिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों में नवजागरण उदित हुआ था। इस नवजागरण का मूल तत्व एवं स्वर सामाजिक क्षेत्र में स्वतंत्रता, समानता एवं भातृ भावना का रहा।

भारत की राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों को प्रभावित करने में मुद्रण कला का बड़ा हाथ रहा। इस कला ने अपने पूर्ववर्ती युगों को आधुनिक काल से अलग ही कर दिया। इस ने साहित्य लेखन को समाज के और निकट पहुंचा दिया। इस की सहायत से प्राचीन तथा अर्वाचीन पुस्तकों का प्रकाशन शुरू हो गया था। समाचार तथा साहित्यिक पत्र-पत्रिकाएँ अधिक संख्या में छपकर नये सामाजिक विचारों तथा आंदोलनों को जनता तक पहुँचाती थी। शिक्षा तथा साहित्य का प्रचार भी सुगम हो गया था। देश विदेशों के बारे में जानने की सुविधा इस प्रकार उपलब्ध हो गयी।

1.1.4. उदारतावाद, व्यक्तिवाद तथा मानववाद :-

मुद्रण कला के विकास से, पश्चिम साहित्य के संपर्क से भारतीय चिंतन पर पाश्चात्य चिंतन का प्रभाव पडने लगा था। 19 वीं सदी के प्रारंभ में यूरोप में जो आंदोलन चल पडा था उसके प्रमुख स्वर

स्वतंत्रता, समानता तथा भातृ भावना आदि के थे। इन्हीं स्वरों ने क्रमश: उदारतावाद का रूप धारण कर लिया था। यह शब्द अंग्रेजी का 'लिबरलिज्म' का हिन्दी पर्याय है। इस के अनुसार व्यक्ति न तो आत्मनिर्भर है और न तो समाज ही निरंकुश है। आर्थिक तथा सामाजिक अथवा राजनीतिक जैसी दो अंतर्धाराओं के रूप में उदारतावाद का विकास होने लगा था। मुक्त प्रतियोगिता और व्यापार की स्वतंत्रता आदि उदारतावाद की तार्किक संगतियाँ हैं। लेकिन 19 वीं सदी के अंतिम दो दशकों तक आते आते आर्थिक उदारतावाद की परंपरा टूट गई। 20 वीं सदी में समिष्टीवादी परंपराएँ जब सशक्त होने लगी तो राजनीतिक उदारतावाद भी शिथिल हो गया था।

व्यकित्वाद अंग्रेजी शब्द 'इंडिविज्युआलिज्म' का हिन्दी पर्याय है। इस पद के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति अपने हितों और स्वार्थों को जितनी अच्छी तरह समझ सकता है उतना समाज कदापि नहीं। व्यक्तिवादी विश्वास करता है कि समाज स्वतंत्र-व्यक्तियों का योग है। अत: उसे यह अधिकार नहीं है कि व्यक्ति पर सामाजिक बंधन, परंपराएँ, मान्यताएँ आदि निरंकुशता के साथ थोपी जाय। आधुनिक व्यक्तिवाद समय समय पर समाज अथवा राष्ट्र की निरंकुशता का विरोध करता आया और व्यक्ति की स्वतंत्रप्रियता के मूल्य की स्थापना भी करते आया।

मानववाद का दावा है कि संपूर्ण मनुष्य ही मनुष्य का प्रतिमान है। समस्त मूल्यों एवं प्रतिमानों की सोत कोई अगोचर दिव्य सत्ता नहीं है। प्रत्युत प्रत्यक्ष मानव ही उसका आधार है। तेलुगु के कई विचारक तथा कवि इस से प्रभावित हुए। यह मानववाद प्रत्येक मानव के सिर पर मुकुट धराना चाहता है और चाहता है कि जगत में मानव से बढ़कर कोई दूसरा नहीं। विवेकानंद और रवींद्रनाथ ठाकुर जैसे महान व्यक्ति भी इससे प्रभावित हुए। स्पष्ट है कि आधुनिक युग में समाज को ये सुधारवादी आंदोलन, अंग्रेजी शिक्षा, पाश्चात्य संपर्क से बने विविध नवीन चिंतनधाराओं ने प्रभावित किया। इस सार्वभौम प्रभाव का परिणाम यह हुआ कि भारतीय समाज में नवजागरण की एक नयी चेतना विकसित होने लगी।

1.1.5 आर्थिक पृष्ठभूमि :-

भारत कृषि प्रधान देश रहा है। कृषि जीवन पर आधारित अधिकांश जनता गाँवों में ही रहा करती थी। भारत की अर्थव्यवस्था इस रूप में गावों से जुड़ी थी। भारत में अंग्रेजों के आने के पहले भारतीय गाँव स्वावलंबन से समृद्ध थे। ग्रामीण जीवन की सारी जरूरतें गाँव के अंदर ही पूर्ति हो जाती थी। ग्रामीण जीवन के लिए आवश्यक उत्पादन गाँव के अंदर ही हो जाता था। गाँवों का प्रधान उत्पादन

कृषि उत्पादन ही होता था। कृषि उत्पादन के लिए गाँवों में भूमि की अच्छी व्यवस्था थी। गाँवों में श्रम विभाजन का आधार जाति व्यवस्था थी। उस का मुख्य सिद्धांत था कि व्यक्ति जिस जाति में जन्म ले, वही उस का पेशा है। इन जातियों एवं उपजातियों के आधार पर विभिन्न पेशे बाँटे थे। गाँवों में पंचायत होती थी। गाँव के उत्पादन और अन्य मामलों में इस का पूरा अधिकार होता था। पंचायत राजनीतिक संस्था हुआ करती थी। गाँव आत्मनिर्भर होने के साथ साथ शहरी लोगों के लिए उत्पादन करते थें। इस प्रकार शहरों के साथ गांवों का व्यापारी संबंध होता था। गांवों का ज्यादातर उत्पादन प्राकृतिक ही होता था।

परन्तु अंग्रेजों के भारत में आगमन के साथ भारत की इस अर्थव्यवस्था में दरारें पड़ने लगी। अंग्रेज अन्य विदेशी विजेताओं की तरह आर्थिक व्यवस्था के प्रति तटस्थ नहीं रह सकें। उनके आगमन का मूल लक्ष्य ही व्यापार करने का था। इसलिए उनके हाथ में शासन आते ही उनकी आर्थिक नीतियाँ भारत पर लादी गयीं। भूमि पर व्यक्तिगत अधिकार दिया गया। जिस से किसान अपनी जमीन खरीद तथा बेच सके । जमींदारी प्रथा प्रारंभ की गई। जिस से अंग्रेजी राज्य के लिए एक सहायक वर्ग बन सके। अंग्रेजों का मुख्य उद्धेश्य था भारत को अपना बाजार बनाना। इसी अंदाज से उन्होंने आर्थिक नीतियां भारत पर थोपीं। उनकी आर्थिक नीति का मुख्य उद्धेश्य था कि भारत का आर्थिक स्तर केवल इस सीमा तक रहे कि वह ब्रिटन में बना माल खरीद सके।

अपने मिलों के लिए आवश्यक कपास, जूट, गन्ना आदि उगाने के लिए किसानों को प्रेरित किया गया। भूमि पर वयिक्तगत अधिकार पाते ही स्वार्थी बने भारतीय किसान अपने स्वलाभ के लिए विदेशी मिलों के लिए आवश्यक कच्चा माल कपास, जूट, गन्ना आदि व्यापारिक फसल ड़ालने तैयार हो गये। इस रूप में भारत पर अंग्रेजों का शोषण शुरू हो गया। भारत के गाँव गाँव में स्थित कुटीर उद्योग बंद हो गये। उनके स्थान पर विदेशों में उद्योगों की संख्या बढ़ गयी। कच्चा माल निर्यात करने की क्षमता भारत की बढ़ती गयी। इसी ने भारत की अर्थव्यवस्था के पंगु बना दिया। दूसरी तरफ व्यापारी फसलों के बढ़ने से भारत में खाद्य पदार्थों का उत्पादन भी कम होता गया। स्थिति यह हो गयी कि खाद्य पदार्थों का निर्यात भी भारत को करना पड़ा। ऊपर से 19 वीं सदी के उत्तरार्ध में भारत में भयानक अकाल पड़े। इस में करोडों में लोग मारे गये। उस समय तक भारतीय गाँवों में महाजनी सभ्यता भी फैल गयी थी। अंग्रेज सरकार की लगान नीति तथा कर नीति भी कठोर थी। कर चुकाने अकाल से पीडित किसान महाजन की शरण में जाता था।

किसान को अपनी कमाई का एक बड़ा हिस्सा जमींदारों को देना पड़ता था। सरकारी कर तथा लगान चुकाने में असमर्थ किसान के लिए एक मात्र खेतिहर मजदूर बनने के अतिरिक्त कोई मार्ग न था। जमींदार धनी होते गये दूसरी ओर खेतिहीन मजदूरों की संख्या भी बढ़ती गयी। अपनी स्वार्थ नीति तथा यूरोपीय देशों में बढ़ते विरोध के कारण अंग्रेजों को कुछ उद्योग तथा उनसे जुड़े संसाधन भारत में ही स्थापित करना पड़ा। परिणाम स्वरूप भारत में उद्योग धंधों की स्थापना हुई। भारत में भी पूंजीपति वर्ग का नया जन्म हुआ। धीरे धीरे अंग्रेज सरकार और इनके बीच में सांठ-गांठ भी होने से भारत अंग्रेजों की शोषण बढ़ानेवाली नीति के कारण आर्थिक अव्यवस्था से टिमटिमा रहा था। आर्थिक विकास के अपने नैसर्गिक साधनों एवं स्रोतों से वंचित होकर आंध्र जनता आर्थिक विषमताओं का शिकार बनी थी। इन सारी स्थितियों ने राजनीतिक नेताओं एवं स्वतंत्रचेता साहित्यकारों को अत्यंत प्रभावित किया। आर्थिक व्यवस्था में हुई विषमता किसी भी समाज के लिए घातक सिद्ध होती है। आर्थिक शोषण से समाज का विकास ही बंद हो जाता है।

1.1.6. सांस्कृतिक पृष्ठभूमि :-

भारतीय संस्कृति अति प्राचीन व समृद्ध संस्कृति रही है। परन्तु समय पर हुए विदेशी आक्रमणों ने भारतीय संस्कृति को प्रभावित किया। मध्य युग की मुगलाई-मुसलमानी संस्कृति के बाद 18 वीं - 19 वीं सदी में पाश्चात्य संस्कृति ने सब से ज्यादा भारतीय संस्कृति को प्रभावित किया। अंग्रेजों के आगमन के पहले विदेशी आक्रमणों के कारण भारतीय संस्कृति में कई परिवर्तन होने लगे थे। मध्य युगीन सामंतवादी, नवाबी संस्कृति ने भारतवासियों को अधिक विलासी भोगवादी बना दिया। समाज की सारी शक्तियाँ भोग-विलास की सुविधाएँ जुटाने में खर्च होती थी। सामाजिक आदर्श व जीवनादर्श से जुडे सांस्कृतिक कार्यक्रम व प्रयास भी नहीं होते थे। विशेषकर सामाजिक विकास के लिए आवश्यक शिक्षा प्रणाली की कोई योजना नहीं थी। परंपरागत शास्त्रीय शिक्षा समाज के कुछ इने गिने लोगों को ही प्राप्त होती थी। बाकी समाज के वर्ग शिक्षा से भी वंचित थे। परिणाम स्वरूप जीवन के किसी उच्च आदर्श व लक्ष्य के अभाव में छोटे छोटे राजा जमींदारों की तरह आम जनता भी जीवन से परान्मुख होकर भोग विलास की ओर उन्मुख होने लगी थी। साथ ही इस अंधकार व पतनोन्मुख अवस्था में पश्चिम शिक्षा व पाश्चात्य साहित्य संपर्क ने भारतवासियों को अपनी ओर आकर्षण पैदा किया और अपनी संस्कृति के प्रति हीन भावना भी उन में पैदा होने लगी। ऐसी अवस्था में समाज सुधारकों ने सांस्कृतिक पुनरुत्थान के प्रयास किए। आंध्र में मुख्यत: इस प्रकार के प्रयास शिक्षा के क्षेत्र में किए गये। सांस्कृतिक पुनरुत्थान की बुनियादी शिक्षा प्रणाली पर निर्भर करती है।

इसलिए अनेक समाजसुधारकोंने भारत के पुनरुत्थान के लिए नयी शिक्षा प्रणाली का स्वागत किया। जगह जगह नये शिक्षालय खोले गये।

अंग्रेज सरकार ने सन् 1812 में मद्रास में सेंट जार्ज फोर्ट में एक कालेज की स्थापना करके शिक्षा-प्रसार की शुरूआत की। सन् 1813 से ही इंगलैंड संसद ने भारत में शिक्षा-विकास के लिए अलग से पैसा खर्च करना शुरू किया। सन् 1822 तक मद्रास प्रदेश में कुल 12,500 शिक्षालय थे।

सन् 1820 में मद्रास गवर्नर मन्रो ने शिक्षा के विकास के लिए अनेक प्रयास किए। समाज सुधारकों के प्रयासों के पहले ही इस रूप में अंग्रेज सरकार ने भारत में शिक्षा प्रसार का सुत्रपात किया था। बाद में राजा राम मोहन राय जैसे समाज सुधारकों के द्वारा अंग्रेजी शिक्षा के समर्थन से भारत भर में शिक्षा के प्रसार में तेजी आयी। बाद में अंग्रेजों के द्वारा ज्यादा ध्यान नहीं रखे जाने पर भी उनकी सभ्यता और संस्कृति के संपर्क से यह आगे उत्तरोत्तर विकसित होती रही। फलस्वरूप सती प्रथा, शिशु हत्याएँ, नरबलि आदि सांस्कृतिक परिवर्तन आंध्र प्रांत में हुए। आंध्र में शिक्षालयों की स्थापना में मिशनरियों का भी बड़ा योगदान रहा। राजाराम मोहन राय से प्रभावित होकर समाज सुधारकों ने सांस्कृतिक पुनरुत्थान के लिए अनेक प्रयास किए। विशेषकर उन्होंने नारी शिक्षा, पुनर्विवाह, विधवा विवाह आदि का समर्थन किया। सन् 1852 के पूर्व ही स्त्री शिक्षा के विकास के लिए मद्रास में बड़े प्रयत्न किए। सन 1841-42 से ही देशीय लोग आवश्यक पाठशालाओं की स्थापना, समाचार पत्रिकाओं की स्थापना, धर्म-सांप्रदायिक सुधारों आदि की ओर ध्यान देने लगे थे। इन सब के प्रचार के परिणाम स्वरूप सामाजिक कुप्रथाओं को दूर करके अपने समाज को विकसित करने की सांस्कृतिक चेतना फैल गयी थी। 1844 में हडिंचि साहब ने घोषणा की कि अंग्रेजी शिक्षा पढ़नेवालों को ही नौकरियाँ दी जायेंगी। इस के परिणाम स्वरूप भी अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार जोर पकड़ा।

स्पष्ट है कि हिन्दी साहित्य के आधुनिक कालीन साहित्य की राजनीतिक पृष्ठभूमि राष्ट्रीय आंदोलन की है। राष्ट्रीय आंदोलन आधुनिक काल के साथ सन् 1857 में ही शुरू हुआ था। जब देशीय रियासतों, राजाओं व सामंतों ने पहली बार कंपेनी रसकार की शोषण-दमन नीतियों से भारत को मुक्त देखना चाहा। अपने पहले प्रयास में भारतवासी असफल तो हुए। परन्तु इसके परिणाम स्वरूप अंग्रेज सरकार के शासन में परिवर्तन हुए। कुछ सुधारवादी कार्रवाइयाँ ब्रिटीश सरकार की ओर से हुई। इन आरंभिक विकासशील कार्यक्रमों को देखकर तथा उनके समर्थन के द्वारा कुछ समाज सुधारकों ने समाज सुधार के कार्यक्रमों को आगे बढ़ाया। लेकिन जल्दी ही अंग्रेज सरकार के षड़यंत्रों का पर्दाफाश हुआ। तब राष्ट्रीय आंदोलन जोर पकड़ा। दूसरी ओर समाज सुधार आंदोलन के कारण

राष्ट्रीय सांस्कृतिक पुनरुत्थान की चेतना भी जनता में फैल गयी। पश्चिमी शिक्षा, सुधारवादी नीतियों ने भारतीय जीवन में नवजागरण का शिलान्यास किया। इस में देशीय नेताओं की भागीदारी के साथ साथ उदारतावादी अनेक अंग्रेज अधिकारियों का भी बड़ा योगदान रहा। यही राष्टीय सांस्कृतिक पुनरुत्थान राजनीतिक क्षेत्र के गरम दल के प्रभाव से क्रांतिकारिता की ओर भी अग्रसर हुआ। राजनीतिक क्षेत्र में गांधीजी के नेतृत्व में अहिंसा के सिद्धांतों के बल पर एक ओर अंग्रेज सरकार का बड़ा विरोध किया जा रहा था। तो दूसरी ओर क्रांति की भावना से प्रेरित गरम दल के नेताओं के नेतृत्व में क्रांतिकारी कार्यक्रम किए जा रहे थे। इन दोनों समानांतर आंदोलनों के फलस्वरूप अंग्रेज सरकार को समय समय पर झुकना पड़ रहा था। तीसरी ओर सामाजिक-सांस्कृतिक पुनरुत्थान के प्रयासों के फलस्वरूप चेतना पाकर आम जनता भी राष्ट्रीय आंदोलन में खुलकर भाग लेने लगी। इस त्रिधारा पृष्ठभूमि के परिप्रेक्ष्य में हिन्दी के कवि-लेखकों ने आधुनिक काल में समाज-सुधार, सांस्कृतिक पुनरुत्थान व राष्ट्रीय भावना से ओत प्रोत साहित्य रचा। इस नव जागृत काल में ही पाश्चात्य साहित्य व अनेक पाश्चात्य चिंतन धाराओं के प्रभाव से आधुनिक हिन्दी साहित्य की अनेक पद्य और गद्य विधाओं का शिलन्यास ही नहीं सुचारु विकास भी हुआ।

2. भारतेन्दु युगीन कविता

भारतेन्दु युग आधुनिक काल का प्रवेश द्वार माना जाता है। अत: सहजत: आधुनिक काल की अधिकांश विशेषशताएं इस में परावर्तित होती हैं। हिन्दी में आधुनिकाल की सबसे बडी विशेषता खडी बोली गद्य का विकास है। इस रूप में गद्य आधुनिक है ही। पद्य भी आधुनिक काल की विशेषताओं से दूर नहीं रहा है। तैसे पद्य एक शाश्वत एवं आदि साहित्यक रूप है। विश्वसाहित्य इस का साक्षी है कि प्रत्येक भाषा साहित्य में सर्वप्रथम पद्य का ही विकास हुआ है। हिन्दी साहित्य इस का अपवाद नहीं है। हिन्दी में भी पद्य साहित्य का ही पहले विकास हुआ है। हिन्दी साहित्य इसका अपवाद नहीं है। हिन्दी में भी पद्य साहित्य का ही पहले विकास हुआ है। हिन्दी में पद्य आदिकाल, भक्ति काल तथा रीतिकाल से होते हुए आधुनिक काल के प्रवेश द्वार भारतेन्दु युग तक पहुंचा है। भारतेन्दु युगीन पद्य या भारतेन्दु युगीन कविता आधुनिक काल की होने के कारण अपने पूर्व युगों की कविता से सर्वथा भिन्न है। यह भिन्नता सामाजिक भी है और प्रवृत्ति परक भी। आधुनिक काल की होने के कारण वह आधुनिक है। साथ ही प्रवृत्ति की दृष्टि से अपने युगों से भिन्न होने के कारण भी आधुनिक है।

भारतेन्दु पूर्व युगीन कविता विषय-वस्तु की दृष्टि से मुख्य तया पौराणिक व ऐतिहासिक है। या तो उसमें देवी-देवताओं की स्तुति की गयी है या राजा-महाराजाओं के यशो गान व उनकी श्रृंगार चेष्टाओं का मनोहर वर्णन किया गया है। जबकि भारतेन्दु युगीन आधुनिक कविता इस प्रवृत्ति से सर्वथा भिन्न है। पहलीबार इसमें पौराणिक एवं ऐतिहासिक वस्तु से भिन्न सामान्य मानव की प्रतिष्ठा की गयी है। साथ ही कवियों की दृष्टि पौराणिक एवं ऐसिहासिक प्रसंगों में रहने की जगह अपने वर्तमान जटिल राष्ट्रीय आंदोलन पर केन्द्रित हुई काव्य-कल्पना के मजबूत बंधनों को तोड़कर कवियों ने वर्तमान जीवन की सच्चाइयों को व्यक्त करने की कोशिश की है। इस मूल प्रवृत्ति गत भिन्नता ने बारतेन्दु युगीन कविता को आधुनिक बनाया। शिल्प के क्षेत्र में कोई विशेष प्रयोग न होने पर भी वस्तु - चयन की इस चेतना ने भारतेन्दु युगीन कविता को आधुनिक बनाया है। भाषा के स्तर पर खड़ी बोली के कुछ प्रयोग शुभ होने पर भी इस युग की काव्य भाषा अपने पूर्व युगों की तरह ब्रज भाषा ही रही है। यह कहना ज्यादा समीचीन होगा कि आधुनिक परिवेश ने भारतेन्द युगीन कविता आधुनिक बनाया है। सामाजिक बदलाव के साथ साथ मुद्रण कला के विकास से पत्र-पत्रिकाओं के बढ़ते विकास ने साहित्य को सर्व सुलभ बना दिया है। इसने साहित्य में विस्फोटात्मक परिवर्तन किया है। भारतेन्दु युगीन कविता इसका परिणाम है।

2.1 कालसीमा :-

भारतेन्दु युगीन काव्य की दिल्ली काल सीमा आधुनिक काल के आरंभ के साथ संबंध रखती है। अधिकांश साहित्येतिहासकारों के अनुसार आधुनिक काल का आरंभ सन् 1857 से माना जाता है। इसी के अनुरूप भारतेन्दु युगीन काव्य की निचली काव्य सीमा सन् 1857 माना जा सकता है। परन्तु भारतेन्दु के प्रवेश के साथ ही उसमें नयी चेतना जागती है। जो लगभग सन् 1870 के साथ ही संपन्न होती है। भारतेन्दु युगीन कविता की ऊपर की काल सीमा द्विवेदी युगीन कविता के साथ संबंध रखती है। जिसका आरंभ लगभग सन् 1900 से माना जाता है। इस रूप में भारतेन्दु युगीन कविता की काल सीमा सन् 1857 से सन् 1900 तक मानी जा सकती है। इस काल सीमा में भारतेन्दु तथा इनके मंडल के कवियों ने कविताएं लिखा हैं।

2.2 काव्यप्रवृत्तियाँ :-

भारतेन्दु युगीन कविता नव जागरण के प्रथम दौर की कविता है। साहित्येतिहासकारों ने इसे संधि युग के रूप में भी देखा है। यही कारण है कि भारतेन्दु युगीन कविता में एक ओर समाज में प्रचलित कुरीतियों, धार्मिक मिथ्यचारों अमीरों की स्वार्थपरता, अंग्रेजों की शोषण नीतियों, देश की साम्राज्य दुरावस्था, अकाल- महामारी आदि का चित्रण किया गया है। तो दूसरी ओर इस कविता में रीतिकालीन श्रृंगारी परंपरा का भी निर्वहरण होता रहा है। इस युग के अधि-युगीन लक्षणों की ओर इशारा करते हुए शुक्लजी ने सही लिखा है - ''अपनी सर्वतोमुखि प्रतिभा के बल से एक ओर तो वे पद्माकर और हिमदेव की परंपरा में दिखाई पड़ते हैं, दूसरी ओर बंग देश के माइकेल और प्रेमचंद की श्रेणी में। एक ओर तो राधाकृष्ण की भक्ति में घूमते हुए गई भक्तिमाल गूंथते दिखाई देते थे, इसकी ओर मंदिरों के अधिकारियों, और टीका-धारी भक्तों के चरित्र उडाते और स्त्री - शिक्षा, समाज सुधार आदि पर व्याख्यान देते पाये जाते थे। प्राचीन और नवीन के उस संधिकाल में जैसी शीतल कला का संचार उपेक्षित था वैसाही शीतल कला के साथ भारतेन्दु का उदय हुआ। इस में संदेह नहीं।'' इस से स्पष्ट होता है कि नवजागरण की समस्त चेतना भारतेन्दु के द्वारा ही अनुप्राणित है। भारतेन्दु सिर्फ एक लेखक नहीं बल्कि वे एक संस्था है या युग प्रवर्तक है। उनके युग प्रवर्तन से इस युग की कविता को ही एक नयी दिशा मिली है। प्रसिद्ध साहित्येतिहासकार डॉ. गणपति चंद्र गुप्त ने इस की पुष्टि की है। उन्होंने लिखा है - ''युग प्रवर्तन एवं युग का नेतृत्व करने के लिए केवल नये युग का ज्ञान या बोध पर्याप्त नहीं है, उस ज्ञान या बोध को सच्ची अनुभूति एवं सहज अभिव्यक्ति के माध्यम से जन-साधरण के हृदय तक पहुंचा देने की क्षमता भी अपेक्षित है। निस्संदेह, भारतेन्दु हरिश्चंद में यह क्षमता थी और इसी

के बल पर वे अपने युग को सच्चा एवं सफल नेतृत्व प्रदान कर सके। ऐसा हमारा विश्वास है।''

भारतेन्दु की सेवाओं से भारतेन्दु युगीन कविता में भाव,भाषा और छंद सभी में प्राचीनता का परिष्कार और नवीनता का समावेश हुआ है। जहाँ इस में भारत की दयनीय, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और संस्कृतिक दशा पर करुण क्रंदन सुनाई पडता है वहां प्राचीन भारत के गौरव, संस्कृति की उच्चता और राजनीतिक गरिमा का गायन भी दिखाई पड़ता है। इस युग के कवियों को इस बात का दु:ख था कि देश वासी अपने प्राचीन उज्जवल आदर्शों एवं मूल्यों को भूल बैठे हैं और प्राश्चात्य सभ्यता को उच्च एवं विकसित मान बैठे हैं। इस मानसिकता से देश वासियों को मुक्त करने की कोशिश भी उन्हों ने की है। इस की अभिव्यक्ति के लिए भारतेन्दु युगीन कविता ने अपने समय की जन भाषा ब्रज भाषा को ही अपनाया। ब्रज भाषा काव्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित रहना था। एक मुख्य कारण है। गद्य खडीबोली में लिखने के बावजूद कविता ब्रजभाषा की तरफ झुकी रही है। इस युग के कवियों ने विशेष संदर्भो में आनंद प्रकट करने के लिए प्रशस्तियाँ भी लिखे हैं। इनमें उन्होंने देशकी राजनीतिक दशा, धार्मिक और सामाजिक दशा पर सदा ध्यान रखा है। इनकी तरफ सदा जनता को सचेत करने की चेष्टा ही की है। परन्तु विशेषता यह है कि इन्होंने ब्रिटिश शासन की प्रशंसा की प्रशस्तियाँ लिखी हैं। इसे देखते हुए आलोचकों ने इस युग के कवियों की देश भक्ति के प्रति संदेह भी प्रकट किया है। भारतेन्दुयुगीन कविता में कविता, सवैया, दोहा छप्पय आदि प्राचीन छंदों के साथ साथ लोक प्रचलित गीतों – लावनी और कजली का भी प्रयोग किया गया है। इस रूप में आधुनिक काल के आरंभ में ही कवियों ने हिन्दी कविता को एक उच्च स्थान पद प्रतिष्ठित करने की सफल कोशिश की है। इस का पूरा श्रेय भारतेन्दु को ही दिया जा सकता है। भारतेन्दु युगीन कविता के विश्लेषण करने से निम्न प्रवृत्तियाँ सामने आती हैं।

2.2.1 राष्ट्रीय भावना :-

इस युग की कविता का मुख्य स्वर देश भक्ति है क्योंकि इस युग के आरंभ से ही समस्त साहित्यिक चेतना अंग्रेज शासन के विरोध में खडी थी। यद्यपि अंग्रेज शासन की कुछ नीतियाँ कुछ देशवासियों को तथा साहित्यिक व्यक्तियों को तर्क सम्मत लग रही थी। अत: इस युग की राष्ट्रीय भावना के दो स्वर मिलते हैं। एक देश भक्ति दूसरा राज भक्ति। देश भक्ति ही मूल स्वर था। इस युग के कवियों ने भारत की वर्तमान दुर्दशा को देखते हुए उसके लिए अंग्रेज सरकार और उसकी नीतियों को ही जिम्मेदार ठहराया है। इसके लिए उन्होंने अतीत के गौरव को एक उपकरण के रूप में इस्तेमाल किया है। इसमें कोई चाटुकारिता नहीं थी। बाहर से सबकुछ ठीक लगनेवाली अंग्रेजों की नीतियों

की सच्चाइयों को उन्होंने उजागर किया है –

भीतर–भीतर सब रस चूस, बाहर से तन मन मूसे ।
जाहिर बातन में अति तेज क्यों सखि ! साजन, नहीं अंगरेज ॥

भारतेन्दु ने अंग्रजों की असली नीति की प्रशंसा करते करते ही विरोध किया है –

अंग्रेज राज सुख साज सब भारी ।
पैधन विदेश चलि जात यहै अति ख्वारी ॥

उन्होंने विदेशी वस्तुओं के प्रचार पर दु:ख प्रकट किया है। राधाचरण गोस्वामी ने भारतीय इतिहास के पूर्व वीरों राणा प्रताप, छत्रसाल, शिवाजी जैसों से प्रेरणा लेकर राष्ट्रीय भावना जगाने के लिए 'हमारे उत्तम भारत देश' जैसी कविताएँ लिखी हैं। इसी प्रकार बदरी नारायण चौधरी प्रेमघन ने 'धन्य भूमि भारत सब रतननि की उपजावि' जैसी पंक्तियाँ लिखकर जन जन मध्य में राष्ट्रीय भावना जगाने की कोशिश की है। इन्हों ने एसी पंक्तियाँ व कविताएँ लिखकर परवर्ती कवियों को भी प्रेरित किया है। भारतेन्दु की 'विजयिनी विजय वैजयंती' प्रेमघन की 'आनंद अरुणोदय', प्रताप नारायण मिश्र की 'महापर्व', ''नया वसंत'' तथा राधा कृश्ण की भारत बारह यांस और 'विनय' शीर्षक कविताएँ राष्ट्रीय भावना की श्रेष्ठ कविताएँ मानी जा सकती हैं। इन कविताओं में अंग्रेजों की शोषण नीति की सच्चाइयों को उजागर करके नवयुवकों को आकृष्ट करके पुनर्जागरण का मंत्र, अंग्रेजों के प्रति तीखा व्यंग्यात्मक शैली अपनायी गयी है। प्रेमघन ने अपनी कविता 'हार्दिक हर्षादर्श' में अंग्रेजों की स्वार्थपूर्ण शासन–प्रक्रिया के लिए भी ईस्ट–इंडिया कंपनी को दोषी ठहराया है। इनके अतिरिक्त अंग्रेजों की ऐसी नीतियों का उन्होंने समर्थन भी किया है, जिनसे जनता को प्रयोजन था। ऐसी कविताओं को आलोचकों ने राम भक्ति संबंधी कविताएँ कही हैं । भारत मिश्रा, विजय वल्लरी, रिपु नाष्टक आदि भारतेन्दु की रामभक्ति परक कविताएँ मानी जाती हैं। इस युग की कविता में व्यंजित देशभक्ति पर टिप्पणी करते हुए डॉ. राम विलास शर्मा ने लिखा है– ''उनका देशप्रेम एक ओर हिन्दू पुनरूत्थानवाद की मुस्लिम–विरोधी सांप्रदाय लिखिने में तो दूसरी ओर राम भक्ति की अवसरवादिता के संकीर्ण केरे में ही अंत तक चक्कर काटता रहा।''

2.2.2 समाज - सुधारवादी स्वर :-

रीतिकाल की श्रृंगार विलासिता की प्रवृत्ति के बाद पहली बार कविता में सामान्य मानव जीवन और उसकी समस्याओं की अभिव्यक्ति हुई है। सामाजिक रुग्मताओं, सामाजिक समस्याओं के प्रति

चेतना जगाने तथा आवश्यक सुधार लाने के लिए कविता को उपकरण माना गया। कविता मनुष्य की एकता समानता और भाई-चारे की वाहिका बनी। उसमें सामाजिक कुरीतियों, धार्मिक मिथ्याचार, छल-कपट, अमीरों एवं धनी लोगों की स्वार्थ परता, पाश्चात्य सभ्यता के रंग में रंगे हुए शिक्षित वर्ग पर व्यंग्य, पुलिस और कर्मचारियों की लूट-कसोट, अदालतों में प्रचलित अनीति, देश की सामान्य दुर्दशा आदि अनेक सामाजिक समस्याओं पर इस युग के कवियों ने लेखनी चलायी है। भारतेन्दु ने 'भारत दुर्दशा' में पद्यों के माध्यम से वर्णाश्रम धर्म की संकीर्णताओं का विरोध किया। उन्होंने कहा- ''बहुत फैलाये हम ने धर्म, छाया छुआछूत का कर्म।'' प्रताप नारायण मिश्र ने 'मन की लहर' में बाल विधवाओं की करुणा दशा पर प्रकाश डाला है। भारतेन्दु युगीन कवियों तत्कालीन सामाजिक समस्याओं की ओर दृष्टि दौडाकर उनके समाधान के लिए जनता को सचेत किया है। उनका यह कार्य परवर्ति कवियों के लिए भी प्रेरणा बनी।

2.2.3. भक्ति तत्त्व :-

भारतेन्दु युग के कवि प्राचीनता से पूर्णतया मुक्त नहीं हो पाये। अपने पूर्ववर्ती युगों की तरह उन्होंने भी अपनी कविताओं भक्ति तत्व को स्थान दिया है। पुराने कवियों की तरह उन्होंने भक्ति में लीला पर गाये। इस युग में भक्ति के तीन रूप उभरे हैं । निर्गुण भक्ति, वैष्णव भक्ति और स्वदेशानुराग युक्त ईश्वर भक्ति। राम काव्य की अपेक्षा इस युग में कृष्णभक्ति काव्य अधिक रचे गये है। संभवत: भारतेन्दु के कारण जिन्होंने स्वयं वल्लभ संप्रदाय में दीक्षा ली था, चल यह पडा कि 'मेरे तो साधन एक ही है, जग नंदलाला वृष-भानु दुलारि'। भारतेन्दु में इस रूप में मध्ययुगीन माधुर्य-भक्ति भावना प्रधान थी। प्रेमघन की 'अलौकिक लीला' तथा अंबिकादत्त व्यास का 'कंसवध' रचनाएँ भी भक्ति रचनाएँ हैं। जगमोहन सिंह का 'दुर्गा स्तुति' प्रेमघन कृत 'सूर्य स्तोत्र' आदि स्तुति काव्य के अंतर्गत आते हैं। प्रेमघन की 'आनंद-अरुणोदय' में देशानुराग व्यंजक-भक्ति भावना प्रकट हुई हैं। भारतेन्दु ने 'जैन-कुतूहल' में धर्म विषय की यथार्थता पर प्रकाश डाला है। भारत की तत्कालीन विसंगतियों की ओर तत्कालीन कवियों की दृष्टि हुई है। इस प्रकार ईश्वर भक्ति और देशभक्ति को जोड़ कर उनका सुंदर समन्वय करके इस युग की कविता में भक्ति तत्व निरूपित हुआ है। भारतेन्दु और उनकी मंडली के कवियों ने काव्य की आत्मा रस को मानकर अपनी कविताओं में राम और कृष्ण भक्ति के माधुर्यपरक श्रृंगार चित्रण किया है। भारतेन्दु ने 'प्रेम सरोवर','प्रेम माधुरी', 'प्रेम फुलवारी' आदि में भक्ति श्रृंगार और विशुद्ध श्रृंगार दोनों का समावेश किया है। भारतेन्दु के बाद ठाकुर जगमोहन सिंह की कविता 'प्रेम संपत्ति लता' में निश्चल सरस रागात्मक प्रेम प्रकट हुआ है।

2.2.4 प्रकृति - चित्रण :-

भारतेन्दु युगीन कविता में प्रकृति चित्रण भी एक मुख्य प्रवृत्ति बनकर आयी है। परन्तु कवियों ने नवीनता की जगह परंपरा को ही प्राथमिकता दी है। इन्होंने प्रकृति को उद्दीपन शक्ति के रूप में ही देखा है और बाह्य प्रकृति का ही अधिक चित्रण किया है। ठाकुर जगमोहन सिंह ने प्रकृति का वर्णन जिस शैली में किया उस रूप में युग के अन्य कवियों ने नहीं किया। जो संवेदनशीलता ठाकुरजी में है वह अन्य कवियों में दिखाई नहीं पडती है।

2.2.5 इतिवृत्तात्मकता :-

विषय वैविध्य एवं काव्य रूप वैविध्य इस युग की एक विशेषता है। खासकर फुटकर पद तथा कविताएँ इस युग में अधिक रची गयी हैं। इनमें भी विचार और अनुभूति का गहनता नहीं बल्कि सिर्फ इतिवृत्तात्मकता को इन्होंने प्रमुखता दी है। कहीं-कहीं तो मात्र तुक बंदिया जोड़ी गयी हैं। प्रतापनारायण मिश्र ने पद्यात्मक निबंध लिखे हैं और अन्य कवियों ने इतिवृत्त को मुख्य मानकर उपदेशात्मक एवं सुधारात्मक कविताएँ लिखी हैं। जो वास्तव में बाद के युग द्विवेदी युग में और विकसित हुई हैं।

2.2.6 भाषा-शिल्पादि :-

काव्य-कविताएँ, रीति-निरूपण, समस्या पूर्ति से संबंधित कविताएँ इस युग में रची गयी हैं। इस युग में काव्य शिल्प की अपेक्षा काव्य-वर्णन विषय पर अधिक ध्यान रखागया है। काव्य रूप की दृष्टि से इस युग में मुक्तक काव्य ही अधिक रचे गये हैं। भाषा चेतना इस युग की मुख्य चेतना है। शासकीय कारणों से उर्दू भाषा को महत्त्व मिला था। उसके समान रूप में लाने के लिए भारतेन्दु द्वारा विरचित 'हिन्दी भाषा' सक्षम हुई। यद्यपि वे उर्दू के एकांत विरोधी नहीं थे फिर भी कविता में ब्रज भाषा को अपनाकर अन्य प्रादेशिक भाषाओं के शब्द चयन कर जैसे कन्नौजी, भोजपुरी, मिर्जापुरी, बुंदेलखडी आदि प्रादेशिक भाषाओं के शब्दों के चयन पर बल देते थे। इस युग की बहुत कम रचनाओं में खडीबोली का प्रयोग हुआ है। भारतेन्दु युगीन कविता मुख्य रूप से पद शैली में रची गयी है। इसलिए पारंपरिक छंदों का ही अधिक प्रयोग हुआ है। इन्होंने लोकगीत शैलियों को भी अपनाया है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि इन प्रवृत्तियों के कारण ही भारतेन्दु युगीन कविता अपने पूर्वयुग की कविता रीतिकालीन कविता से पूर्णतया भिन्न रही है। इस प्रवृत्तिगत विश्लेषण से यही निरूपित होता है।

2.3. भारतेन्दु युगीन प्रमुख कवि :

इस युग की समस्त चेतना भारतेन्दु से ही अनुप्राणित है। इसलिए वे हीं संरक्षक, प्रेरक, मार्गदर्शक और युग प्रर्वतक है। इनके अतिरिक्त प्रताप नारायण मिश्र, बदरी नारायण चौधरी, ठाकुर जगमोहन सिंह, अंबिकादत्त व्यास और राधाकृष्ण दास भी इस युग के प्रमुख कवि माने जाते हैं। श्रीधर पाठक, बालमुकुंद गुप्त और हरिऔध की कविताएँ भी इस युग में प्रकाशित होना शुरू होती हैं।

2.3.1 भारतेन्दु हरिश्चन्द्र :

भारतेन्दु के पिता बाबू गोपाल चंद्र अपने समय के प्रसिद्ध कवि थे। बचपन से ही भारतेन्दु ने कविता लिखना शुरू किया था। उनकी बहुमुखी प्रतिभा को देखकर ही उन्हें 'भारतेन्दु' की उपाधि से शोभित किया गया था। वे कवि के साथ पत्रकार भी थे। कवि वचन सुधा तथा हरिश्चन्द्र चंद्रिका पत्रिकाओं का कुशल संपादन भी उन्होंने किया था। नाटक, निबंध आदि लिखकर उन्होंने गद्य का अधिक विकास किया था।उनको कवि से ज्यादा गद्यकार के रूप में अधिक सफलता प्राप्त हुई था। उन्होंने पर्याप्त मात्रा में कविताएँ भी लिखी हैं। उनकी कविताएँ एक तरफ सरसता और लालित्य संपन्न है तो दूसरी तरफ स्थूल वर्णनात्मक परिधि को लांघने में असमर्थ हैं। लगभग उत्तर काव्यों की रचना उन्होंने की हैं। जिनमें 'प्रेम मालिका','प्रेम सरोवर','गीत गोविंद',नंद वर्षा विनोद, विनय प्रेम पचासा, प्रेम फुलवारी, वेणु गीति आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। उनकी रचनाओं में प्राचीनता एवं नवीनता का समावेश हुआ है। वे उस समय की परिस्थिति के अनुसार राम भक्त एवं देशभक्त दोनों थे। भक्ति में वे दास्य भक्ति तथा माधुर्य भक्ति के कवि थे। उनमें इतिवृत्तात्मक शैली के साथ-साथ पैनी हास्य-व्यंग्यात्मक शैली भी पायी जाती है। हिन्दी और उर्दू के संदर्भ में उन्होंने मध्यम मार्ग को अपनाया। उन्होंने छंदोबद्ध कविताओं के साथ साथ गेय पद शैली में कविताएँ रची हैं।

2.3.2. प्रताप नारायण मिश्र :-

मिश्र जी ब्राह्मण नामक पत्रिका के संपादक थे। इनकी कविता में व्यंग्य की मात्रा अधिक है। उन्होंने मुख्यतया कविता, नाटक, निबंध लिखे हैं। प्रेम की पुष्पावली, मन की लहरें, लोकोक्ति शतक, तृत्यंतम श्रृंगार विलास आदि उनकी मुख्य रचनाएँ हैं। प्रताप-लहरी उनकी प्रतिनिधि रचनाओं का संकलन है। हास्य-व्यंग्य रचनाओं के क्षेत्र में वे अग्रणी हैं। इनकी कविताएँ ब्रजभाषा में लिखी गयी हैं।

2.3.3. बदरी नारायण चौधरी प्रेमधन :

प्रेमघन जी नागरी नीरद तथा आनंद कादंबिनी प्रत्रिकाओं के संपादक थे। 'अब्र' नाम से उन्होंने उर्दू में कुछ कविताएँ लिखी हैं। जीर्ण जन पद,आनंद अरुणोदय, हार्दिक हर्षादर्श, मयंक महिमा, अलौकिक लीला, वर्षा बिंदु आदि उनकी लोकप्रिय काव्य रचनाएँ हैं। ये सारी काव्य रचनाएँ 'प्रेमघन सर्वस्व' में भी संग्रहित हैं। भारतेन्दु की सारी मुख्य प्रवृत्तियाँ प्रेमघन में दिखाई पड़ती हैं। वे मुख्यतया ब्रजभाषा में ही काव्य रचनाएँ करते थे। लोकधुन इन्हें विशेष पसंद हैं। लावनी शैली उनमें अधिक पायी जाती है।

2.3.4 ठाकुर जगमोहन सिंह :

कवि के रूप में ये अधिक प्रसिद्ध हैं। जन्म से वे राज थे। मध्य प्रदेश के विजय राघवगढ रियासत के रहे हैं। काशी में इन्होंने शिक्षा प्राप्त की। वहीं भारतेन्दु के संगत में आकर श्रृंगार वर्णन तथा प्रकृति चित्रण से संबंधित कविताएँ लिखना शुरू किया। प्रेम संपत्ति लता, श्यामलता, श्यामा सरोजिनी और देवयानी आदि उनकी लोकप्रिय काव्य कृतियाँ है।

2.3.5 अंबिका दत्त व्यास :

काशी निवासी व्यासजी श्रेष्ठ कवि थे, वे संस्कृत और हिन्दी के अच्छे विद्वान थे। दोनों भाषाओं में उन्होंने रचनाएँ लिखी हैं। 'पीयूष-प्रवाह' पत्रिका का संपादन भी उन्होंने किया है। पावस पचासी, सुकवि सतसई, दो हो होरी आदि उनकी मुख्य काव्य कृतियाँ मानी जाती है। खडीबोली में उन्होंने 'कंस वध' नामक महाकाव्य रचा है। 'बिहारी विहार' में उन्होंने कविवर बिहारी के दोहों का कुंडलियाँ छंद में भाव-विस्तार किया है।

2.3.6 राधाकृष्णदास :

राधाकृष्णदास भारतेन्दु के फुफेरे भाई हैं। वे बहुमुखी प्रतिभा के कवि हैं। उन्होंने कविता के अतिरिक्त नाटक, निबंध, मोटे आलोचना की रचनाएँ भी लिखी हैं। भारत बारह मासा, देश-दशा आदि उनकी काव्य कृतियाँ है। इनमें भारत की समसामाजिक दुर्दशा का चित्रण पाया जाता है। राधाकृष्ण ग्रंथावली में उनकी कुछ कविताएँ संकलित हैं। इनके अतिरिक्त नवनीत चतुर्वेदी, जगन्नाथ दास रत्नाकर भी इसी युग में हुए हैं।

उपर्युक्त सर्वेक्षण से यही निरूपित होता है कि अपने आरंभिक दौर में ही हिन्दी कविता ने पर्याप्त सफलता प्राप्त की है। वह रीतिकालीन श्रृंगार परकता से मुक्त होकर पहली बार जनवाणी बनी

है। समाज और राष्ट्र को देने वाले अनेक लोकमंगल कारी विचार इस युग की कविता में व्यक्त हुए हैं। समाज सुधार तथा राष्ट्रीय चेतना इस युग की कविता की दो मुख्य प्रवृत्तियाँ रही है। जिनके कारण भारतेन्दु युगीन कविता अपने पूर्व युग से पूर्णतया अलग होती है। भारतेन्दु युग की कविता पर की गयी निम्न टिप्पणी उक्त युग के साहित्यिक मूल्यांकन को बहुत मार्मिक ढंग से करती हैं – ''भारतेन्दु काव्य उस युग की चेतना की प्रतिनिधि ही नहीं, बल्कि उसका प्रतिनिधित्व भी करता है। युग की गतिविधियों और आवश्यकताओं के कारण तत्कालीन कविता में यथार्थवादिता का समावेश हुआ। किन्तु उसमें आदर्शवादिता का भी सहज में समावेश हो गया। जहाँ इन्होंने भारत की दयनीय सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक दशा पर करुणा क्रंदन किया वहाँ प्राचीन भारत के गौरव, संस्कृति की उच्चता और राजनीतिक गरिमा का उच्च राग आलापा।'' अस्तु भारतेन्दु युगीन कविता ने केवल समृद्ध हुई बल्कि आगामी काव्यांदोलनों के लिए आवश्यक मजबूत नींव की भी उसने सूत्रपात किया है।

3. द्विवेदी युगीन कविता

भारतीय नव जागरण की सारी विशेषताएँ द्विवेदी युगीन कविता में देखी जा सकती हैं। यह वह युग माना जाता है। जिसमें कई युगों से हिन्दी कविता में नये आरहे ब्रजभाषा के सार्वभौमिक अधिकार को चुनौती दी गयी है। समय और संदर्भ की मांग के अनुसार इस युग के कवियों ने अपनी काव्य प्रतिभा को ब्रजभाषा की जगह खडीबोली हिन्दी में बडी सफलता के साथ व्यक्त किया है। काव्य भाषा बनने के लिए समस्त लालित्य तत्वों को खडीबोली में ढूँढकर इस युग के कवियों ने हिन्दी कविता के क्षेत्र में एक बडा ही विस्फोट ही किया है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस सुनियोजित प्रक्रिया के पीछे आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी के कुशल एवं सत्प्रयास ही प्रमुख रहे हैं। भारतेन्दु युग में भारतेन्दु को जो गौरव प्राप्त हुआ है। वही गौरव इस युग में इन्हीं को दिया जाता है। वे महान युग प्रवर्तक और युग द्रष्टा थे। ऐसा माना जाता है कि इस युग के सभी गद्य-पद्य आंदोलन इन्हीं के नेतृत्व में हुए हैं। इनके कृतित्व का साहित्यिक महत्त्व न होने हुए भी उनके प्रयासों का ऐतिहासिक महत्व अवश्य है। उनके साहित्यिक व्यक्तित्व में पत्रकार और अनुवादक प्रबल थे। उसीके अनुरूप वे एक श्रेष्ठ पत्रकार और कुशल अनुवादक के रूप में उभरे हैं।

द्विवेदी जी के साथ ही उनकी पत्रिका 'सरस्वती' का नाम भी छोडा जाता है। सरस्वती के कारण द्विवेदी जी को तथा द्विवेदी जी के कारण सरस्वती को पहचान मिली है। अपने समस्त साहित्यिक कार्यक्रमों को द्विवेदीजी ने सरस्वती के द्वारा कार्यरूप दिया है। उन्होंने सरस्वती के द्वारा नये कवि और लेखकों का संगठन बनाया। साथ ही उनकी गद्यशैली और भाषा का संस्कार किया। द्विवेदी शास्त्र प्रेमी और शुद्धवादी थे। कवि खडीबोली में व्याकरण से मुक्त तथा दूसरी भाषाओं के शब्दों को यथावश्यक मिश्रण करके प्रयोग करते थे। द्विवेदी जी को इस का अभीष्ट नहीं था। इसके लिए उन्होंने आंदोलन छोडा। कामता प्रसाद, चंद्रधर शर्मा गुलेरी जैसों की सहायता से इसे सुधारा कविता के क्षेत्र में उन्होंने सुधार प्रकट किया। उस समय श्रीधर पाठक ने इतिवृत्तात्मक शैली का प्रयोग किया था। द्विवेदी जी ने इसी का समर्थन किया। उनके अनुसार बंगला की कोमल कांत पदावली की जगह मराठी की इतिवृत्तात्मक शैली ही खडीबोली हिन्दी के लिए अनुकूल है। इसलिए द्विवेदी जी ने इसी शैली को प्रश्रय दिया। इस रूप में इस युग में उनके बताये मार्ग पर तथा उनके द्वारा निर्धारित पर द्विवेदी कविता आगे बढी।

द्विवेदी जी का आविर्भाव इस समय हुआ जब साहित्य के क्षेत्र में एक ऐतिहासिक माँग हुई थी। भारतेन्दु ने अपने प्रयासों से हिन्दी साहित्य को ऐसी स्थिति में पहुँचा दिया था कि वह परिस्थितियों के संदर्भ में पुनर्जागरण का सशक्त आयुध बन सके। कविता, निबंध, नाटक, उपन्यास तथा आलोचना सभी महत्वपूर्ण विधाओं को एक रूप दिया जा चुका था। सिर्फ उन्हें विकसित करने का काम बच गया था। यही उस समय की ऐतिहासिक मांग था। इसी काम को द्विवेदी जी ने सहर्ष संभाल लिया था। उस युग में राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन में परिवर्तन बडी तेजी से हो रहे थे। ऐसी घटनाएँ घटित हो रही थी जिससे भारतीय जन मानस क्षुब्ध हो उठा था। इस समय बंगाल का विभाजन हुआ था। जिससे भावुक जनता में विद्रोह फैला गया था। परिणाम स्वरूप राष्ट्रीय भावना भडकी थी। इसी समय स्वतंत्रता की लडाई के लिए राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हो चुकी थी। उसके नेत्रुत्व में असहयोग आंदोलन शुरू हो चुका था। उसके सामने जातीय गौरव और राष्ट्रीय की रक्षा के आदर्श थे। इनको जगाने का कार्य भारतेन्दु ने कर दिया था। आगे इनके पुनरुत्थान की जरूरत थी। ऐसी पुनरुत्थान के राजस्व को द्विवेदी जी ने संभाल लिया। उनके प्रयासों के स्वरूप द्विवेदी साहित्य का सर्वतोमुखी विकास हुआ। उस पर अनेक देशीय-विदेशीय साहित्य एवं विचारधाराओं का प्रभाव पडा। इसका संगठन और नेतृत्व द्विवेदी जी ने किया। युवाकवियों का एक ग्रूप उन्होंने बनाया ।

द्विवेदी जी ने अपने समय की राजनीतिक घटनाओं से भी प्रेरणा ग्रहण की है। सन् 1905 में हुए कांग्रेस के काशी अधिवेशन में लोकमान्य तिलक ने 'स्वतंत्रता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है' का नारा दिया, इससे प्रेरणा ग्रहण कर क्रांतिकारी युवक बलिदान देने के लिए तैयार हुए। राष्ट्रीय चेतना की यह चिनगारी साहित्यिक क्षेत्र में भी पैदा हुई। द्विवेदी जी ने अपनी सरस्वती के द्वारा इस चिनगारी में हवा भरी। द्विवेदी जी ने स्वयं रचनाएँ थोडी कीं। पर उन्होंने साहित्यकारों का निर्माण अत्यधिक किया। उन्होंने भाषा-संस्कार पर अधिक बल दिया और प्रयत्न किया कि कविता और गद्य की भाषा में अंतर मिट गया। इसके पूर्व गद्य में खडीबोली का व्यवदार तो होने लगा था, पर कविता की भाषा ब्रज भाषा ही थी। लोगों का विचार था कि खडीबोली में काव्य रचना नहीं हो सकती। पर द्विवेदी जी और उनके अनुयायियों ने यह सिद्ध करके दिखलादिया कि खडीबोली में केवल रचना ही नहीं, सुंदर काव्य रचना हो सकती है। भावना के क्षेत्र में राज भक्ति के स्थान पर जो देश भक्ति की भावना आयी और देश ने जो अपने अतीत का गौरवमय इतिहास देखना आरंभ किया था। इसीके आधार पर द्विवेदी युगीन साहित्यकारों ने पुनरुत्थानवादी साहित्य का सृजन किया। उन साहित्यकारों में मैथिली शरण गुप्त, अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध, गोपालशरण सिंह, गया प्रसाद शुक्ल सनेही और नाथुराम शर्मा आदि मुख्य है।

3.1 कालसीमा :

भारतेन्दु युग के समापन के साथ द्विवेदी युग आरंभ होता है। इसकी निचली काल सीमा सन् 1900 है। तो इसकी अंतिम काल सीमा सन् 1918 है। यानी सन् 1900 और सन् 1918 के बीच लिखी गयी कविता का द्विवेदी युगीन कविता का नाम दिया जाता है। इस युग को जागरण सुधार काल भी कहा जाता है। सन् 1857 की प्रथम लडाई के बाद देश के राजनीतिक वातावरण में अनेक परिवर्तन लाए। अंग्रेजों की कूट नीति से सामान्य जनता भी भलीभांति परिचित हो गयी। इसलिए जहाँ भारतेन्दु युग में देशभक्ति के साथ-साथ राजभक्ति के स्तर मिलते हैं। वहाँ द्विवेदी युग में सिर्फ देशभक्ति ही व्यक्त हुई। इसी युग के कविताओं में राष्ट्र की दुर्दशा के चित्रण के साथ अपने देश वासियों को स्वतंत्रता प्राप्ति की प्रेरणा भी थी। द्विवेदी जी के प्रोत्साहन एवं मार्गदर्शन के कारण इस युग की कविता में विषय की दृष्टि से अपार वैविध्य एवं नवीनता आई। द्विवेदी जी के प्रयत्नों से खडीबोली काव्य भाषा अधिक सुधर गयी है।

3.2 द्विवेदी युगीन कविता की प्रवृत्तियाँ :-

द्विवेदी युग ने हिन्दी कविता को एक नयी दिशा दी है। इस ने हिन्दी कविता को श्रृंगारिकता से राष्ट्रीयता की ओर, जड़ता से प्रगति की ओर तथा रूढि के स्वच्छंदता की ओर मोडा है। इस युग में प्राचीनता की जगह पूर्णतया नवीनता का समावेश हो गया। भारतेन्दु युग में जिन प्रवृत्तियों का बीज वपन हुआ था। वे इस युग में क्रियात्मक रूप से विकसित हुई। द्विवेदी जी ने हिन्दी कविता के भावपक्ष एवं कला पक्ष दोनों में नए आदर्शों की स्थापना की हैं। विकास के साथ सुधारात्मक प्रवृत्ति इस युग की बडी विशेषताएँ मानी जा सकती है। बीस वर्ष की अल्प कालावधि में द्विवेदी युगीन कविता ने अनेक वैविध्य पूर्ण प्रवृत्तियों को जन्म दिया है। निम्न विश्लेषण ही इस का साध्य प्रमाण है।

3.2.1 राष्ट्रीय भावना :-

राष्ट्रीय भावना अथवा देश भक्ति की भावना का जन्म भारतेन्दु युग में ही हो चुका था। इस युग में आकर वह अधिक बिखरी है। भारतेन्दु युग में वह सिर्फ बाह्य प्रवृत्ति थी। बल्कि द्विवेदी युग में वह गहरा गयी है। इस युग की राष्ट्रीय भावना प्रमुखत: जातीयता के गौरव पर टिकी था। डॉ.केसरी नारायण शुक्ल ने इस संदर्भ में लिखा है - ''इस से इस समय जो राष्ट्रीय जागरण हुआ वह एक प्रकार से हिन्दू जागरण था, क्यों कि इस जागरण में हिन्दू इतिहास और परंपरा का आश्रय या अवलंब प्रधान था। गौरव की भावना भी हिन्दुओं में जगी और हिन्दू ही'अतीत के समान वर्तमान और भविष्य को

सुधारने तथा समुज्जवल बनाने को सचेष्ट हुए। इस प्रकार वह राष्ट्रीय जागरण और हिन्दू पुनरुत्थान दोनों बना, फिर भी इन सब परिस्थितियों का सब से बडा और शुभ परिणाम यह हुआ कि जनता की हीनता की भावना दूर हुई और पाश्चात्य संस्कृति की चकाचौंध कम हो गई।'

इस युग की राष्ट्रीय भावना छोटी-छोटी लघु कविताओं के साथ-साथ लंबे काव्यों तक में व्यक्त हुई है। हरिऔध का 'प्रियप्रवास' , गुप्त जी का 'साकेत', राम चरित उपाध्याय का राम चरित चिंतामणि, आत्म नारायण कवि रत्न का 'भ्रमरगीत' हिन्दी भाषा के उत्कृष्ठ काव्य है ही इस के साथ-साथ वे देश भक्ति की महान रचनाएँ भी हैं। ये सभी काव्य कथासूत्र पर वह भी पौराणिक कथा सूत्र पर आधारित है। फिर भी कवियों ने बडे कलात्मक ढंग से इन में राष्ट्रीय भावना को अभिव्यंजित किया है।

इस युग की लघु कविताओं में भी देश भक्ति प्रकट हुई है। इस युग के कवियों ने जनता को समझाया कि पराधीनता मृत्यु से भी भयंकर है और स्वाधीनता स्वर्ग के समान है। इस के लिए उन्होंने जनता को बलिदान एवं प्राणोत्सर्ग की प्रेरणा दी, कवि शंकर 'बलिदान' नामक कविता में व्यक्त करते है -

देश भक्त वीरो, मरने से नेक नहीं डरना होगा
प्राणों का बलिदान देश की वेदी पर करना होगा।

स्पष्ट है कि कवि ने स्वार्थ से अलग बलिदान को ही देश भक्ति का मूल आधार बताया है।

3.2.2 समाज सुधार :-

द्विवेदी युग में सुधार कई रूपों में दिखाई पडता है। वह भाषा, समाज, धर्म, राजनीति तथा देशभक्ति कई रूपों में आया है। यह प्रवृत्ति भारतेन्दु युगीन कविता में थी। परन्तु वहाँ यह खंडनात्मक स्वर में व्यक्त हुई थी। उस युग के कवियों ने समाज के सभी अंगों को अपना कार्य क्षेत्र बनाया था। जब कि द्विवेदी युगीन कवियों ने समाज को समग्र रूप में ग्रहण किया। श्रीधर पाठक ने विधवाओं की दुर्दशा पर आठ आँसू रोए हैं। हरिऔध ने अछूतोद्धार, सामाजिक कुरीतियों और कुलीनता आदि पर व्यंग्यात्मक कविताएँ लिखी हैं। इस युग के सभी कवियों ने स्त्री-सुधार एवं उद्धार पर कुछ न कुछ अवश्य लिखा है। कविोयं ने सामान्य जनता भी दीन-हीन स्थिति के प्रति अपनी सहानुभूति दिखाई। कवि हरिऔध का निम्न उदाहरण द्रष्टव्य है -

आप आँखों खोल करके देखिए,

आप जित की जातियाँ हैं सिर-धरी।

पेट में उनके पडी दिखलाऊँगी

जातियाँ कितनी सिसकती या मरी।

नाथुराम शंकर और ठाकुर गोपाल शरण सिंह की कविताओं में दहेज प्रथा तथा बाल-विवाहों का कडा विरोध किया गया है। गुप्त जी के 'भारत-भारती' में जहाँ वर्तमान दशा पर करुण आँसू बहाए गए हैं। वहाँ उन में अतीत का हर्षोत्फुल्ल गाया है। इन के साकेत तथा यशोधरा काव्यों में नारी के उदात्त स्वरूप की प्रतिष्ठा की गयी है।

3.2.3 भक्ति भावना :-

भारतेन्दु युग की तरह इस युग की भक्तिभावना प्राचीनता का अनुकरण नहीं है। उस में धार्मिकता की जगह मानवता वादी चेतना अधिक दिखाई पड़ती है। ईश्वर के कोरे गुण-गान की जगह उसमें मानवीय आदर्शों की प्रतिष्ठा की गई है। मानवतावादी दृष्टिकोण की वहज से उस में मानव प्रेम से माधव प्रेम की व्यंजना की गयी। कवियों ने दीन-दुखियों के आँसुओं में ईश्वर प्राप्ति के गुण नजराये। उनका विश्वास है कि दीन दुखियों के आँसू पोंछने के ईश्वर खुश होंगे। ठाकुर गोपाल शरण सिंह ने लिखा है -

जग की सेवा करना ही बस है सब सारों का सारा।

विश्व प्रेम के बंधन ही में, मुझ को मिला मुक्ति का द्वारा॥

स्पष्ट है कि इनकी भक्ति भावना में संकीर्णता नहीं है। बल्कि ईश्वरीय आराधना को उन्हों ने विस्तार दिया है। इन कवियों को ईश्वर की दिव्य शक्ति का अनुभव जन सेवा में हुआ। बौद्धिकता के कारण राम और कृष्ण के प्रति उनकी भक्ति आदर्श मानव के रूप में व्यक्त हुई। जीवन, जगत और प्रकृति में व्याप्त ईश्वर के प्रति कवि की अभिव्यक्त भावनाओं में रहस्यात्मकता आ गई। कवियों ने सांकेतिक एवं अन्योक्ति शैलियों का प्रयोग भी किया है। एक कवि के शब्दों में -

तेरे घर के द्वार बहुत है, किस से होकर आऊं मैं।

सब द्वारों पर भीड़ बडी है, कैसे भीतर जाऊँ मैं॥

इस रूप में द्विवेदी युगीन कविता की भक्ति भावना गुणात्मक एवं साधनात्मक प्रवृत्ति से अलग हो कर रहस्यात्मकता की ओर उन्मुख होती है। इस युग के कवि समस्त प्रकृति में उस के सामास को अनुभव करते हैं।

क्षण भर में तब जड़ में हो जाता चैतन्य विकास।

वृक्षों पर विकसित फूलों का होता हास विलास॥

इस में कवि की साधना रहस्यात्मक हो गयी। वह प्रकृति के कण-कण में उस की खोज करता है। प्रकृति के प्रियक सहज परिवर्तन उसके लीला-विलास का अनुभव करता है। इस रूप में द्विवेदी युगीन कवि भक्ति भावना अपने पूर्व युगों से भिन्न है। जो धीरे-धीरे रहस्योन्मुखता की ओर झुक गयी है। जो परवर्ती काव्यांदोलनों की बुनियादी भी बनती है।

3.2.4 प्रकृति चित्रण :-

भारतेन्दु युगीन कविता में प्रकृति चित्रण प्राचीन परिपाटि पर ही हुआ है। प्रकृति को उद्दीपन शक्ति के रूप में ही देखकर कवियों ने उस के मनोहर चित्र प्रस्तुत किए हैं। उन्हों ने प्रकृति के बाह्य व्यापारों को ही अधिक महत्व दिया है। किन्तु द्विवेदी युगीन कवियों का ध्यान प्रकृति के आंतरिक तत्वों की ओर गया। आतंरिक तत्वों को अनुभूति के धरातल उतार कर उनके सूक्ष्म कार्य व्यापारों का भी उन्होंने चित्रण किया है। प्रकृति चित्रण बहुत से कवियों की मुख्य वस्तु बन गया है। इस में श्रीधर पाठक, मैथिली शरण गुप्त, हरिऔध, राम नरेश त्रिपाठी आदि सभी कवि शामिल हैं। इस संदर्भ में श्रीधर पाठक की एक उक्ति द्रष्टव्य है -

प्रकृति जहाँ एकांत बैठि, निज सप संवारति।

पल पल पलट ति वेष छनिक, छवि धिन-छन भारति॥

श्रीधर ने प्रकृति को सिर्फ प्रकृति के रूप में देखा। उस की संवेदना को चित्र का रूप दिया है। इस के अतिरिक्त रामनरेश त्रिपाठी ने अपने खंड काव्यों 'पथिक' और 'स्वप्न' में नहीं पर्वत और समुद्र आदि के चित्र अति मनोहर रूप में प्रस्तुत किए हैं। इन वर्णनों के बावजूद कुछ आल चकों को द्विवेदी युगीन कवियों के प्रकृति चित्रण में कोई नवीनता दिखाई नहीं पडी है। डॉ.केसरी नारायण शुक्ल कहते हैं - ''द्वितीय उत्थान के कवि ने प्रकृति के रहस्यों का उद्‌घाटन कर सके और न मानवता को प्रकृति का कोई संदेश ही प्रदान कर सके। नैतिकता के कोरे उपदेश भी इसी के परिणाम हैं। इस समय

के अधिक कवि प्रकृति के ऊपरी रूप की झलक-मात्र से संतुष्ट थेत। उन्हों ने प्रकृति की अंतरात्मा तक पहुंचने का प्रयत्न बहुत कम किया।'' इस समीश्र के बावजूद भारतेन्दु युग की तुलना में इस युग की कविता में प्रकृति चित्रण एक मुख्य विषय बनकर आया है। कवियों ने भी परंपरा की लोक पर न चलकर सर्वथा उसे एक नए रूप में देखने की कोशिश अवश्य की है।

3.2.5 इतिवृत्तात्मकता :-

इतिवृत्तात्मकता एक काव्य शैली है जो वर्णन प्रधान है। यद्यपि द्विवेदी युग के पहले ही हिन्दी कविता में इस की प्रतिष्ठा हुई है। भारतेन्दु युग के कवियों ने इस का प्रयोग किया है। परन्तु इस का पूर्ण विकास द्विवेदी युग में आकर हुआ है। इस का मुख्य कारण कविता के भावपक्ष का बदलना ही है। द्विवेदी युगीन कविता रीतिकालीन श्रृंगारिकता के पूर्णतया मुक्त हो गयी। श्रृंगार की अश्लीलता और उच्छृंखलता इस युग में नारी सौंदर्य की उदात्तता में बदल गयी। इसी ने द्विवेदी युगीन कविता के इतिवृत्तात्मकता की ओर मोडा है। अधिकांश आलोचक यह स्वीकार करते हैं कि द्विवेदी जी की यही शैली पसंद थी। इस संदर्भ में डॉ.शिव कुमार शर्मा कहते हैं - ''द्विवेदी जी के सामने दो शैलियों थीं - बंगला की कोमल-कांत पदावली और दूसरी मराठी की वर्णन प्रधान इतिवृत्तात्मक शैली, उन्होंने दूसरी शैली को अपनाया क्यों कि वह उन के मन के अधिक अनुकूल थी और साथ ही वह नैतिकता के प्रचार तथा आदर्श की प्रतिष्ठा के लिए भी उपयुक्त थी।'' भारतेन्दु युग के कवियों ने भी इसे अपने अनुकूल देखा था। उन्होंने ही पहली बार इस का प्रयोग किया था। द्विवेदी युग के कवियों ने इसे विकसित किया है।

3.2.6 हास्य-व्यंग्य :-

हास्य-व्यंग्य संप्रेषण को सुगम बनानेवाली प्रवृत्ति है। द्विवेदीयुगीन कवियों ने इसे अंग्रेज शासन की कूट नीति का पर्राजाश करने के लिए इस्तेमाल किया है। इस के अतिरिक्त शासन की दमन नीति तथा भारतीय समाज में व्याप्त कुरीतियां, धर्म के नाम पर होनेवाले अत्याचार, विदेशी सभ्यता का संधानुकरण आदि विषयों पर भी भर पूर व्यंग्य किया गया है। खास कर बालमुकुंद गुप्त जैसों ने अपनी कविताओं में व्यंग्य का प्रयोग किया है। उस समय के वायसराय लार्ड कर्जन ने एक संदर्भ में भारतीयों को झूठा कहा था। इस उक्ति से कुपित होकर कवि इस पर करारा व्यंग्य करते हुए लिखा है -

हम से सच की सुनो कहानी जिस से भरे झूठ की नानी।
सन है सश्य देश की चीज, तुम को उसकी कहां तमीज?

औरों को झूठा बतलाना, अपने सच की डींग उडाना।

ये ही पक्का सच्चापन है, सच कहना तो कच्चापन है॥

इस युग के अन्य हास्य-व्यंग्य लेखकों में ईश्वरी प्रसाद शर्मा तथा जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी प्रमुख हैं।

3.2.7 शिल्प-भाषादि :-

इस युग के कवियों ने बृहद काव्य-रूपों का अधिक प्रयोग किया है। काव्य रूपों के संदर्भ में प्रबंध, मुक्तक, प्रगति आदि विविध काव्य-रूपों को अपनाया है। पौराणिक हो या आधुनिक, किसी कथा के आधार पर काव्य-सृजन की प्रवृत्ति अधिक रही है। 'प्रिय प्रवास' 'साकेत', आदि महाकाव्य तथा 'जयद्रथ वध', 'किसान', 'मौर्य विजयी', 'प्रेमपथिक', 'मिलन' आदि श्रेष्ठ खंड काव्यों का प्रणयन इसी युग में हुआ। 'विकट भरा' 'केशों की कथा', 'रुक्मिणी संदेश', 'सती-सीता' वीर पंचरत्न आदि पद्य कथाओं की रचना भी इसी युग में हुई। इस युग को कवियों ने प्रगति शैली का भी प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है। काव्य भाषा के रूप में छंदों ब्रज भाषा का समर्तन करने वालों ने खडीबोली में विविध के प्रयोग के प्रति अविश्वास प्रकट किया था। परन्तु इस युग के कवियों ने इसे गलत सिद्ध किया है। इन्हों ने संस्कृत, हिन्दी तथा उर्दू छंदों का भी अपनी कविताओं में प्रयोग किया है। श्रीधर पाठक ने परंपरागत छंदों के साथ-साथ लावनी तथा उर्दू का छंद बहरों का भी सफलता पूर्वक प्रयोग किया है। संस्कृत वृत्तों में भी द्विवेदी युगीन कविता रची गयी है। कवित्त सवैया आदि छंदों का भी विधिवत प्रयोग इस युग की कविता में देखा जा सकता है। '

भाषा के स्तर पर पहली बार खडी बोली काव्य भाषा बनी। द्विवेदी जी के द्वारा यह परिष्कृत होकर काव्य भाषा के रूप में इस ने नया जन्म लिया। द्विवेदी जी ने उर्दू और अंग्रेजी पढे-लिखे लोगों को हिन्दी में लिखने के लिए प्रोत्साहित किया। खडी बोली का भी इन्होंने परिष्कार किया। उसे एक काव्यभाषा का स्थिर रूप प्रदान किया। इस युग के सभी कवियों ने द्विवेदी जी के विचारों के अनुकूल ही भाषा प्रयोग किया है।

3.3 द्विवेदी युग के प्रमुख कवि :-

द्विवेदी युग में कविता करने वाले कवियों की संख्या बढ गयी है। द्विवेदी का प्रोत्साहन और प्रेरणा इस के लिए मुख्य कारण रही है। द्विवेदी का प्रोत्साहन भी बहुमुखी था। ऐसे महान व्यक्ति के प्रोत्साहन मिलने के बाद कवि कर्म में प्रवृत्त होना बहुत सुखद माना जा सकता है। श्रीधर पाठक,

अयोध्या सिंह हरिऔध, मैथिली शरण गुप्त, रामनरेशत्रिपाठी, रामचरित उपाध्याय, रायदेवी प्रसाद, नाथुराम शंकर आदि इस युग के प्रमुख कवि माने जाते हैं।

3.3.1 श्रीधर पाठक :- (1859-1928 ई०)

श्रीधर पाठक आगरा के निकट जोंधरी गाँव के निवासी थे। जनब्रिमय गुणवंत, हेमंत, वनाषटक और देहरादून उनकी प्रमुख मौलिक कृतियाँ हैं। इन्होंने गोल्ड़स्मित की तीन काव्य रचनाओं का हिन्दी में अनुवाद किया है। 'एकांतवासी योगी' (दिहरमिट), 'श्रंत पथिक' (दिट्रैवेलर) और 'ऊजड़ ग्राम' (दि डिजेर्टेड विलेज) नाम से किया। ऊजड़ ग्राम का अनुवाद ब्रज भाषा में है और शेष दोनों की भाषा खडीबोली है। कालिदास कृत 'ऋतु संहार' का भी अनुवाद भी उन्हों ने ब्रज भाषा में ही किया। किंतु यह अधूरा है। स्पष्ट है कि पाठकजी ने खडीबोली का ही अधिक प्रयोग किया। पाठक जी ने प्रकृति के रूढिबद्ध रूप के साथ-साथ अपनी आँखों के अनुभूति सत्य को भी वाणी दी है, उन्हों ने खडीबोली पथ के लालित्य को बढाने विविध प्रयोग किए। अंत्यानुप्रास-रहित भाव के साथ समाप्त होने वाले लंबे छंदों का भी प्रयोग उन्हों ने किया है। निम्न छंद का साध्य प्रमाण है -

विजन बन प्रांत या, प्रकृति मुख शांत था।
अटन का समय या, तरणि का उदय था॥
प्रसव के काल की लालिमा में लसा।
बाल-शशि व्योम की ओर था आ रहा॥

पाठजी की प्रकृति के सहज प्रेमी थे। इसलिए उन को गोल्ड़स्मित तथा कालिदास पसंद आए। कलम लेकर बैठते उनकी अत:श्चेतना में प्रकृति जाग उठती थी। उन्होंने लाव नी की लय पर 'एकांत वासी योगी' लिखा जो संतों की सधुक्कड़ी पद्धति पर 'जगत सच्चाई सार' के समान है। छंद, पद-विलास और वाक्य फिरमास आदि के संबंध में उन्होंने नवीन सूझ-बूझ से काम लिया। उनकी कविताओं में समुचित-संपन्नता, भावुकता और प्रतिभा समान रूप से प्राप्त होती है। उन में अनुभूति की गहराई भी है। इसलिए आलोचक स्वच्छंदतावाद बीज लक्षण उन में खोज करने की कोशिश करते हैं।

3.3.2 अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' :- (1865 - 1947 ई.)

हरिऔध का जन्म स्थान आजमगढ के निकट निजामाबाद है। अदालतों में इन्होंने काम किया तथा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में भी काम किया है। इन्होंने आरंभ में ब्रज भाषा में

ही काव्य रचना की है। उनकी ''कृष्ण शतक'' ब्रजभाषा की रचना है। इन्होंने अपना प्रसिद्ध काव्य 'प्रिय प्रवास' लिख कर यह सिद्ध कर दिया कि खडीबोली में सुंदर काव्य रचना नहीं की जा सकती, बल्कि ब्रज भाषा का सा उसमें लालित्य और माधुर्य भी लाया जा सकता है। ब्रजवासियों के जीवन धन कृष्ण, कंश के निमंत्रण पर अक्रूर के साथ मथुरा चले जाते है और फिर लौटकर नहीं आते। कृष्ण के इस प्रवास का वर्णन ही इस का मुख्य वर्ण्थ विषय है। सर्वगुण संपन्न राधा इस काव्य की नायिका हैं और इस में राधा-कृष्ण की पारस्परिक प्रेम-गाथा का चित्रण किया गया है। इस में कृष्ण चरित समकालीन राष्ट्रीय नेता के रूप में चित्रित हुआ है। कृष्ण में को लोक रक्षक तथा विश्व कल्याण चाहने वाले नेता के रूप में दिखाया गया है। राधा भी मर्यदा, संयम और सद्वृत्तियों की मूर्ति तथा लोक-सेविका के रूप में चित्रित हुई है। यह अतुकांत एवं भिन्न तुकांत शैली की रचना है।

हरिऔध की रस की महत्वपूर्ण काव्य रचना 'वैदेही वनवास' है। इस में सीता परित्याग की कथा कही गयी है। एक सरल कहानी प्रबंध काव्य में के रूप में कही गयी है। 'रस कलस' इनका नायिका भेद से संबंधित काव्य है। इस में युगीन परिस्थितियों के अनुसार नवीन नायिकाओं की कल्पना की गयी है। जैसे देश प्रेमिका, लोक प्रेमिका, जाति प्रेमिका आदि। हरिऔध ने उर्दू शायरों के जवाब देने 'चोखे चौपदे' लिखे। इस रूप में वस्तु और भाषा के क्षेत्र में अपने पूर्ण योगदान से इन्होंने खडी बोली काव्य को समृद्ध किया है। एक आलोचक के शब्दों में - ''ये खडीबोली के प्रथम महाकवि हैं जिन्होंने राष्ट्रीयता और विश्व बंधुत्व की भावना से युक्त, सांस्कृतिक - पौराणिक आख्यानों को समकालीन सामाजिक जीवन के अनुकूल चित्रित किया।''

हरिऔध जी भाषा शिल्पी भी थे। भाषा पर उनका अद्भुत अधिकार था। कठिन से कठिन हिन्दी 'वेनिस का बांका' और 'प्रिय प्रवास' में तथा सरल से सरल हिन्दी का प्रयोग ठेठ हिन्दी का ठाठ और 'अधखिला फूल' जैसी कविताओं में उन्हों ने किया है। वे हिन्दी के पुराने तथा नवीन छंदों के मादिर थे। रस का दृष्टि से विप्रलंभ श्रृंगार, वात्सल्य तथा करुणा रस उन को विशेष प्रिय थे।

3.3.3 महावीर प्रसाद द्विवेदी :- (1864-1938 ई.)

इनका जन्म स्थान राय बरेली जिले का दौलतपुर गाँव है। वे आधुनिक युग के निर्माता व 'सरस्वती' पत्रिका के संपादक के रूप में अधिक लोकप्रिय है। इन के नाम से ज्यादा काव्य रचनाएँ नहीं हैं। वे पहले ब्रज भाषा में रचनाएँ करते थें। संस्कृत के प्रभाव के कारण समास युक्त लंबे पदों की रचनाएँ भी इन्होंने की है। इन्होंने कुछ अनुवाद भी किए। जैसे कुमार संभव का आरंभिक वर्णन। वे कवि कम

है और कवि निर्माता अधिक है। काव्य मंजूषा, सुमन, कान्यकुब्ज-अबला-विलाप आदि उनके मौलिक पद्य काव्य हैं।

3.3.4 मैथिली शरण गुप्त :- (1886-1964 ई.)

गुप्त जी का जन्म स्थान झांसी जिले का चिरगाँव है। उन का संबंध संपन्न परिवार से था। सियाराम शरण गुप्त उनका छोटे भाई है। वे हिन्दी, संस्कृत बंगला, मराठी और अंग्रेजी के अच्छे ज्ञाता थे। गुप्त जी महावीर प्रसाद द्विवेदी जी को अपना गुरु मानते हैं। बहुत कम उम्र में उन्होंने लिखना शुरु किया था। भारत का स्वातंत्रय युद्ध जिस समय अपनी पराकाष्ठा पर था। गुप्त जी ने अपना काव्य 'भारत-भारती' लिखा था। उस के द्वारा भारतियों का अतीत, वर्तमान और भविष्य को बनाना चाहते थे। उनका भारत-भारती संपूर्ण राष्ट्रीय काव्य माना जाता है। इसी ने उन्हें राष्ट्रीय कवि बना दिया है। भारतीय अतीत गौरव और भारतीय संस्कृति का अध्ययन उन की काव्य-कृतियों का मुख्य लक्ष्य रहा है। वे राम भक्त थे। उनकी भक्ति रूढिग्रस्त नहीं था बल्कि उदार थी। यही परिचय 'साकेत' में प्राप्त होता है। रामचरितमानस के अनेक ऐसे पात्र, जैसे 'ऊर्मिला' जिस के साथ तुलसीदास ने न्याय नहीं किया था, साकेत में उनके साथ न्याय किया गया है। मर्यादा पुरुषोत्तम राय को गुप्त जी ने आरंभ से ही परंब्रह्म न मानकर मानव माना है। माना जाता है कि 'साकेत' की प्रेरणा उन्हें द्विवेदी जी के 'कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता' निबंध से मिली है। इस के अतिरिक्त यशोधरा, जयद्रथवध, सिद्धराज तथा पंचवटी जैसे अनेक प्रबंध काव्यों की रचना गुप्त जी ने पौराणिक और ऐतिहासिक कथानकों के आधार पर युगीन परिस्थितियों के संदर्भ में अत्यंत सरल एवं सुबोध शैली में की है। इस के अतिरिक्त गुप्तजी ने 'साकेत' और 'जयभारत' नामक दो बृहद खडीबोली महाकाव्य रचे हैं। 'जय भारत' की रचना व्यासकृत 'महाभारत' के अनुकरण पर हुई । इस का मुख्य विषय धर्म और अधर्म का युद्ध है। छायावादी गरिमा के लिए हुए इन के गीतों का संग्रह 'झंकार' है।

'रंग में भंग' इन का छोटा लघु काव्य है। जिस में चित्तौड़ और बूंरी के राजघरानों की आन और मान की कथा है। 'हिन्दू', 'केशों की कथा' और 'स्वर्ग सहोदर' भी लघु रचनाएँ हैं। ये 'पंगलघट' में संग्रहीत है। उनकी 'यशोधरा' रचना चंपू के ढंग पर की गई है। इस में नाटक की तरह गद्य और पद्य दोनों का समावेश है। इस में बुद्ध भगवान के चरित्र से संबंध रखनेवाले पात्रों के भावों की बडी उच्च और सुंदर अभिव्यक्ति हुई है। बुद्ध यशोधरा को आधी रात छोड़कर चले गए। उसे त्याग का सम्मान भी नहीं मिला। बस यही का उपालंभ है और वेदना भी - 'सखि वे मुस से कह कर जाते', इस रूप में गुप्त जी ने महाकाव्य, खंड काव्य, चंपू तथा मुक्तक आदि शैलियों का सफल प्रयोग किया है।

वर्णनात्मकता अथवा इतिवृत्तात्मकता इन की शैली की प्रमुख विशेषता है। इनकी भाषा शुद्ध, प्रवाहयुक्त तथा परिमार्जित खडी बोली है जिस में तत्सम, तद्भव एवं देशज शब्दों का प्रयोग आवश्यकतानुसार किया गया है। इसरूप में गुप्त जी बीसवीं शताब्दी के सर्वाधिक जनप्रिय कवि रहे हैं। इन के संबंध में आचार्य शुक्लजी ने सही कहा है – ''गुप्त जी वास्तव में सामंजस्यवादी कवि है, प्रतिक्रिया का प्रदर्शन करने वाले अथवा मद में झूमनेवाले कवि नहीं। सब प्रकार की प्रभावित से होनेवाला हृदय उन्हें प्राप्त है। प्राचीन के प्रति पूज्य भाव तथा नवीन के प्रति उत्साह दोनों इन में है।''

3.3.5 जगन्नाथदास रत्नाकर :- (1866-1932 ई.) :-

इन का जन्म स्थान वारणासी है। वे दिल्ली वाले अग्रवाल वैश्य थे। इनके काव्य की भाषा ब्रज भाषा रही है। 'उद्धवशतक' और 'गंगावतरण' नामक इनकी दो रचनाएँ बहुत लोकप्रिय हुई। 'उर्द्धवशतक' वही भ्रमरगीत प्रसंग है। पर वर्णन योजना 'रत्नाकर' की अपनी है। इस प्रबंध काव्य में कृष्ण का संदेश लेकर उद्धव का ब्रज प्रदेश में जाना, गोपियों के संवाद और पुन: प्रेम के प्रवाह में बहते हुए लौटकर कृष्ण के पास आना वर्णित है। इस में कुल 118 छंद है। इनका 'गंगावतरण' 13 सर्गों का प्रबंध काव्य है। इस में सागर सुतों के उद्धार के लिए राजा भगीरथ का गंगा को पृथ्वी पर लाने की कथा वर्णित है। इसके अतिरिक्त इन्होंने कई ग्रंथों का संपादन और अनुवाद भी किया है।

3.3.6 रामनरेश त्रिपाठी :-

रामनरेश त्रिपाठी श्रीधर पाठक की परंपरा के कवि हैं। भिन्न, पथिक और स्वप्न इन के तीन खंड काव्य हैं। शुक्लजी के अनुसार इन प्रबंधों में नर जीवन जिन रुपों में ढालकर सामने लाया गया है। वे मनुष्य मात्र का धर्म-स्पर्श करने वाले हैं तथा प्रकृति के स्वच्छंद ओर रमणीय प्रसार के बीच अवस्थित होने के कारण शेष सृष्टि से विच्छन्न नहीं प्रतीत होते। इन काव्यों में प्रेमाभिव्यक्ति हुई है। इनकी रचनाओं में कहीं-कहीं रहस्योन्मुख प्रवृत्ति भी दिखाई पड़ती है।

3.3.7 नाथुराम शंकार :-

इन का जन्म स्थान अलीगढ जिला हरदुयागंज। इनकी आरंभिक कविताएँ 'ब्राह्मण' में प्रकाशित हुई थीं। बाद में 'सरस्वती' में भी प्रकाशित हुई। अनुराग रत्न, शंकर, सरोज, तथा शंकर-सर्वस्व इन की प्रमुख काव्य रचनाएँ हैं।

3.3.8 गयाप्रसाद शुक्ल सनेही :-

इन का जन्म स्थान उन्नवजिले का हड्हा है। इनका हिन्दी और उर्दू पर समान अधिकार था। कृषक क्रंदन, प्रेम पचीसी, राष्ट्रीय वीणा, त्रिशूल-तरंग आदि इन की काव्य रचनाएँ हैं।

3.3.9 रामचरित उपाध्याय :-

उपाध्याय जी संस्कृत के अच्छे पंडित थे। द्विवेदी जी के प्रोत्साहन से वे हिन्दी में आए। राष्ट्र भारती, देवदूत, देव-सभा, देवी द्रौपदी, भारत भक्ति, विचित्र विवाह आदि उनकी काव्य रचनाएँ हैं। 'राम चरित चिंतामणि' इन का प्रबंध काव्य है।

इस सर्वेक्षण-विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि वस्तु और शिल्प दोनों दृष्टियों से द्विवेदी युगीन कविता काफी समृद्ध है। यही नहीं द्विवेदी युगीन कविता भारतेन्दु युग और छायावादी युग के बीच की कडी है। यह युग भारतेन्दु युग से प्रभावित हुआ है और आगे छायावादी युग को प्रभावित किया है। इस युग के कवियों की रचनाओं में नवीनता के बीज है। आलोचकों के अनुसार इस नवीनता की दो विशेषताएँ है। 1. मुक्तक गीतात्मकता 2. भाषा की लाक्षणिकता और रहस्यात्मकता। ये दोनों द्विवेदी युगीन कविता में बडी मात्रा में दिखाई पड़ती है। इसी कारण से आगे की स्वच्छंदता वादी कविता या छायावादी कविता इन्हीं विशेषताओं को आत्मसात करके विकसित हुई है। इस रूप में द्विवेदी युगीन कविता हिन्दी छायावादी कविता की मजबूत बुनियादी तैयार करती है, इस में दो मत नहीं हो सकते हैं।

4. छायावादी काव्यधारा- प्रमुख कवि एवं काव्य

4.0 प्रस्तावना :-

आधुनिक हिन्दी कविता वैचारिक स्तर पर अनेक वादों-आदोलनों की वाहिका रही है। हिन्दी का छायावाद उनमें से प्रमुख आंदोलन है। छायावाद का समय-सीमांकन मोटे रूप से सन् 1910 से सन् 1935 तक माना जाता है। या दो विश्व महायुद्धों के बीच का काव्यांदोलन माना जाता है। इन काव्यांदोलन के पीछे देशी और विदेशी पृष्ठभूमि रही है। यह माना जाता है कि द्विवेदी युग की कला और भाव क्षेत्र की एकरूपता के विरोध में भावक्षेत्र का यह नया आंदलोन शुरू हो गया है। इस के साथ-साथ भारत में जड-स्थापित करनेवाला आद्योगीकरण से प्रेरित व्यक्तिवाद भी कारण रहा है। विदेशी पृष्ठभूमि के अंतर्गत अंग्रेजी साहित्य तथा उस से प्राप्त रोमांटिसिज्म को लिया जा सकता है। हिन्दी के छायावादी कवि अंग्रेजी के रोमांटिक कवि और उनकी रचनाओं से सुपरिचित थे। उनका प्रभाव भी छायावाद पर देखा जा सकता है। इन दोनों पृष्ठभूमियों से प्रभावित हिन्दी का छायावद हिन्दी काव्य-भूमि का अपना स्वर्णिम आंदोलन है क्यों कि इस काव्यांदोलन का अपना मौलिक जीवन दर्शन है। जो यहां की सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों के अनुकूल बना है। यह किसी अन्य भाव प्रतिक्रिया या भावानुकरण नहीं बल्कि जीवन और जगत के प्रति एक निश्चित, मूलभूत व मौलिक दृष्टिकोण है। इसलिए हिन्दी का यह छायावादी काव्यांदोलन किसी पाश्चात्य या बंगला काव्य का अनुकरण मात्र कहना समीचीन नहीं है।

4.1 नामकरण :-

छायावाद एक भाव क्रांति है। भाषा, छंद और सौंदर्य के प्रति एक विप्लव है। आरंभ में इस क्रांति के प्रति आलोचकों में सही धारणाएं नहीं पनपी हैं। परिणाम स्वरूप इसके नामकरण के कोई वैज्ञानिकता व सार्थकता में नहीं रह गयी है। 'छायावाद' शब्द का रूढ प्रयोग ही इसके नामकरण में देखा जा सकता है। 'छाया' शब्द का छायावादी काव्य के स्वरूप और लक्षणों से कुछ भी संबंध नहीं बैठता है। आचार्य रामचंद्रशुक्लजी के अनुसार बंगला में प्रतीकात्मक अध्यात्मवादी रचनाओं को छायावादी कहा जाता था। अत: उसके अनुकरण पर हिन्दी साहित्य में उसी प्रकार की रचनाओं के लिए 'छायावाद' नाम प्रचलित हो गया। वस्तु स्थिति यह है कि विरोध करने मजाक में 'छायावाद' शब्द का स्वच्छंदतावादी नवीन अभिव्यक्तिमय रचनाओं के लिए प्रयोग किया। वही कालांतर में लोकप्रिय हो गया।

4.2 परिभाषा और अर्थ :-

छायावादी कवियों और छायावादी आलोचकों ने अनेक संदर्भों में 'छायावाद' की परिभाषा देते हुए उसके अर्थ को समझने की कोशिश की है। जयशंकर प्रसाद ने छायावाद को इस रूप में समझाने केन्द्रिय की कोशिश की है – ''मोती के भीतर पाया छाया जैसी तरलता होती है वैसी ही कांति की तरलता अंग में लावण्य कही जाती है। ..... छाया भारतीय दृष्टि से अनुभूति व अभिव्यक्ति की भंगिमा पर निर्भर करती है। ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौंदर्यमय प्रतीक विधा तथा उपचार वक्रता के साथ स्वानुभूति की विवृत्ति छायावाद की विशेषताएँ हैं। अपने भीतर से पानी की तरह अंत: स्पर्श करके भाव–समर्पण करने वाली अभिव्यक्ति छाया ..... कांतिमय होती है।'' गूढ शब्दों में ही सही प्रसाद जी ने छायावाद की समस्त विशेषताओं पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है। इस के संबंध में महादेवी वर्मा ने कहा है – ''सृष्टि के बाह्याकार पर इतना लिखा जा चुका था कि मनुष्य का दृश्य अभिव्यक्ति के लिए हो उठा। स्वच्छंद छंद में चित्रित उन मानव अनुभूतियों का नाम छाया उपयुक्त ही था और मुझे तो आज उपयुक्त लगता है।'' आलोचन प्रवर शुक्लजी के विचार भी इस संदर्भ में उल्लेखनीय है। रूप उन्होंने लिखा है – ''छायावाद छंद का प्रयोग दो अर्थों में समझना चाहिए – एक तो रहस्यवाद के अर्थ में जहाँ उसका संबंध काव्यवस्तु से होता है अर्थात् जहाँ कवि उस अनंत और अज्ञात प्रियतम को आलंबन कर अत्यंत चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है। छायावाद का दूसरा प्रयोग काव्य शैली का पद्धति–विशेष के व्यापक अर्थ में है।'' आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार – ''छायावाद एक विलक्षण सांस्कृतिक चेतना का परिणाम था, यद्यपि उस में नवीन शिक्षा के परिणाम होने के चिह्न स्पष्ट है। तथापि वह केवल पाश्चात्य प्रभाव नहीं था। कवियों की भीतरी व्याकुलता ने ही नवीन भाषा शैली में अपने को अभिव्यक्त किया है।'' डॉ.नगेन्द्र ने एक ओर तो छायावाद को स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह माना है और दूसरी ओर इसे जीवन के प्रति एक भावात्मक दृष्टिकोण कहा है। आचार्य नंददुलारे वाजपेयी के अनुसार ''मानव अथवा प्रकृति के सूक्ष्म किंतु व्यक्त सौंदर्य में आध्यात्मिक छाया का भाव मेरे विचार में छायावाद की एक सर्वनाम व्याख्या हो सकती है।'' छायावाद के संबंध में व्यक्त किए गए उपर्युक्त विचारों से निम्न सारगर्भित बातें व्यक्त हुई हैं।

1. छायावाद कवियों के अंतर्मन की अंतर्मुखी आत्माभिव्यक्ति है।
2. छायावाद मानव अथवा प्रकृति के व्यक्त सौंदर्य में आध्यात्मिक भाव को ढूंढने वाला है।
3. छायावाद के पीछे एक विशाल सांस्कृतिक चेतना है।

4. उदात्त प्रेम और प्रणय छायावाद की आत्मा है जो मानव और प्रकृति दोनों के प्रति है।
5. छायावाद सूक्ष्म भावलोक की कविता है।
6. मुक्त छंद का प्रयोग इस की एक और विशेषता है।
7. छायावादी कवि वास्तविकताओं से ज्यादा कल्पना और सौंदर्य को महत्व देता है।
8. छायावाद को कभी रहस्यवाद और स्वच्छंदता वाद भी कहा गया है।

4.3 छायावाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ :-

छायावाद ने अपने समय में सभी कवियों को अत्यधिक प्रभावित किया है। अपने समय में वह अधिक चर्चित ही नहीं बल्कि सार्वभौमिक काव्यधारा के रूप में विकसित हुआ है। छायावाद की निम्न प्रवृत्तियाँ ही इसके लिए जिम्मेदार हैं।

4.3.1 आत्मानुभव और आत्माभिव्यक्ति की प्रधानता :-

स्वीयानुभव अधिक प्रामाणिक और मौलिक होते हैं। छायावादी कवियों ने अपने आत्मानुभवों को ही अधिक मान्यता दी है। जीवन-जगत के बंधनों को उन्होंने पूरी तरह नकारा है। छायावाद के पहले हिन्दी कविता में सामाजिकता, राष्ट्रीयता, वीरता, स्थूल श्रृंगरिकता आदि को स्थान मिला है। परन्तु इन से अलग छायावादी कवियों ने निजी अनुभूतियों को वाणी दी है। वैयक्तिक सुख-दु:खों ने बाह्य जगत ने अधिक प्रधान्यता दी है। छायावादी कवियों ने बाह्य जगत के इतिवृत्तात्मक वर्णनों के स्थान पर हृदय की अनुभूतियों को अभिव्यक्ति दी है। यही स्थूल के प्रति सूक्ष्मता का विद्रोह है। कवि सामाजिक बंधनों से मुक्ति को तथा स्वच्छंदता को चाहता है। छायावादी कविता में व्यक्त इस स्वरछंद मनोवृत्ति को देखकर ही इस कविता को अग्रेजी-रोमांटिक कविता के साथ जोड़ा है। छायावादी कवि अपने व्यक्तित्व और अनुभव के प्रति अधिक विश्वास रखता है। यह विश्वास कहीं कहीं अहंभावना तक विकसित हुआ है। प्रसाद जी की 'आंसू' तथा पंत जी की 'उच्छवास' 'आँसू' कविताएँ वैयक्तिक सुख-दुख और आत्मानुभव के सुंदर उदाहरण है। छायावादी कवि ने अपने को समाज से विशिष्ट माना है। समाज के नैतिक मूल्यों एवं बंधनों की चिंतन वह नहीं करता है।

4.3.2 प्रेम और प्रणय की अभिव्यक्ति :-

छायावादी कवियों ने मानव और मानवेतर प्राणियों एवं प्रकृति के प्रति उदात्त प्रेम दिखाया है। इस में नारी प्रेम भी शामिल है। इस के साथ अज्ञात सत्ता के प्रति आध्यात्मिक प्रेम भी मिला हुआ है। इस प्रेम और प्रणय को छायावादी कविता में मुख्यतया तीन रूपों में देख सकते हैं। नारी प्रेम, प्रकृति-प्रेम और अलौकिक प्रेम और रहस्यवाद। प्रेम-प्रणय के चित्रण में छायावादी कवियों ने सौंदर्य को अधिक प्राथमिकता दी है न कि वासनामय मांसल वर्णन को नारी प्रेम और उस का वर्णन श्रृंगार के अंतर्गत आता है। इस दृष्टि से छायावाद काव्य में श्रृंगर रस को प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ है। लेकिन श्रृंगार के प्रति इन का दृष्टिकोण परंपरा से अलग है। छायावाद कवि ने सौंदर्य मूर्ति नारी को प्रेयसी के रूप में स्वीकार किया है। प्रसादजी के द्वारा किया गया श्रद्धा का अपूर्व व अनुपम वर्णन इस का साध्य प्रमाण है -

नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा मृदुल अधखुल अंग
खिला हो ज्यों बिजली का फूल,
मेघ बन बीच गुलाबी रंग।

छायावादी कवि ने नारी को रीतिकालीन नारी की भांति अतृप्त वासनाओं की पूर्ति करने वाले साधन मात्र के रूप में चित्रित नहीं किया। नारी को उस ने विविध रूपों-प्रेयसी, माँ, जीवन सहचरी आदि के रूप में देखा है। किंतु इसे सर्वाधिक प्रभावित नारी के प्रेम मूर्ति प्रेयसी रूप में किया है। वह प्रेयसी के जीवन में प्रेम पीयूष की सरिता को बहानेवाली है तथा उसकी आत्मा को दिव्य ज्योति प्रदान करने वाली है। प्रसाद जी ने नारी के इसी रूप को 'श्रद्धा का नाम दिया है।'

नारी तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास रजत नग पग तल में,
पीयूष-स्रोत सी बहा करो
जीवन के सुंदर समतल में।

नारी प्रेम के संदर्भ में छायावादी कवियों ने नए मूल्यों की स्थापना की है। यह प्रेम स्वच्छंद है और उन्मुक्त वह किसी प्रकार की रूढ़ि, मर्यादा और नैतिकता को स्वीकार नहीं करता। इन का

प्रेम वैयक्तिक है। वह निजी अनुभूतियों पर आधारित है। छायावादी कवि प्रेम-वर्णन हेतु किसी अन्य पात्र-राधा, उर्मिला आदि को माध्यम नहीं बनाता और नहीं वह स्थूल क्रिया कलापों का वर्णन करता है। छायावादी कवियों ने प्रेम वर्णन की एक और विशेषता यह है कि उस में संयोग अथवा मिलन की अनुभूति के स्थान पर वियोग तथा करुणा की प्रधानता है।

छायावादी कविता में प्रकृति के प्रति या असीम प्रेम दिखाई पड़ता है। प्रकृति छायावादी कवि के लिए जीती-जागती, चेतनामय, सौंदर्य-सागर है। कवि प्रकृति के सौंदर्य में क्रियाकलापों में चेतना का आरोप करता है। प्रकृति के सौंदर्य के आगे छायावादी कवि नारी के सौंदर्य को भी तिरस्कृत कर देता है।

छोड हमों की मृदु छाया, तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले तेरे बाल जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन।

छायावादी कवि प्रकृति पर नारी-पुरुष का आरोप करके प्रेम का वर्णन करता है। निराला की 'जुही की कली' कविता इस का श्रेष्ठ उदाहरण है।

छायावादी कविता में व्यंजित प्रेम का तीसरा रूप अलौकिक प्रेम है। इस अलौकिक प्रेम की परिणति रहस्यवाद के रूप में देखी जा सकती है। छायावादी कवि प्रकृति का मानवीकरण करके उस के पीछे कार्यरत अज्ञात सत्ता को पहचान ने की कोशिश करता है। उसे प्रियतम के प्रतीक के रूप में मानकर उससे प्रणय निवेदन करता है। छायावादी कवि का अलौकिक और अज्ञात प्रियतम से प्रणय निवेदन और विरहानुभूति रहस्यवाद की सृष्टि करते हैं। अलौकिक सत्ता से प्रणय निवेदन संबंधी काव्य लिखने में सर्वाधिक सफलता महादेवी वर्मा और प्रसाद को मिली है।

4.3.3 प्रकृति चित्रण :-

काव्य में प्रकृति चित्रण प्राचीन परंपरा है। मानवीय चेतना को उद्धीप्त करनेवाली शक्ति के रूप में कवियों ने प्रकृति को पहचाना। इसी रूप में इसका चित्रण करते आये। परन्तु छायावादी कवियों ने इस संबंध को नया रूप दिया। सामीपता और सजीवता इस नए दृष्टिकोण की विशेषताएँ हैं। छायावादी कवि ने प्रकृति में चेतना का भी अनुभव किया। कवि पंत ने प्रकृति में एक निजी चेतना और स्वतंत्र सजीव सत्ता का अनुभव किया। 'बालिका' के रूप में उन्होंने 'वीणा' काल में प्रकृति को देखा है। प्रसाद जी ने प्रकृति के एक पिटार चेतना का संचार अधिकत: अनुभव किया है। निराला ने भी अपनी 'जुही की कली', 'शेफाली', आदि कविताओं में प्रकृति पर मानवीय व्यापारों को आरोपित

किया है। महादेवी के रहस्यात्मक गीतों में भी प्रकृति एक निश्चित भाव शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित हुई है। इन सभी ने प्रकृति के व्यापारों की भाषमय व चेतनामय व्याख्या की है। प्रकृति इन कवियों की चेतना का एक निश्चिल और वांछित साधन बन गयी। उन के लिए प्रकृति सहयोगिनी, सह भाविनी और रुसुपिणी है। कोमलता मधुरता/सुकुमारता, सफलता और सुंदरता के प्रति अपेक्षाकृत अधिक संवेदनशील होने के कारण छायावादी कवियों ने प्रकृति के उग्र और भयावह रूप का चित्रण कम किया।

4.3.4 रहस्यवाद :-

प्रकृति के प्रति तथा जीवन-जगत के प्रति रहस्यात्मक दृष्टिकोण एवं पदार्थों के प्रति आश्चर्य, कुतूहल, विस्मय, जिज्ञासा प्रकट करना छायावादी कवियों की विशेषता है। दूर की वस्तुओं के प्रति आकर्षण एवं अतीत के प्रति मोह का भाव भी इन में देखा जा सकता है। रहस्य दृष्टि ने कहें रहस्यावादी बना दिया है। छायावादी कवियों के रहस्यवादी बनने के पीछे कारण भिन्न हैं। निराला तत्व-ज्ञान के कारण, पंत प्राकृतिक सौंदर्य से रहस्योन्मुख हुए तो प्रेम और वेदना ने महादेवी वर्मा को रहस्योन्मुख किया है। साधारणतया साहित्य के क्षेत्र में ज्ञानतीत सत्य का आध्यात्मिक निरुपण रहस्यवाद माना जाता है। छायावादी कवियों ने प्रकृति के पीछे किसी अज्ञात सत्ता को देखा। उसे प्राप्त करने की रहस्यवादी कोशिश की। अज्ञात सत्ता को ही उन्होंने ज्ञानतीम सत्य बना लिया है। उसके निरुपण में उन्होंने कौतूहल, विस्मय, जिज्ञासा, आश्चर्य प्रकट किया है। परन्तु इन की रहस्यवादी दृष्टि कबीर, जायसी आदि से भिन्न है। रहस्यावाद की जो गहराई उनमें दिखाई पड़ती है इन छायावादी कवियों में नहीं है। छायावादी कवियों में उन कवियों की तरह तन्मयता और विरहानुभूति की तीव्रता दिखाई नहीं पड़ती हैं। छायावादी कवियों में सहायता की जगह कृत्रिमता नजर आती है।

4.3.5 वेदना और निराशा :-

छायावादी कविता में वेदना की विवृत्ति तथा निराशा की व्यापक आवृत्ति व्यक्त हुई है। छायावादी कविता में वेदना, पीडा, व्यथा, ज्वाला, अंतर्दाह आदिनामों से व्यक्त हुई है। छायावादी कवियों ने दुख और वेदना को जीवन के लिए उन्नायक माना है। 'आंसू' में वेदना अंतर्ज्वाला के रूप में उभरी है। महादेवी छायावाद को सर्वश्रेष्ठ व्यथा गायिका है। निराला ने जीवन-संघर्ष की पीडा को स्वाभिमान समझा है। वेदना और पीडा का जो अभ्यंतर और वैयक्तिक स्वरूप छायावादी कवियों में दिखाई पड़ता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। इनकी कविताओं में व्यक्त वेदना समान-वेदना का व्यक्ति

अनुभूत रूप है। जो मै शैली में व्यक्त हुई है। निराशा, अबसाद, विषाद और विफलता की बडी गहरी अनुभूतियाँ को छायावादी कविता में व्यक्त हुई है वह युग-पीडा व्यक्ति-पीडा और आत्मा की पीडा का विभिन्न और बहुविध सम्मिलित रूप है।

4.3.6 मानवतावाद :-

मानव की प्रतिष्ठा का भाव भी छायावादी कविता में उभरा है। मानवतावाद में मानव की प्रतिष्ठा के साथ-साथ उस के त्याग, बलिदान, पराक्रम, संघर्ष और महाप्राणत्व पर बल दिया जाता है। मानवता वाद के अंतर्गत मनुष्य की दुर्बलता नहीं वरन सबलता ही उभार कर सान में प्रस्तुत की जाती है। इतना ही नहीं मानवतावाद में सिर्फ मनुष्य ही नहीं प्राणी मात्र के प्रति प्रतिष्ठा व्यक्त की जाती है। छायावादी कवियों ने मनुष्य के श्रेष्ठतम गुणों के साथ-साथ प्रकृति व प्राणियों के प्रति भी असीम प्रेम भाव व्यक्त किया है। पंत ने स्पष्ट कहा है - सुंदर है विहग, सुमन, सुंदर, मानव! तुम सब से सुंदरतम! कामायनी में भी 'विजयिनी मानवता' का जो अप खडा किया गया है वह मानवीय महत्ता का ज्वलंत परिचायक है। स्पष्ट है कि छायावादी कवियों ने मनुष्य की महत्ता को प्राणीमात्र से अधिक स्थान दिया है। छायावादी कवियों ने युग युग से उपेक्षित नारी को रूढियों की कारा से मुक्त करने का स्वर अलाप कर मानवतावाद को नया रूप दिया है। रीतिकालीन कवियों की तरह उन्होंने नारी को सिर्फ भोगवस्तु नहीं मानी है। उन्होंने नारी को सिर्फ भोगवस्तु नहीं मानी है। उन्होंने नारी शरीर से ज्यादा नारी मन को महत्व दिया है। उन्होंने नारी के मानसिक सौंदर्य के अनेक सुंदर एवं मोहक चित्र अंकित किए हैं। छायावादी कवि कह उठता है - 'मुक्त करो नारी को, युग-युग की कारा से बंदिनी नारी को' इसके अतिरिक्त छायावादी कविता में विश्वबंधुत्व की अभिव्यक्ति भी हुई है।

इन मुख्य प्रवृत्तियों के अतिरिक्त छायावादी कविता में तत्कालीन परिवेश के अनुरूप देश भक्ति या स्वतंत्रता प्रेम, स्वच्छंदवाद, आदर्शवाद आदि वस्तुगत प्रवृत्तियों को स्थान मिला है।

4.3.7 छायावादी कविता की शिल्पगत विशेषताएँ :-

छायावादी कविता हिन्दी कविता के शिल्प के क्षेत्र में भी एक नया प्रयोग है। एक नयी क्रांति है। छायावादी कवियों ने अपने पूर्ववर्ति काव्यशिल्प के प्रति पूर्णतया विद्रोह प्रकट किया है। छायावादी कवियों ने काव्य वस्तु से ज्यादा उसके कला पक्ष को या अभिव्यंजना पक्ष को अधिक महत्व देकर कविता को अधिक सुंदर बना दिया है। निम्न शिल्पगत तत्व छायावादी कविता को अपने पूर्व युगों के अलगाकर उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित करते हैं।

4.3.7.1 लक्षण की प्रमुखता :-

छायावादी कवि शब्दों के अभिधार्थ से ज्यादा लक्षणार्थ पर विश्वास रखते हैं। इसलिए कुछ आलोचकों ने छायावादी काव्य को लाक्षणिक काव्य ही कहा है। छायावादी कवियों ने 'लक्षणा' शब्द शक्ति का बहुत अधिक और सुंदर प्रयोग किया है। लक्षणा के समस्त भारतीय-काव्य शास्त्रीय रूप छायावादी कविता में मिल जाते हैं। खासकर उपादान-लक्षणा तथा साध्यवसना लक्षण के विविध रूप छायावादी कविता में परिलक्षित हुए हैं। इसके अतिरिक्त अंग्रेजी की देन की लक्षणाएं भी छायावादी कविता में व्यंजित हुई हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्लजी ने इस लक्षणा-व्यापार के विस्तार को ही छायावाद का मूल वैशिष्ट्य घोषित कर दिया।

4.3.7.2 चित्रात्मक भाषा :-

छायावादी कवि शब्दचित्र खींचने में अपना सानी नहीं रखते हैं। चित्रात्मक भाषा के इस रूप को बिंबात्मकता भी कहा जाता है। छायावादी कवि इन चित्रों अथवा बिबों द्वारा जहाँ अमूर्त और अप्रत्यक्ष विषयों को मूर्त और प्रत्यक्ष करते जाते हैं। वहीं गृहीत अनुभूतियों को सघन व मूर्त रूप देते हैं। भाषा को चित्रमय बनाने के लिए उन्होंने नए अप्रस्तुत तथा उपमायों का ग्रहण भी किया है। निराला जी विधवा का चित्रण करते हुए लिखते हैं - ''वह इष्ट देव के मंदिर की पूजा सी - उस दीप शिक्षा थी।'' वो सर्वथा नवीन प्रयोग है। कवि पंत तो प्रकृति के कुशल चित्रकार ही है। उन की कलम से गंगा नहीं साक्षात तापस बालिका ही बन गयी है।

शैकत शय्या पर दुग्ध धवल तनवंगी गंगा ग्रीष्म विरल
लेटी है श्रांत, क्लांत, निश्चल!
तापस-बाल-सी गंगा निर्मल शशिमुख से दीपित मृदु-करतल,
लहरें उर पर कोमल कुंतल।
गोरे अंगों पर सिहर-सिहर, लहराता तार-तरल सुंदर
चंचल चंचल सा नीलांबर।

4.3.7.3 प्रतीकात्मकता :-

प्रतीक वर्णन विस्तार को सीमित अभिव्यक्ति में बदलने वाले उपकरण है। छायावादी कवियों ने इन उपकरणों को सार्थक प्रयोग किया है। कोमलता अथवा उत्फूललता के लिए 'फूल' शब्द का

प्रयोग अथवा मधुरता गुण के लिए 'मधु' का प्रयोग प्रतीकों के अंतर्गत ही भाषा है। प्रतीकों के द्वारा अमूर्त को मूर्त बनाने में बडी सुविधा मिलती है। छायावादी कवियों ने प्रतीकों को ज्यादा तर प्रकृति से चुने हैं। लहरभाव, सुमन-सुख, शूल-दुख, तम-निराशा, प्रकाश-आरोल्लास, निर्झर-अमंदगति, वीणा-दृश्य, तार-भाव, किरण-आशा, इंद्रधनुष कामना, बादल-अश्रु और विषाद, चांदनी-सुख, रात-दुख, संध्या-विषाद के प्रतीक के रूप में छायावादी कविता में प्रस्तुत हुए हैं। छायावादी कवि अंतर्मुखी प्रवृत्ति के हैं। इसलिए बाह्य स्थूलता की जगह अंतर्मुखी सूक्ष्मता को उन्होंने महत्व दिया। इसके लिए उनको प्रकृति के उपकरण सरल प्रतीकों के रूप में प्राप्त हुए हैं।

4.3.7.4 विशेषण-विपर्यय :-

छायावादी कविता में विशेषण-वक्रता की प्रवृत्ति बडी मात्रा में प्राप्त होती है। विशेषण विपर्यय विशेषण वक्रता का ही एक प्रकार है। जहां प्रत्यक्ष रूप में एक विशेषण जिस विशेष्य के साथ प्रयुक्त हुआ हो, अर्थग्रहण के समय वह किसी दूसरे विशेष्य के साथ अंतरित कर दिया जाय तो वहां 'विशेषण विपर्यय' को माना जाता है। 'विकल वेदना' तथा 'आकुल श्वास' आदि प्रयोगों में विकलता का आरोप 'विकल व्यक्ति' तथा 'आकुलता' का आरोप 'आकुल पन' पर हो जाता है। एसे कई सुंदर प्रयोग छायावादी कविता में देखो जा सकते हैं।

4.3.7.5 अलंकार योजना :-

छायावादी कवि सौंदर्यान्वेषक हैं। अत: इन्होंने प्राचीन अलंकारों के साथ-साथ अंग्रेजी साहित्य के मानवीकरण अलंकार का भी अधिक प्रयोग किया है। उन्होंने प्राकृतिक पदार्थों-प्रात:, संध्या, झंझा, बादल, सूर्य, चंद्रमा आदि पर मानवीय भावनाओं का आरोप किया। उन को साक्षात् मानवीय पात्रों के रूप में चित्रण किया है। इस के अतिरिक्त परंपरागत उपमा, रूपक, उल्लेख, संदेह, विरोधाभास, रूपकातिशयोक्ति तथा व्यतिरेक अलंकारों को अपनी अलंकृत भाषा में स्थान दिया।

कुल मिलाकर छायावादी कविता शिलपतंत की दृष्टि से अति समृद्ध है। छायावादी कविता की लोकप्रियता के पीछे का एक रहस्य उसका संतुलित एवं योजना बद्ध कला पक्ष ही है। कला की दृष्टि से इसलिए छायावादी कविता श्रेष्ठ मानी जाती है।

4.4 छायावादी काव्य धारा के प्रतिनिधि कवि और उनके काव्य

4.4.1 जयशंकर प्रसाद :-

जयशंकर प्रसाद छायावादी कविता के सर्वाधिक चर्चित कवि हैं। वे छायावादी कविता के ब्रहत स्वरूप हैं। उन्होंने आरंभ में कविता के लिए ब्रजभाषा का प्रयोग करने पर भी बाद में अपनी कविता को खड़ी बोली हिन्दी में फिरोया है। प्रसादजी का जन्म सन् 1889 में प्रतिष्ठित 'सुंधनीशाह' वैश्य परिवार में हुआ। उनको हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, अंग्रेजी पढ़ने का तथा उनमें साधिकारिता प्राप्त करने का सुअवसर प्राप्त हुआ था। शिव-उपासक प्रसादजी बचपन से ही कविता करने में रुचि रखते थे।'प्रेम पथिक' उनकी पहली रचना है जो ब्रज भाषा में लिखी गयी थी। उसके बाद उन्होंने खडी बोली हिन्दी में बडी संस्था में रचनाएँ लिकी हैं। उनके काव्य ग्रंथों में कामायनी, चित्राधार, काननकुसुम, करुणालय, महाराणा का महत्व, झरना, आंसू, लहर आदि प्रमुख है।'कामायानी' प्रसाद जी की रचनाओं में मणि दीप है। उनकी यह अंतमकृति भी मानी पाती है। यह छायावाद का श्रेष्ठ महाकाव्य भी माना जाता है। इस में 'मनु' के जीवन के माध्यम के समस्त भारतीय संस्कृति और जीवन विधान को शाश्वत व गंभीर व्याख्या की गयी है। मनु महाराज के मानसिक विकास और बाह्य-संघर्ष के रूप में आज के व्यक्ति की विकासोन्मुख व्यक्तित्व की अंत:कथा कही गयी है। कामायनी व्यक्तिवादी चेतना की प्रतिनिधि व श्रेष्ठ रचना भी मानी जाती है। प्रसादजी ने इसमें मनु, श्रद्धा और इडा की पौराणिक कथा के माध्यम से आज के युग के मनुष्य के बौद्धिक और भावनात्मक विकास और आज के कठिन की विषमताओं का जीवंत चित्र प्रस्तुत किया है।

प्रसाद जी का 'आंसू' काव्य भी छायावाद की प्रमुख रचना है। कवि ने इस में प्रेम-वेदना की दिव्य झांकी प्रस्तुत की है । जिस में सुख और दुख दोनों की संतुलित व्याख्या की गयी है। यह मूलत: विरह- प्रधान खंड काव्य है ।यह एक स्मृति काव्य भी है। कवि ने अपने अतीत जीवन की अनुभूतियों को स्मृतियों के सहारे अभिव्यक्त किया है। काव्य के अंत में कवि ने अपने व्यक्तिगत जीवन की वेदना और निराशा को विश्व प्रेम में बदल दिया है।'लहर' एक गीति काव्य है। इसमें कवि एक चिंतक के रूप में उभरते हैं। 'लहर' काव्य के मुख्य विषय सौंदर्य, प्रणय, प्रकृति, रहस्यवादिता आदि का निरूपण है। 'झरना' भी एक गीति काव्य है। इस के गीतों में प्रकृति, प्रणय और रहस्यात्मक भावनाओं का निरूपण है। महाराणा का महत्व एक लघु खंड काव्य है। जिसमें माहाराण प्रताप की वीरता और उदारता का वर्णन किया गया है। 'कानन कुसुम' प्रसाद जी की फुटकर कविताओं का संग्रह है। इस की मुख्य वस्तु परम तत्व है।

4.4.2 सुमित्रानंदन पंत :-

छायावादी कवियों में 'प्रकृति के कवि' माने जाने वाले सुमित्रा नंदन पंत का जन्म सन् 1900 ई. में अलमोडा जिले के कौसानी नामक गाँव हुआ था। समृद्ध परिवार में जन्म होने पर भी वे मातृहीन शिशु बने थे। इनका पालन-पोषण प्रकृति की गोद में हुआ। अत: प्रकृति उन के जीवन का अभिन्न अंग बन गया। पंत काफी लंबे अरसे तक काव्य लिखते रहे। उनके काव्यग्रंथों में उछवास (1920) ग्रंथि (1920), वीणा (1927) पल्लव (1928), गुंजन (1932), युगांत (1936), युगवाणी (1939), ग्राम्या (1940), स्वर्णकिरण (1947), स्वर्णधूली (1947), उत्तरा (1949), रजत शिखर (1949) शिल्पी (1952) चिदंबरा (1969) और लोकायतन (1964) आदि प्रमुख है। इनमें से वीणा, पल्लव, गूंजन, ग्रंथि, उच्छ्वास ही. छायावादी काव्यों के रूप में लोकप्रिय हैं। विचार व दर्शन के क्षेत्र में पंत सतत परिवर्तनशील कवि हैं। आरंभ में वे छायावादी रहे बाद में प्रगतिवारी तथा अंत में आध्यात्मवादी बने। पंत प्रकृति के सुकुमार कवि माने जाते हैं। वीणा और पल्लव में पंत ने प्रकृति के अंग-प्रत्यंग का सुंदर चित्रण किया। इस रौट में उन के रहस्यवादी विचार भी प्रकट हुए हैं। उन का 'ग्रंथि' एक छोटा प्रबंध है। इस में असफल प्रेम कहानी कही गयी है। पंत का 'पल्लव' अत्यधिक चर्चित काव्य है। अनेक सुन्दर कविताएँ इस में संग्रहित है। 'नौका विहार', 'परिवर्तन' जैसी विचार प्रधान कविताएँ इसी संग्रह की है। 'परिवर्तन', कविता में उपनिषदों का आध्यात्मिक विचार भी इस में व्यंजित हुए हैं। 'गुंजन' में कवि ने व्यक्तिगत सुख-दुख से ऊपर उठकर विश्व-मानव-कल्याण स्वर प्रकट किया है। युगांत, युगवाणी और ग्राम्या की कविताओं से कवि पंत का प्रगतिवादी रौट शुरू होता है।

4.4.3 सूर्यकांत त्रिपाठी निराला :-

संघर्षशील तथा विरोधी कीव के रूप में लोकप्रिय सूर्यकांत त्रिपाठी निराला हिन्दी छायावादी कविता के शिव-शक्ति के रूप माने जाते हैं। निराला का जन्म सन् 1897 ई० को हिन्दी प्रदेश में हुआ था। परन्तु उनका बचपन अहिन्दी प्रदेश बंगला में बीता था। बंगला में लेखन कार्य करने वाले निराला बाद में हिन्दी के महा कवि बने हैं। उनकी काव्य रचनाओं में सुंदरता और विद्रूपता, कल्पना और यथार्थ का एक साथ समन्वय दिखाई पड़ता है। इनकी काव्य साधना का समय लगभग सन् 1916 से 1958 ई० तक माना जाता है। उनके काव्य ग्रंथों में अनामिका (1923), परिमल (1930), गीतिका (1936), तुलसीदास (1938) आदि छायावादी काव्य हैं तो कुकुरमुत्ता, बेला, नये पत्ते, वर्षागीत, अर्चन आदि परवर्ती काव्य हैं। निराला का 'परिमल' काव्य छायावाद का प्रतिनिधि काव्य माना जाता है। जुही की कली, पंचवटी, विधवा, भिक्षुक आदि इसी संग्रह की है। 'परिमल' की कविताओं में विषय की

विविधता देखी जा सकती है। इस में प्रेम-सौंदर्य, करुणा और रहस्य-भावना की मार्मिक अभिव्यंजना हुई है।'गीतिका' तथा 'अनामिका' दोनों गीति काव्य हैं। 'अनामिका' अधिक चर्चित काव्य है। इसमें सरोज स्मृति, तोड़ती पत्थर, बादल राग आदि लोकप्रिय कविताएँ संग्रहित हैं। 'राम की शक्ति पूजा' तथा 'तुलसीदास' रचनाएँ उनकी प्रबंध -क्षमता के उत्कृष्ठ उदाहरण हैं। कुकुरमुत्ता, मणिमा, नए पत्ते और अर्चना में निराला के प्रगतिशील विचार व्यक्त हुए हैं। निराला के छंद के क्षेत्र में नवीन प्रयोग किए। युक्त छंद का प्रयोग इन्हीं के नाम से जोडा जाता है।

4.4.4 महादेवी वर्मा :-

आधुनिक मीरा के नाम से अभाहित महादेवी वर्मा का जन्म सन् 1907 ई. में हुआ था। वे प्रसाद की भांति आरंभ में ब्रजभाषा में लिखती थी। 'यामा' काव्य पर उन्हें ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हुआ था। इस के अतिरिक्त नीहार, रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत, दीप शिखा आदि उनके प्रमुख काव्य संग्रह हैं। उनकी कविताओं में विरह वेदना, रहस्यावाद और छायावाद से तत्व दिलोरे मारते दिखाई पड़ते हैं। विस्मय, व्यथा, आध्यात्मिकता आदि उनकी रचनाओं के मुख्य विषय हैं। उनकी अज्ञात किंतु सर्वव्यायी परमात्मा के विरह में व्यथित है। उनके प्रणय व विरहगीत प्रतीकात्मक है। उनकी कविताओं में व्यंजित विरह वेदना लोककल्याण के निमित्त है। उनकी उक्ति ''मैं नीर भरी दुख की बदली'' से स्पष्ट है कि जिस प्रकार बदली बरसकट लोक का कल्याण करती है, उसी प्रकार महादेवी के दृश्य में लोक-कल्याण की भावना निहित है। उनका 'दी पशिखा' काव्य एक प्रतीकात्मक काव्य है। जब वे दीप शिख से स्वयं की तुलना करती है तब उसमें भी लोक कल्याण की भावना सम्मिलित रहती है। वे पीडा में प्रियतम और प्रियतम में पीडा को खोजनेवाली पीडावादी कविइत्री है। छायावादी काव्य में भारतीय नारी जीवन की सिसकती पीडा को जोड़ देना महादेवी के काव्य का भौतिक योगदान है। महादेवी के 'नीहार' में वैयक्तिक दु:खवाद और आध्यात्मवाद की अभिव्यक्ति हुई। 'रश्मि' में महादेवी की जीवन-मृत्यु, सुख और दुख पर मौलिक चिंतन प्रकट हुआ है। 'निराला' में प्रकृति में मानवीय भावनाओं का आरोप किया गया है। 'सांद्य गीत' में सुख और दुख, विरह और मिलन के अहाव को सुतंलित ढंग से व्यक्त किया गया है। महादेवी वर्मा असीम अज्ञात प्रियतम के प्रति दांपत्य भाव भी व्यक्त करती है।

छायावाद के इन प्रमुख चार कवियों के अतिरिक्त रामकुमार वर्मा, हरिवंशराय, नरेन्द्रशर्मा, भगवतीचरण वर्मा रामेश्वर शुक्ल अंचल जैसे कवियों में भी छायावाद की विशेषताएँ पायी जाती हैं। मात्रा तथा गुण वत्त की दृष्टि से ये बहुत महत्वपूर्ण छायावादी कवि नहीं है। फिर भी इन की रचनाओं में छायावादी तत्व अवश्य परिलक्षित होते हैं। खासकर रामकुमार वर्मा को आकाश गंगा, निशीय, अपराधि, चित्ररेखा आदि कृतियों में छायावादी प्रवृत्तियों का सुंदर समावेश हुआ है।

- डॉ. आई. एन. चन्द्रशेखर रेड्डी

5. प्रगतिवादी काव्यधारा - प्रतिनिधि कवि एवं काव्य

5.1 प्रस्तावना :-

सन् 1940 के आस पास छायावाद के विरोध में हिन्दी में अनेक नए स्वर व अनेक नए आंदोलनों का विकास हुआ है। 'प्रगतिवाद' उनमें से एक है। छायावाद भावलोक की कविता है तो प्रगतिवाद इह लोक की कविता है। कल्पना चमत्कार से भावलोक में विचरन करने को प्रगतिवादी कवि विरोध करता है। उनका दृष्टिकोण नितांत भौतिक है। वह भी दर्शनीय है। मानव जीवन और उसकी वास्तविकताएँ प्रगतिवादी कविता की मुख्य विशेषताएँ है। भारतीय लेखकों में सन् 1936 के आसपास साहित्य के सामाजिक प्रयोजनवादी विचार धारा की ओर झुकाव शुरू हो गया। सन् 1936 में प्रेमचंद के नेतृत्व में अखिल भारतीय 'प्रगतिशील लेखक संघ' की प्रथम बैठक हुई है। उस में निर्णय लिया गया कि साहित्य सिर्फ जीवन के लिए है। यथार्थ जीवन से हटकर साहित्य का कोई लक्ष्य नहीं होना चाहिए। इस पृष्ठभूमि के होते सन् 1940 में हिन्दी प्रगतिवाद का जन्म हुआ।

प्रगतिवादी आंदोलन सौ फीसरी भारतीय आंदोलन होने पर भी इस की पृष्ठ भूमि और सिद्धांत पक्ष विदेशी है। प्रगतिवाद मुख्यतया मार्कसवाद का समर्थन करता है। जो भारत में विदेशों से आयात हुआ है। प्रगतिवादी कवि अपने पूर्व युगों से भिन्न अपनी कविताओं में सामान्य मानव की प्रतिष्ठा करना चाहता है। शोषित, शमित, दलित, उपेक्षित का उन्नयन चाहता है। इन को काव्य नायकों के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयास भी उन्होंने किया है।

5.2 प्रगतिवाद का अर्थ और स्वरूप :-

हिन्दी में प्रयुक्त होने वाला 'प्रगतिवाद' शब्द एक रूढ प्रयोग है। इस शब्द से इस के दार्शनिक पक्ष का उद्‌घाटन नहीं होता है। साधारणतया जिस विचार धारा को राजनीतिक क्षेत्र में साम्यवाद, सामाजिक क्षेत्र में समाजवाद और दर्शन में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद कहते हैं। वही साहित्यिक क्षेत्र में प्रगतिवाद के नाम से जाना जाता है। दूसरे शब्दों में मार्कसवादी या साम्यवादी दृष्टिकोण के अनुसार निर्मित में काव्यधारा का रूढ नाम 'प्रगतिवाद' पड़ गया। 'प्रगतिशील' का साधारण अर्थ है आगे बढना 'प्रगति' के साथ 'प्रगतिशील' और 'प्रगतिवाद' दोनों शब्द चल पड़े हैं। इन दोनों में अंतर है। जो साहित्य जीवन को आगे बढाने में सहायक हो वह प्रगतिशील साहित्य है। तुलसीदास, भारतेन्दु आदि प्रगतिशील साहित्यकार हैं क्योंकि उनके साहित्य में मानव जीवन को आगे बढाने के तत्व हैं। परन्तु

आज की प्रगतिवादी इनमें से किसी को प्रगतिवादी नहीं मानेगा। उनके अनुसार ये सभी प्रगतिशील है। प्रगतिवादी नहीं है। उनके अनुसार प्रगति का अर्थ आगे बढना अवश्य है, परन्तु एक विशेष ढंग से, एक विशेष दिशा में। उस की एक निश्चित परिभाषा है। उसका आधार है- द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद। यानी मार्क्सवादा यानी मार्क्स के द्वारा प्रतिपादित विचारों एवं सिद्धांतों की दिशा में आगे ले जाने वाले साहित्यिक रूप को प्रगतिवाद कहा गया है। प्रगतिवादी दर्शन के अनुकूल रची गयी कविता को, प्रगतिवादी कवित माना गया है।

प्रगतिवादी कविता की विशेषताओं पर प्रकाश डालने के पहले उसके आधारभूत सैद्धांतिक पक्ष मार्क्सवाद का विश्लेषण करना आवश्यक है। कार्लमार्क्स (1818-1813 ई.) की विचारधारा को ही 'मार्क्स वाद' कहा जाता है। मार्क्स की विचार धारा के तीन प्रमुख भाग हैं। 1) द्वन्द्वात्मक भौतिक विकास 2) मूल्य वृद्धि का सिद्धांत 3. मूलसश्यता के विकास की व्याख्या।

5.3.1 द्वन्द्वात्मक भौतिक विकास वाद :-

मार्क्स के अनुसार सृष्टि की उत्पत्ति कोई अलौकिक शक्ति या पुरुष नहीं है बुल्कि दो भौतिक शक्तियों के परस्पर द्वन्द्व से किसी तीसरी शक्ति अथवा। पदार्थ का विकास होता है। यह क्रम उत्तरोत्तर बढता जाता है। इस विकास क्रम में सिर्फ योग्यतम की सत्ता बनी रहती है। इस रूप में भौतिक जगत अपने विकास का कारण स्वयं है। यही कारण है कि मार्क्स आत्मा, परमात्मा, ईश्वर, स्वर्ग, नरक, अवतारवाद आदि को नहीं मानते।

5.3.2. मूल्य-वृद्धि का सिद्धांत :-

मार्क्स के अनुसार पदार्थ के मूल्य बढाने के लिए चार वस्तुओं की जरूरत हैं। वे हैं 1) मूल पदार्थ 2) स्थूल साधन 3) श्रमिक का श्रम 4) मूल्य वृद्धि इन चारों के योग से मूल्य वृद्धि होती है। अत: मूल्य वृद्धि में चारों का समान अधिकार होना चाहिए। परन्तु मूल पदार्थ व स्थूल साधन जुटानेवाला पुंजीपति ही मूल्यवृद्धि का अधिक हिस्सा हडप लेता है। श्रम बहाने वाला श्रमिक इस से वंचित किया जाता है। लाभ की दशा में श्रमिक और पूंजीपति में उचित अनुपात से मूल्यवृद्धि का बंटवारा न होने के कारण शोषण को प्रोत्साहन मिलता है। मार्क्स के अनुसार किसान और मजदूर शोषित है। जब कि मालिक जमिंदार और पूंजीपति शोष की हैं।

5.3. 3. विश्व-सभ्यता के विकास की व्याख्या :-

मार्क्स ने शोषक और शोषितों की संघर्ष कहानी को चार युगों में बांट कर उसे ही मानव सश्यता का इतिहास बताया। ये युग है। 1) दास प्रथा का युग 2) सामंती प्रथा का युग 3) पूंजीवादी की व्यवस्था का युग 4) साम्य वादी व्यवस्था का युग। दास प्रथा में श्रमिक के व्यक्तित्व, उसके श्रम, उत्पादन के साधनों एवं उत्पादित वस्तु-इन चारों पर मालिक का ही अधिकार था। दूसरी अवस्था (सामंती प्रथा) में श्रमिक के व्यक्तित्व को तो स्वतंत्रता मिली पर शेष तीन पर फिर भी सामंत का ही अधिकार रहा। अत: यह युग दास प्रथा युग से थोडा ही अच्छा रहा। तीसरी अवस्था पूंजी वादी युग में मजदूर के व्यक्तित्व और श्रम पर तो श्रामिक का अधिकार हो गया, परन्तु श्रम के साधनों और उत्पादित वस्तु पर फिर भी शोषक का (पूंजीपति) का अधिकार रहा। यह आरंभिक दो युगों से अच्छा था। किंतु अभी तक उत्पादन के साधनों पर पूंजीपत्ति का ही अधिकार रहा। मार्क्स का लक्ष्य ऐसी अवस्था की स्थापना करना था, जिस में मजदूरों को उत्पादन साधनों पर भी अधिकार दो तथा प्रत्येक श्रमिका को उस की क्षमता-योग्यता और परिश्रम के अनुसार मूल्यवृद्धि का हिस्सा मिलता हो। मार्क्स का लक्ष्य ऐसे साम्यवादी व्यवस्था की स्थापना का था। उनका विचार था। ऐसी व्यवस्था की प्राप्ति के लिए हिंसात्मक क्रांति भी करनी पडे तो उचित है।

इस सिद्धांत को मूल में रखकर प्रगतिवादी साहित्य शोषकवर्ग की भर्त्सना करके, शोषितों के प्रति सहानुभूति दिखाकर शोषक वर्ग के विरुद्ध उन्हें उत्तेजित करता है। क्रांति का आह्वान कर के साम्यवादी व्यवस्था की स्थापना के लिए बल जुटाता है।

5.4 हिन्दी में प्रगतिवादी कविता की पृष्ठभूमि :-

हिन्दी की प्रगतिवादी कविता भारतीय परिवेश में ही विकसित कविता है। उसका दार्शनिक पक्ष ही विदेशी है। मार्क्स की विचारधारा को भारतीय जन-जीवन पर लागू करके प्रगतिवादी कवि समाज में साम्यवाद की स्थापना करना चाहते हैं। भारत में प्रगतिवाद की नींव उस समय पड़ी जब भारत में भी तेजी से औद्योगीकरण शुरु हो गया। भारत में भी पूंजीपति, श्रामिक शोषित एवं शोषक वर्ग का जन्म हो गया। द्वितीय महायुद्ध के साथ ही देश में गरीबी और बेरोजगारी बढ़ गयी। महंगाई और वर्गवाद और सघन हो गए। ऐसी परिस्थितियों ने साहित्यकारों को प्रेरित किया। सन् 1936 में ऐसी स्थितियों से उभर ने तथा शोषितों के शोषण को रोकने अखिल भारत के स्तर पर 'अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना हुई। उस समय तक साहित्य में मौजूद व्यक्तिवादी चेतना को इससे

धक्का लगा। आत्मनिष्ठ अंतर्मुखी लेखन का घोर विरोध किया गया। बदलते हुए पिरवेश के अनुकूल नए हस्ताक्षर शिवमंगल सिंह सुमन, अंचल, केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, त्रिलोचन, रांगेय राघव, गजानन माधव, गिरिजा कुमार माथुर, भारत भूषण अग्रवाल जैसे कवि उभर कर आये हैं। इनके तत्वावधान में हिन्दी की प्रगतिवादी कविता का विकास हुआ है।

5.5 प्रगतिवादी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ :-

5.5.1 परंपराओं एवं विश्वासों का विरोध :-

प्रगतिवादी कवि जर्जर मान्यताओं, अंध परं पराओं एवं अंध विश्वासों को नहीं मानता है। क्यों कि भारत में ईश्वर ने इर्दगिर्द ही सभी परंपराएं एवं विश्वास विकसित हुए हैं। प्रगतिवादी ईश्वर पर विश्वास नहीं रखता है। उसे सृष्टिकर्ता नहीं मानता है। उस की दृष्टि में मानव ही सर्वोपशी है। स्वर्ग, नरक, पाप-पुण्य आदि अविश्वसनीय हैं। उस के लिए धर्म एक अधीम के समान है। उस के लिए जातिवाद भी निरर्थक है। इसलिए प्रगतिवादी कवि धर्म, समाज का विरोध करते हुए उनसे संबंध रखनेवाली परंपराओं एवं विश्वासों का कड़ा विरोध करता है। परंपराओं एवं शोषकों की कहानियों से भरे इतिहास के प्रति उसे विश्वास नहीं है। इन सब का विरोध करते हुए वह कहता है -

भ्रांत यह अतिरंजित इतिहास?
व्यर्थ के गौरव गान
दर्प से एक महान
अपर मुख म्लान
किसी को आर्य, अनार्य,
किसी को यवन
किसी के दूण-यहूदी द्रविड़
किसी को शीश
किसी को चरण
मनुझ को मनुज न कहना आह।

मनुष्य को मनुष्य नहीं कह सकने के इतिहास के प्रति प्रगतिवादी कवि शेष प्रकट करता है।

इतिहास एक खिलौना है

इन झुनझुनों को

दुनिया के हाथों में देना जरूरी है

दुनिया बिना देवता के

कैसे जी सकती

होती विजय सत्य की

यह पुरानी परिभाषा है

जो विजयी हो जाए

आज वही सत्य है।

5.5.2 शोषितों के प्रति सहानुभूति :-

प्रगतिवादी कवि शोषण को अभिशाप मानता है। शोषकों के शोषणा चक्र का शिकार हुए शोषितों के प्रति गहरी सहानुभूति व्यक्त करता है। सामंत वादी व्यवस्था के चिह्न जमींदार व पूंजीपति शोषक हैं। मजदूर किसान आदि शोषित हैं। शोषण की चक्की के पाटों में पिसने वाले शोषितों के प्रति उन्होंने सहानुभूति व्यक्त करके उनके कारुणिक चित्र प्रस्तुत किए हैं। सामाजिक शोषण के शिकार हुए 'भिक्षुक' का कारुणिक चित्र निराला ने इस रूप में खींचा है –

वह आता

दो टूक कलेजे के करता, पछताता पथ पर आता।

पेट–पीठ दोनों मिलकर हैं एक

चल रहा लकुटिया टेक

.....

दोटूक कलेजे के करता, पछताता पथ पर आता।

साथ दो बच्चे भी हैं साथ हाथ फैलाये,

और दाहिना दया–दृष्टि पाने की ओर बढाये।

शोषण का शिकार हुए शोषित की बहुत दयनीय स्थिति है। कीड़ों जैसे जठिन जीने वाले उनके जीवन से परिचय कराकर प्रगतिवादी कवि आठ आंसू बहाने को बाद्य करते हैं।

यह नस्ल जिसे कहते मानव, क्रीड़ा से आज गई बीती।

बुझ जाती तो आश्चर्य न था, हैरत है पर कै सी जीती॥

गरीबी की दयनीय स्थिति में अपनी संतान को ही बेचाने का बर्बरकार्य करने को वह विवश है। एक कवि के शब्दों में उनकी विवशता इस प्रकार है –

बाप बेटा बेचता है। भूख से बेहाल होकर

धर्म धीरज प्राण खोकर, दो रही अनरीति बर्बर।

राष्ट्र सारा देखता है।

वस्तुओं के उत्पादक–दाता ही उन से वंचित है। उत्पादन करने के लिए वह विवश है। परन्तु उन का उपभोग करने का अधिकार उसके पास नहीं है। प्रगतिवादी कवि कह उठता है –

ओ मजदूर ओ! मजदूर !

तू सब चीजों का कर्ता तू ही सब चीजों से दूर,

ओ मजदूर! ओ मजदूर!

5.5.3 शोषकों की भर्त्सना के साथ शेष और आक्रोश प्रकट करना :-

प्रगतिवादी कवि शोषितों के प्रति सहानुभूति व्यक्त करके अपने कार्य को संपन्न नहीं मानता है! बल्कि शोषितों में ऐसी चेतना की कामना करता है कि शोषित बेधड़क अपने अधिकारों के लिए शोषकों से संघर्ष करे। इस केलिए शोषितों की निराशा और दुर्बलताओं को दूर कर के उन में साहस का संचार करना चाहिए। प्रगतिवादी कवि इसलिए शोषकों की भर्त्सना करके शोषितों के सामने शोषकों को हीन ठहराता है। अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए शोषकों से संघर्ष करने के लिए शोषितों में क्रांति का आहवान करते हैं। 'विप्लव–गायन' कविता में बाल–कृष्ण शर्मा नवीन कह उठते हैं –

नियम और उपनियमों के ये बंधन टूट–टूट गिर जायें,

विश्वंभर की पोषक वीणा के सब तार मूक हो जायें,

शांति-दंड टूटे- उस महारुद्र का सिंहासन थर्राये,

उसका शोषक स्वासोच्छ्वास विश्व के प्रांगण में घहराये,

नाश! नाश! हां महानाश की प्रलयंकरी आंख खुलजाये,

कवि कुछ ऐसी तान सुजाओ-जिस से उथल-पुथल मच जाये।

प्रगतिवादी कवि पैसे के असंतुलित फैलाव का विरोध करता है। उनका विचार है कि भारत का गरीब एक ओर रोटी के लिए तरस रहा है तो दूसरी ओर अमीर हाथ पर हाथ धर कर विलासी जीवन जी रहा है। कवि दिनकर इस के प्रति दोष प्रकट करते हुए 'हुंकार' में कह उठते हैं -

श्वानों को मिलता वस्त्र, दूध, भूखे बालक अकुलाते हैं।

मां की हड्डी से चिपक ठिठुर, जाडों की रात बिताते हैं॥

युवती की लज्जा वरुन बेच, जब ब्याज चुकाये जाते हैं।

मालिक जब तेल फुलेलों पर पानी या द्रव्य बहाते हैं॥

पापी महलों का अहंकार देता मुझ को तब आमंत्रण॥

5.5.4 क्रांति का आह्वान :-

प्रगतिवादी कवि का मत है कि सिर्फ क्रांति के द्वारा ही शोषित अपने खोए हुए अधिकारों को शोषकों से प्राप्त कर सकता है। समसमाज व साम्यवादी व्यवस्था की स्थापना सिर्फ क्रांति के द्वारा ही संभव है। सिर्फ अधिकारों की मांग से काम नहीं चलेगा। इस के लिए शोषक वर्ग का सर्वथा ध्वंस अपेक्षित है। इसलिए प्रगतिवादि कवि क्रांति के उन प्रलयंकारी भैरव स्वरों का स्वागत करता है जिन से जीर्ण-शीर्ण रुढियाँ और परंपराएँ अपने आप टूट जाये। प्रगतिवादी कवि को समझौते या दृश्य परिवर्तन पर विश्वास नहीं है। वह जोडे रूपी शोर्षक वर्ग को सर्जरी के द्वारा ही उखाड़कर फेंकने में विश्वास रखता है। प्रगतिवादी कवि बालकृष्णशर्मा नवीन कह उठते हैं -

कवि, कुछ ऐसी तान सुनामो-जिस से उथल-पुथल मचजाये,

एक दिलोर इधर से आये-एक दिलोर उधर से आये,

प्राणों के लाले पड़ जायें त्राहि-त्राहि रव नभ में छाये,

नाश और सत्यनाशों का धुँआधार जग में छाये।

प्रगतिवादी कवि के अनुसार सजग श्रमिक वर्ग ही अपने व्यापक और दृढ संगठन के बल पर एक ऐसी क्रांति को जन्म देगा। जिसमें से विषमता की कहानी मिट जायेगी और वर्गहीन समाज की प्रतिष्ठा होगी। कवि केदारनाथ अग्रवाल खोतिदर किसान के मुंह से कहलवाते हैं –

मेरे खेत में हल चलता है
मैं युग की निद्रा खोता हूँ
गेहूँ चना नहीं बोता हूँ
खूनी अंगारे बोता हूँ।

5.5.5 वर्ग चेतना :-

मार्क्स के अनुसार समाज को शोषकवर्ग तथा शोषित वर्ग में बांटा जा सकता है। इसका आधार पूंजीवादी शोषण ही है। एक वर्ग विलासी बना तो दूसरा सर्वस्व खोकर असहाय अवस्था में चेतना शून्य हो गया है। उसे फिर से चेतना संपन्न बनाने के लिए प्रगतिवादी कवि कटिबद्ध है। मानव के द्वारा मानव की उपेक्षा और शोषण बर्बर नीति है। अत: प्रगतिवादी कवि मानवीय अधिकारों की रक्षा के लिए संघर्ष करने की वर्ग चेतना जगाता है। केदारनाथ अग्रवाल 'युग की गंगा' कह उठते हैं –

अधिकांश मानव–समाज का जीवन
रद्दी की टोकरी का जीवन है
संज्ञाहीन, अर्थहीन
बेकार चिरपटे टोकडों से पडा है।

समृद्ध एवं विलासी जीवन जीनेवाले जमींदार एवं पूंजी पति सोषक वर्ग तो पहले से तोंदू बढ़ाया हुआ है। इस रूप में शोषण तथा शोषित वर्ग के बीच की खाई बहुत बडी है। प्रगतिवादी कवि इस का विरोध करते हुए समसमाज की तथा साम्यवादी व्यवस्था की स्थापना की कामना करता है।

22.5.6 ईश्वर तथा धर्म के प्रति अंधविश्वास :-

प्रगतिवादी कवि द्वन्द्वात्मक भौतिक विकासवाद का समर्थन करता है। द्वन्द्वात्मक भौतिक विकासवाद दृष्टि की रचना पदार्थों के द्वन्द्वों से मानता है न कि ईश्वर या किसी अलौकिक सत्ता के कारण। इसलिए प्रगतिवादी कवि मनुष्य को छोड़कर किसी अलौकिक शक्ति में विश्वास नहीं रखता।

इतना ही नहीं वह परलोक, स्वर्ग–नरक, भाग्यवाद, विपत्ति, धर्म पर भी विश्वास नहीं रखता है। धर्म उनके लिए अधीम का नशा तथा प्रारब्ध एक प्रवंचना है। प्रगतिवादी कवि ईश्वर और धर्म को भी शोषण के साधन मानते हैं। वर्तमान दुस्थिति के लिए इन्हीं को जिम्मेदार ठहराते हैं। अत: वे मनुष्य को संघर्ष की ओर प्रेरित करते हुए भाग्यवादी प्रवृत्ति की भर्त्सना करते हैं –

रोटी तुम को राम न देगा

वेद तुम्हारा काम न देगा

जो रोटी का युद्ध करेगा

वह रोटी को आप करेगा।

5.5.7 मार्क्स तथा रूस का यशगान :-

मार्क्सवाद के प्रति प्रेम और श्रद्धा के कारण प्रगतिवादी कवि मार्क्सवाद के प्रवर्तक मार्क्सतथा रूस जहाँ उनकी विचार–धारा पुषिप्त और पल्लवित हुई दोनों का यशगान करता है। प्रगतिवादी कवि देश काल बंधनों से मुक्त होकर वे मार्क्स का समर्थ करते हैं। कवि पंत ने मार्क्स के समर्थन में लिखा है।

जन्य मार्कस चिर तमाच्छत्त पृथ्वी ने उश्य शिखर पर

तुम त्रिनेत्र के ज्ञान चक्षु से प्रकट हुए प्रलयंकर॥

प्रगतिवादी कवि नरेन्द्रशर्मा एक सीढी आगे बढकर रूस की प्रशंसा में लग जाते हैं –

लाल रुस है ढाल साथियो! सब मजदूर किसानों की,

वहां राज हैं पंचायत का, वहां नहीं है बेकारी।

लाल रुस का दुश्मन साथी! दुश्मन अब इन्सानों का।

हुदूमन है सब मजदूरों का, दुश्मन सभी किसानों का।

इस की प्रशंसा कर के रुस जैसा सुधार और प्रगति की कामना वे करते हैं।

5.5.8 नारी तथा प्रकृति के प्रति नवीन दृष्टिकोण :-

प्रगतिवादी दृष्टिकोण के अनुसार किसान, मजदूर की तरह नारी भी शोषित वर्ग की है। नारी के प्रति इस मानवीय दृष्टिकोण के कारण प्रगतिवादी कवि नारी को सभी बंधनों से मुक्त करना चाहते

हैं। उन के अनुसार सभी सामाजिक नियम और मान्यताएं नारी के विरोध में बनाये गए हैं। इन के उल्लंघन से ही नारी का जीवन सुधर सकता है। नारी को हून से मुक्त किए बिना सामाजिक प्रगति संभव नहीं है। प्रगतिवादी कवि नारी को सिर्फ भोग्या नहीं मानते हैं। बल्कि अदरणा मानते हैं, मानवी मानते हैं। वे नारी के सामाजिक व्यक्तित्व का मूल्यांकन मानवीय धरातल पर करते हैं। परंपराओं से तथा शोषक वर्ग से नारी को मुक्त करना चाहते हैं। पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर नारी को आगे बढाने की इच्छा प्रकट करते हैं –

चोली चीर उतारो नारी
जाओ–जाओ युग पटवारी,
लज्जा के परिधान न भाते,
खुली देह को एक न भाते,
आओ मर्दों के संग आओ,
सामूहिक जन–जीवन पाओ।

प्रगतिवादी कवि पंत कह उठते हैं –

योनि नहीं है रे नारी वह भी मानवी प्रतिष्ठित।
उसे पूर्ण स्वाधीन करो वह रहे न जर पर अवसित।

प्रगतिवादी कवियों ने प्रकृति के सौंदर्य पक्ष का नहीं बल्कि सामाजिक उपयोग पक्ष को परखा है। उसी का समर्थन किया है।

5.5.9 जीवन के प्रति यथार्थवादी दृष्टिकोण :-

प्रगतिवादी कविता कल्पना लोक की नहीं है। उसका संबंध जीवन की वास्तविकताओं से है। जीवन यथार्थ का उद्‌घाटन करना ही उसका मुख्य लक्ष्य है। जीवन के उस पक्ष का उद्‌घाटन करना ही उसका मुख्य लक्ष्य है। जीवन के उस पक्ष का उद्‌घाटन वे अनावश्यक मानते हैं। जिस से सिर्फ आदर्श वे सौंदर्य उभरते हैं। इसलिए ऐश्वर्य, विलास, सुमन, सुरभि, मादक वसंत आदि उनके लिए कोई मानी नहीं रखते हैं। कडुवे ही यही जीवन के आनाचार, भूख की पुकार और पीडित की हाहाकार आदि ही उनकी काव्य वस्तु बने है। प्रगतिवादी कवि आकाश में विचरण करने की अपेक्षा पृथ्वी के यथार्थ जीवन को खुली आंख से देखते हैं। सौंदर्य और वैभव के भी सामाजिक उपयोगिता

को तराजु में तोलने की कोशिश करते हैं। 'ताजमहल' का निर्माण सामाजिक शोषण मानने के पीछे यही दृष्टि कोण है। कवि पंत ने लिखा है –

हाय मृत्यु का ऐसा अमर अपार्थिव पूजन।

जब विषण्ण निर्मीव पड़ा हो जग का जीवन।

5.5.10 कला और सौंदर्य के प्रति दृष्टिकोण :-

प्रगतिवादी कवि अनुभूति पक्ष को अधिक महत्व देता है। अभिव्यक्ति पक्ष को नहीं। इसका एक कारण यह है कि प्रगतिवादी कविता में जिस वर्ग के उन्नयन की बात कही गयी है वह पंडिताऊ वर्ग नहीं है। सरल सुबोध भाषा ही वह समझ सकता है। अभिप्रेय वस्तु का संप्रेषण उन तक हो गया तो प्रगतिवादी कवि अपने को सफल मानते हैं। प्रगतिवादी कवि का लक्ष्य खुल मिलाकर अपने भावों को संप्रेक्षित करने का होता है। अलंकृत भाषा उसके लिए आवश्यक नहीं है। कवि पंत का विचार है –

तुम वहन कर सको, जन मन में मेरे विचार।

वाणी मेरी चाहिए क्या तुम्हें अलंकार॥

सौंदर्य उसके लिए अभिप्रेत से बढकर नहीं है। प्रगतिवादी कवि को अपनी लक्ष्य-पूर्ति के लिए कलात्मकता का बलिदान देना पड़ा। छायावादी कवि की संस्कृतमयी क्लिष्ट भाषा से अपने चहेता वर्ग तक नहीं पहुँच सकता। इसलिए प्रगतिवादी कविता में भाव, भाषा, छंद, अलंकार सभी दिशाओं में सरलता को स्थान मिला। छंदों के क्षेत्र में प्रगतिवादी कवियों ने उदार दृष्टिकोण से काम लिया। छंद के संदर्भ में उन्होंने मुक्तक और अतुकांत छंदों के साथ-साथ गीतों और लोकगीतों की शैली का प्रयोग किया है। प्रगतिवादी कवि शिवं वादी है। सामाजिक उपयोगिता ही उनका चरम लक्ष्य है।

5.6 प्रगतिवाद के प्रमुख कवि और उनके काव्य :-

5.6.1 शिवमंगल सिंह सुमन :-

सुमनजी हिन्दी के चर्चित प्रगतिवादी कवि हैं। इन्होंने दो प्रकार की रचनाएँ लिखी हैं। 1. लघु आकार के गीत तथा 2. दीर्घ आकार की लंबी कविताएँ। हिल्लोल, जीवन के गान, प्रलय-सृजन आदि सुभमन जी के प्रमुख काव्य संकलन है। उनकी रचनाओं में विचारों की शुएकता के स्थान पर अनुभूति की सरसता है। संघर्ष और क्रांति उन की कविताओं के मुख्य विषय हैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

विस्तृत पथ है मरे भागे, उस पर ही मुझ को चलना है,

चिरशोषित असहायों के संग अत्याचारों को टलना हैं।

× × × ×

अत्याचारों की छाती पर तुम बढे चलो, तुम बढे चलो।

5.6.2 रामेश्वर शुक्ल अंचल :-

अंचल जी का काव्य जन्म सन् 1915 हुआ था। प्रगतिवादी कवियों में इन की गिनती की जाती है। इन के छे काव्य संग्रह प्रकाशित हुए हैं। इन को कविताओं में निम्न वर्ग के प्रति असीम अनुकंपा देखी जाती है। शोषकों की निंदा करने में वे संकोच नहीं करते हैं। मधूलिका, अपराजिता, किरणबेला, करील, लाल चूनर और वर्षांत के बादल उनके काव्य संग्रह हैं। इसके अतिरिक्त प्रगतिवादी दृष्टिकोण को लेकर इन्होंने कुछ निबंध लिखे हैं।

5.6.3 केदारनाथ अग्रवाल :-

प्रगतिवादी कवियों में अधिक चर्चित कवि हैं। केदारजी का जन्म उत्तर प्रदेश के बांदा जिले के कमासिन गांव में सन् 1911 ई. में हुआ था। इनकी कविता में सामाजिक यथार्थ, शोषकों के प्रति असंतोष, शोषितों के प्रति सहानुभूति संघर्ष और क्रांतित की भावना अधिक व्यंजित हुई है। इन की भाषा सरल है और ग्रामीण शब्दों से युक्त है। नींद के बादल, युग की गंगा, लोक और परलोक, फूल नहीं रंग बोलते है, भाग का आईना, समय-समय पर पंख और पतवार, हे मेरीतुम, कहें करोर खरी, गुल मेहंदी भी उनके काव्य संग्रह हैं। 'युग की गंगा' पूर्ण रूप से प्रगतिवादि काव्यकृति है। कवि ने इस के बारे में स्वयं कहा है - इन में ईश्वर का मखौल है। इन में समाज की अर्थ-नीति के विरुद्ध प्रहार है, इन में कटु जीवन का व्यंग्य है, साथ ही साथ देश के जगारण का संदेश भी उनकी कविता का एक अंश द्रष्टव्य है -

आगे लगे इस राम राज्य में

ढोलक मढती है अमीर की

चमड़ी बजती है गरीब की

खून बहा है रामराज्य में

आग लगे इस राम राज्य में।

5.6.4 नागार्जुन :-

नागार्जुन उन प्रगतिवादी कवियों में से हैं जिन की कविताओं में हृदय की पीडा और दुख देखने को मिलते हैं। उनकी रचनाएँ फार्मुलबद्ध नहीं हैं। उनकी कविताएँ अनुभूति प्रधान हैं। उनकी कविताओं में सामाजिक कुरुपता राजनैतिक अवस्था, धार्मिक आडंबरों पर व्यंग्य पाया जाता है। प्रेत का बयान, वे और तुम, बादल को गिरते देखा है, पाषाणी, तुम्हारी दंतुरित मुस्कान आदि नागार्जुन की श्रेष्ठ प्रगतिवादी कविताएँ हैं।

5.6.5. रांगेय राघव :-

रांगेय राघव बहुर्मुखी प्रतिभा के लेखक हैं। उन्होंने उपन्यास, कहानी, काव्य, आलोचना आदि विधाओं में लेखन कार्य किया है। काव्य के क्षेत्र में प्रबंध तथा मुक्त दोनों को लिखा है। अजेय खंडहर,मेधावी, पांचाली, पिघलते पत्थर उनके काव्य संग्रह है। पिघलते पत्थर में उनकी प्रगतिवादी कविताएँ संग्रहित है।

5.6.6 त्रिलोचन शास्त्री :-

शास्त्री जी प्रगतिवादी कविता में प्रमुख है। इन की कविताओं में समाजवाद का समर्थन, मार्कसवाद की खुली प्रशंसा, शोषित के प्रति सहानुभूति दिखाई पड़ती है। उनकी एक कविता का एक अंश द्रष्टव्य है –

बिना पूंजीवाद को मिटाये किसी तरह भी

यह जीवन स्वस्थ नहीं हो सकता।

इन प्रगतिवादी कवियों के अतिरिक्त गजाननमाधव, गिरिजाकुमार माथुर, भारत भूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे आदि भी प्रगतिवादी विचारों से संबंधी कविताएँ लिखते हैं। परन्तु प्रयोगवाद और नयी कविता के कवियों के रूप में वे अधिक चर्चित हैं।

- डॉ. आई. एन. चन्द्रशेखर रेड्डी

6. प्रयोगवादी काव्यधारा : प्रतिनिधि कवि एवं काव्य

6.0 प्रस्तावना :-

छायावाद के संध्या काल में प्रगतिवाद की वैचारिकता से पूर्णतया संतुष्ट नहीं हुए युग कवियों में अपने अनुभूत सत्य को अपूर्व एवं नये ढंग से अभिव्यक्त करने की लालसा बढ़ गयी। नवोन्मेष तथा जीवन यथार्थ के प्रति समर्पण उनके इस जोश के मूल आधार हैं। उनके इस जोश और लालसा को व्यक्त करने के लिए उन को कोई दिशा या राह प्राप्त नहीं हुई। नए ढंग से व्यक्त करने की लालसा ने उन्हें 'प्रयोग' कर ने को उकसाया। दिशाहीनता, अस्पष्टता की विलक्षण-स्थितियों से गुजरने वाले इन युवा कवियों के लिए प्रयोग एक आश्रय बना। सन् 1940 के आसपास हिन्दी काव्य लेखन में उतरे युवा कवियों में यही छटपटाहट दिखाई पड़ती है।

'इन युवा कवियों को एक आश्रय तथा प्रयोग करने की नयी राहों की बिताना आवश्यकता थी। ऐसे कवियों को कवि आश्रय एक आज्ञेय बने तथा 'प्रतीक' पत्रिका उनकी राहवाहिका बनी' सन् 1943 में 'प्रथम तार सप्तक' के बानरके नीचे अज्ञेय ने इन युवा कवियों को आश्रय दिया। इस समय तक किसी भी रूप में अचर्चित कवियों का चयन ही उन्होंने किया अज्ञेय एक झलकता पुरुष है। उत्तर छायावादी युग में पदहीन हिन्दी कविता को एक नयी दिशा देने का उदात्त लक्ष्य उनमें था। इसी लक्ष्य पूर्ति की दिशा में इन सात युव, कवियों का संघटन बनाया। हिन्दी कविता की नयी राहों को खोल दिया। इस में कोई संदेह नहीं है कि अज्ञेयजी के नेतृत्व के कारण ही हिन्दी में 'प्रयोगवाद' का जन्म हुआ। हिन्दी कविता में एक नये युग का शुभारंभ हुआ।

6.1 प्रयोगवाद का अर्थ और स्वरूप :-

सन् 1943 में अज्ञेयजी ने सात नये कवियों की कविता का संग्रह करके संपादन करके 'प्रथम तारसप्तक' के नाम से हिन्दी पाठकों को परिचय कराया। इन सात कवियों को समझने तथा विश्लेषण करने के लिए उन्होंने कुछ महत्वपूर्ण घोषणाएँ भी की हैं। नवीन काव्य शैली में लिखी गयी इन कविताओं के लिए 'प्रयोगवाद' का नाम देते हुए उन्होंने प्रयोग के बारे में लिखा है - ''प्रयोग सभी कालों के कवियों ने किए हैं। किंतु कवि क्रमश: अनुभव करता आया है कि जिन क्षेत्रों में प्रयोग हुए हैं। आगे बढकर अब इन क्षेत्रों का अन्वेषण करना चाहिए जिन्हे अभी छुआ गया। जिन को अभेद्य माननीय गया है।'' स्पष्ट है कि ऐसे नये क्षेत्रों की खोज की घोषणा अज्ञेय जी ने की है कि जो अभी तक खोज नहीं निकले गए हैं। नयी खोजों को करने के उत्साह और प्रतिभा उन कवियों में हैं। ये नये कवि अनुभूत-

संपन्न है। प्रथम अभिव्यक्ति की दुनिया में अनुभव संपत्त नहीं है। 'पत्थर तार सप्तक' की भूमिका में अज्ञेय जी ने एक और महावपूर्ण बात कही है – ''ये कवि किसी एक स्कूल के नहीं है, किसी मंजिल पर पहुँचे हुए नहीं है। अभी राही है। राही नहीं–राहों के अन्वेषी है।'' इस वक्तव्य से एक बात स्पष्ट होती है कि दर्शन और जीवन यथार्थ के संदर्भ में इन सातों कवियों में असमानता है। विविधता है। सभी कवि प्रयोग के स्तर पर ही थे। 'प्रयोग' इन कवियों के लिए साधन अथवा माध्यम है जिस के द्वारा वे विशेष कर ह्रासोन्मुखी मध्यवर्गीय जीवन यथार्थ को व्यक्त करना चाहते थे।

'प्रयोग' शब्द अंग्रेजी के Experiment का पर्यायवाची है। वैज्ञानिक क्षेत्र में इस का अधिक महत्व है। साहित्य के क्षेत्र में जहाँ मनुष्य के जीवन सत्यों का उद्‌घाटन होता है। उन सत्यों को समझने तथा अभिव्यक्ति के नए साधनों की खोज करने में प्रयोग संभव है। प्रयोगवाद के जन्मदाता कवि अज्ञेयजी ने प्रयोग तथा प्रयोगवाद को इस रूप में समझाया है – ''प्रयोग अपने आप में इष्ट नहीं है और दोहरा साधन है, क्योंकि एक तो वह सत्य को जानने का साधन है जिसे कवि प्रेषित करता है दूसरे वह उस प्रेरणा की क्रिया को और उशके साधनों को जाने का भी साधन है। अर्थात् प्रयोग द्वारा कवि अपने सत्य को अधिक अच्छी तरह जान सकता है और अधिक अच्छी तरह अभिव्यक्त कर सकता है।'' स्पष्ट है कि प्रयोग सत्यान्वेषण तथा उसकी प्रेरणा का मार्ग है। 'प्रयोग' अब तक के सत्यों को संपूर्णत: स्वीकार नहीं कर सकता। नवीन संदर्भों में सत्य की नवीन झांकिया पाने के लिए वह कृत संकल्प है। इसे और स्पष्ट करते हुए अज्ञेयजी ने कहा है – 'प्रयोगशील कविता में नये सत्यों या नई यथार्थताओं का जीवित बोध भी है। उन सत्यों के साथ नए रागात्मक संबंध भी और उनको पाठक या सहृदय तक पहुंचाने यानी साधारणीकरण करने की शक्ति है।' प्रयोग के लक्ष्य को तथा स्वरूप को समझने के बाद 'वाद' के साथ इस के संबंध को स्पष्ट करना उचित होगा। प्रयोग वाद में जो 'वाद' पदांश है वह सिर्फ रूढिगत प्रयोग है। कोई निर्धारित वैचारिकता उसके पीछे नहीं है। अत: 'प्रयोगवाद' नामकरण भी एक प्रयोग है। जो कालांतर में हिन्दी के अक काव्यांदोलन के लिए रूढ हो गया है।

6.2 प्रयोगवाद के संबंध में प्रमुखों के विचार :-

प्रयोगवाद को लेकर प्रयोगवाद के समय तथा बाद में भी आलोचकों ने अपने विचार प्रकट किए हैं। जो प्रयोगक को और समझने में मददगार साबित होंगे। प्रमुख कवि–आलोचक डॉ.धर्मवीर भारती ने प्रयोगवाद की व्याख्या करते हुए कहा है – ''प्रयोगवादी कविता में भावना है, किंतु हर भावना के आगे एक प्रश्न चिह्न लगा है। इसी प्रश्न–चिहन को आप बौद्धिकता कह सकते हैं। संस्कृत ढांचा चरमरा उठा है और यह प्रश्न उसी की ध्वनिमात्र है।'' भारती जी ने प्रयोगवाद में व्यंजित भावना की

प्रामाणिकता के सामने प्रश्न चिह्न लगाया है। प्रयोगवाद भावना की जगह बौद्धिकता को महत्व देता है। प्रयोगवाद के संबंध में गिरिजाकुमार माथुर के विचार भी द्रष्टव्य है – ''प्रयोगों का लक्ष्य है व्यापक सामाजिक सत्य के खंड अनुभवों का साधारणीकरण करने में कविता को नवानुकूल माध्यम देना जिस में 'व्यक्ति' द्वारा इस व्यापक सत्य का सर्व बोधगम्य प्रेषण संभव हो सके।'' इस से स्पष्ट होता है कि प्रयोगवाद किसी अखंड सत्य में विश्वास नहीं करता। किसी महामानव, महान घटना या किसी महान ईश्वरवाद जैसी संस्थाओं के साथ सत्य को निबद्ध करके देखने का युग समाप्त हो चला है। अब सत्य जिन खंडों में विभक्त है, उनके अनुभवों पर बल दिया जाता है। प्रयोगवादी इसी खंडित सत्य का अनुभव करता है।

'प्रयोग' साहित्य से भाव बोधों और शिल्प विधान की पुनरावृत्ति को रोकने की साधना है। पुनरावृत्ति अपने शुद्ध रूप में मौलिक प्रतिभा और चिंतन के ह्रास की परिचायिका है। प्रयोग उसी पुन र्दषित से बचने का एक रास्ता है। प्रयोग एक प्रबुद्ध चेतना है। जीवन को नवीन माध्यमों से देखने की दृष्टि उसे प्राप्त है। परंपरा और पुनरावृत्ति से प्रयोग का कोई समझौता नहीं है। उस का विश्वास 'प्रगति' में है। पर प्रगतिवाद से उसका कोई मेल नहीं है। प्रयोग में सामाजिक दायित्व व्यक्तित्व से उभर कर व्यक्त होता है। प्रगति में या तो यह आरोपित है या आंशिक व्यक्तित्व के माध्यम से व्यक्त होता है। प्रगतिवाद 'सामूहिक मानव' को प्रमुख मानता है और प्रयोगवाद 'व्यक्ति मानव' को।

6.3 प्रयोगवाद की वैचारिकता :-

जीवन दृष्टि की विविधता दिशा हीनता अस्पष्टता को लेकर उभरे प्रयोगवाद की वैचारिकता कालांतर में कुछ सीमा तक स्पष्ट हुई है। समय रस पर प्रयोगवादी कवियों एवं आलोचकों के द्वारा दी गयी टिप्पणियों से प्रयोगवाद की वैचारिकता को निर्धारित किया जा सकता है। यह सही है की प्रयोगवादी दर्शन की लकीरों पर नहीं चलता। अपनी लकीरें अपने आप खींचता है। प्रयोगवादी कवि अपने प्रति निष्ठावान है। परन्तु वह औरों से विमुख भी नहीं है। वह अपना दायित्व समझता है कि उसे व्यक्ति सत्य को व्यापक सत्य बनाना है।

प्रयोगीवादी आत्म–साक्षात्कार की अदम्य इच्छा में ही प्रेरणा की स्थिति मानता है। लिखकर ही कलाकार अपनी विवशता को पहचानता है। प्रयोगवादी कवि व्यक्ति–दर्शन आंतरिक और बाह्य संघर्षों को भी स्वीकृत करता है। आंतरिक संघर्ष मनोवैज्ञानिक है। आतंरिक संघर्ष के जल स्वरूप आज के मानव का मन यौन परिकल्पनाओं से भरा हुआ है, और वे कल्पनाएँ सब दमित और कुंठित हैं। इस व्यापक दृष्टिकोण के प्रकाश में प्रयोगवाद की वैचारिकता के कुछ मुख्य बिंदु निम्नांकित हैं –

(1) मानव के विशिष्ट व्यक्तित्व के प्रति विश्वास (2) अहं के प्रति निष्ठा और आत्म विश्वास (3) व्यक्ति की मर्यादा की स्थापना : कम से कम वर्ग–जीवन के साथ उस के सह अस्तित्व की घोषणा (4) काव्यसर्जना के लिए स्वतंत्र मन:स्थिति का आवश्यकता : इसी आधार पर तथाकथित प्रगतिवाद को सामान्य ठहराया गया (5) बौद्धिक जागरुकता एवं आधुनिकता।

6.4 प्रयोगवादी कविता की विशेषताएँ व प्रवृत्तियाँ :-

6.4.1 व्यक्ति वादिता की प्रधानता :-

प्रयोगवादी कवि अपने प्रति अधिक विश्वास रखता है। इसी विश्वास के कारण प्रयोगवादी अहंवादी बन गया है। इस अहं के कारण प्रयोगवादी कवि सामाजिक जीवन के साथ किसी प्रकार से सामंजस्य का गठबंधन नहीं करता है। कवि सिर्फ आत्मविज्ञापन और अहंवादिता को ही महत्व देता है। एक प्रयोगेवादी कवि लिखता है –

मेरी अहम की मीनार की ही नीव में

एक पत्थर हिचकियां है ले रहा

एक हिच क।

प्रतिध्वनित हो चाहती इतिहास होना।

आह, मैं अंचा गणन

औ, नींव का पाताल, आँसू की नदी में।

6.4.2 अतियथार्थवादी दृष्टिकोण :-

प्रयोगवादी कवि किसी बंधन को स्वीकार नहीं करता। किसी मूल्य व मान्यता के प्रति किसी निषेध को नहीं मानता। समाज के लिएअसलिकर, अश्लील, अस्वस्थ व बहिष्कृत विषयों को अपनाना कवि उचित मानता है। दमित वासनाओं, कुठाओं जो बिना किसी अच्छादन के अभिव्यकत करने की अतियथार्थवादी दृष्टि प्रयोगवादी कवियों ने अपनायी है। काम, वासना आदि जीवन के अंग है। वे ही जीवन नहीं हैं। जब वे ही जीवन माने जाते हैं तो बडी विकृति हो जाती है। प्रयोगवादी कविता में बहिष्कार निषेध मूलक कामवासनाओ का चित्रण हुआ है।

चली आई बेला सुहागिन पायल पहने –

बाण बिद्ध हरिणी सी

बाहों में सिमट जाने की

उलझने की, लिपट जाने की

मोती की घडी समान ..

उपर्युक्त कविता में कविइत्री शकुंतला माथुर ने कामवासना के अभिधात्मक कथन से अपनी अति यथार्थवादी दृष्ट का परिचय दिया है। प्रयोगवादी कवि सामाजिकत का घोर विरोधी। प्रेम का उदात्तर रूप उनकी कविता में दिखाई नहीं पड़ता है। बल्कि प्रेम का वासनामय रूप ही उस कविता में व्यक्त हुआ है। दलित इच्छाओं एवं वासनाओं का समर्थन उस कविता में हुआ है। प्रयोगवादी कवियों पर यह फ्रायड़-प्रभाव माना जा सकता है। अज्ञेय जी का विचार है - 'आधुनिक युग का साधारण व्यक्ति सेक्स संबंधी वर्जनाओं के आक्रांत है। उस का मस्तिष्क दमन की गई सेक्स की भावनाओं से भरा हुआ है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है -'

आह मेरा श्वास है उत्तप्त -

धमनियों में उमड़ भाई है लहू की धार-

प्यार है अभिशप्त,

तुम कहां हो नारि?

6.4.3 अतिबौद्धिकता :-

प्रयोगवादी कविता में अनुभूति पक्ष की कमी है। भावात्मकता का अभाव है। प्रयोगवादी कवि कविता के माध्यम से बौद्धिक व्यायाम की उछल-कूद अधिक करता है। इस बौद्धिक व्यायाम के कारण प्रयोगवादी कविता को समझने के लिए पाठक को भी बौद्धिक व्यायाम करना पड़ता है। इस का एक मुख्य कारण प्रयोगवादी कविता गंभीर वैचारिकता को महत्व देना ही है। प्रयोगवादी कवियों का यही दावा है कि आज के वैज्ञानिक युग में जीवन सत्य की अभिव्यक्ति बौद्धिकता से ही संभव है। प्रयोगवादी कविता 'माडर्न आर्ट' की तरह अधिक बौद्धिक प्रयास की अपेक्षा करती है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

अंतरंग की इन घडियों पर छाया डाल दूँ!

अपने व्यक्तित्व को एक निश्चित सांचे में ढाल दूँ!

निजी जो कुछ है अस्वीकृत कर दूँ!

संबोधनों के स्वर्ग को उपसंदृत कर दूँ!

कविता के पठन से आसानी से यह स्पष्ट नहीं होता है कि असल में कवि क्या व्यक्त करना चाहता है।

6.4.4 आधुनिक मूल्य व आधुनिकता बोध :-

प्रयोगवादी कविता आधुनिक मूल्यों के माध्यम से आधुनिक युग बोध कराती है। वैज्ञानिक उन्नति के नाम पर मानवजीवन के नवीन मूल्यों की ओर इशारा करती है। आधुनिकता बोध से संबंधित यातना, कुंठा, घुटन, त्रास, इन्हे, निराशा, अनिश्चितता, जीवन की क्षणिकता, संदेह तथा व्यर्थता का बोध आदि का निरूपण प्रयोगवादी कविता में हुआ है। यह सही है कि वैज्ञानिक-भौतिक वादी दृष्टि ने मनुष्य की आस्था, विश्वास, करुणा और प्रेम जैसी उदात्त व चिंतन भावनाओं को झकजोर दिया है। परिणाम स्वरूप इन के विपरीत मूल्यों का विकास जीवन में अधिक हुआ है। प्रयोगवादी कवि सिर्फ इन्हीं नवीन मूल्यों का अपनी कविता में उद्‌घाटन करता है।

6.4.5 श्रृंगार के अंतर्गत यौन कुंठाओं का वर्णन :-

प्रयोगवादी कविता में श्रृंगार की अतिरंजना देखी जा सकती है। साहित्य में श्रृंगार के जिस पक्ष का निषेध है उस पक्ष को कविता में स्थान देकर प्रयोगवादी कवि ने अपने को घोर श्रृंगारवादी ठदराया है। विशेषकर श्रृंगार की जुगुत्सित कुंठाओं एवं रमित वासनाओं पर वैज्ञानिक बोध का झिल-मिल आवरण डाल कर अपनी श्रृंगारिकता का परिचय दिया है, श्रृंगार का मांसल एवं निषेधपरक शब्दों के साथ वर्णन करके श्रृंगार के अतियथार्थ का परिचय दिया है। इस से रमित वासनाओ एवं यौन कुंठाओं की अभिव्यक्ति तो मिली है। परन्तु प्रेम और श्रृंगार की सहज भावनाओं की अभिव्यक्ति से वे चूक गये हैं।

6.4.6 शिल्प प्रयोग :-

प्रयोगवादी कवियों ने भाषा, शैली और शिल्प के क्षेत्र में नए-नए प्रयोग किए हैं। नवीन भाव बोध, सौंदर्य बोध और जीवन यथार्थ को नवीन ढंग से व्यक्त करने के लिए यह अनिवार्य था। भाषा संबंधी अनेक प्रयोग किए गए हैं। शब्दों के आधार पर ही नहीं प्रश्न, विराम आदि के चिह्नों का भी प्रयोग किया गया।

6.4.6.1 शब्द प्रयोग :-

कविता में शब्द भाव-वाहिका होते हैं। कवि शब्द साधना का शिल्पी होता है। कवि शब्द के प्रचलित अर्थ से संतुष्ट नहीं होता है। जो अर्थ पहले से शब्द में भरा गया है उस के साथ अतिरिक्त अर्थ किस प्रकार व्यक्त किया गया। पुराने अर्थ का निऐकासन करके कैसे नवीन अर्थ को जामाया जाय। कविअपनी शब्द-साधना से चमत्कार उत्पन्न कर पाता है। शब्दों के पहले अर्थ को निकालकर नए अर्थ को भरने की कोशिश करता है। शब्दों के रुढार्थ तथा संकेतार्थ दोनों का प्रतिभावन कवि प्रयोग करता है। प्रयोगवादी कवियों ने ऐसे प्रयोग किए हैं। ध्वन्यात्मक शब्दों का एक प्रयोग द्रष्टव्य है -

झ न न न झ न न न

घ न न न घ न न न

रीप जला

रीप बुझा।

6.4.6.2 बोलचाल की भाषा :-

प्रयोगवादी कवि सरल संप्रेषण के लिए बोलचाल की भाषा पर अधिक विश्वास रखता है। बोलचाल की भाषा का प्रयोग करके वह कविता में क्या प्रयोग करता है। अंग्रेजी, फारसी किसी भी प्रकार के शब्दों से कवि को कोई एतराज नहीं है। जैसे -

प्रभु मोर काठ के

बलदेवो, घोष देवो, न्याय देवो!!

जानी हमीं कवि नहीं

जानी हमीं ऋषि नहीं

हमीं संगीत हारा, पथहारा -

कोटि जन सर्ग पिसगले पूंजी रपे। (नरेश मेहता) उर्दू और अंग्रेजी शब्दों से भरा एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

किया गया तलब

कहा गया चलो कलब

सवाल – जवाब से तुम्हें मतलब ?

गये कुछ रब :

टपकने लगे नैनों के टब। (राजेन्द्र माथुर)

6.4.6.3 टेढे-मेढे रेखाओं का प्रयोग :-

प्रयोगवादी कवियों ने अभिव्यक्ति के लिए शब्दों के साथ-साथ टेढे-मेढे, भाडे-तिरछे चिन्हों को प्रयुक्त किया है। 'तार सप्तक' भूमिका के माध्यम से अज्ञेय जी ने इस का समर्थन भी किया था। उर्दू-अंग्रेजी शब्दों में समन्वित कविता में दृश्य काव्य जैसा तत्व, समीकरण जैसी आकृति देखी जा सकती है।

''प्रेम की ट्रेजडी''

.....

(हाय !)

(नहीं चै न,)

जाग ते ही कट गयी रै न –

(प्रेमयानी इश्क यानी लव !)

'' ! ''

'' ! ! ''

^ + ^

6.4.6.4 अलंकार विधान :-

नये प्रयोग के माहे में प्रयोगवादी काव्यों ने अलंकारों में भी नये प्रयोग करने की कोशिश की है। विशेषकर उपमा अलंकार के प्रयोग में सर्वथा वनीन उपमानों का प्रयोग करने की कोशिश हुई है। डॉ.प्रेमनारायण शुक्ल नामक आलोचक ने प्रयोगवादी कविता में प्रयुक्त नये उपमानों की सूची प्रस्तुत की है। जो निम्नांकित है।

1. पहिले दरजे में लोग, कफन की भांति उजले वस्त्र पहने।
2. मेरे सपने इस तरह टूट गये जैसे भुंजा हुआ पापड़।
3. पूरब दिशि में हड्डी के रंगवाला बादल लेटा है।

6.4.6.5 बिंब विधान :-

शब्दों के माध्यम से चित्रों को उपस्थित करना यानी बिंब प्रयोग करना छायावादी युग में ही शुरु हुआ था। प्रयोगवादी कवियों ने अपनी प्रवृत्तियों के अनुकूल बिंबों को चुना है। बिंबों से उभरे चित्रों में बडा वैविद्य मिलता है। प्रकृति चित्रण संबंधी चित्र कम ही मिलते हैं। अज्ञेयजी से प्रयुक्त चित्र द्रष्टव्य है

फिर गया नभ, उमड़ आयेघव काले।

यूभि के कंपित उरोजों पर झुका सा।

विशद श्वासहत चिरातुर।

छा गया इंद्र का नील वक्ष।

6.4.6.6. व्यंग्य विधान :-

प्रयोगवादी कवियों ने शब्दों के व्यंजनार्थ के 'व्यंग्य' का सृजन करने की कोशिश की है। प्रयोगवादी कविता में व्यंग्य की मात्रा कुछ अधिक ही दिखाई पड़ती है। सर्वेश्वर दयाल सकसेना का एक प्रयोग द्रष्टव्य है –

होटलों, सिनेमा, क्लबों रेस्ट्रावरों में

अपने ये पागल कुत्ते छोडें

ताकि ये

लिपस्टिक लगे हुए विकृत लेहरे

देख कर भौं कें

6.5. प्रयोगवाद के कवि तथा उन के काव्य :-

छायावादोत्तर काल में प्रगतिवाद के समानांतर प्रयोगवाद का विकास हुआ है। सन् 1943 में अज्ञेयजी के संपादन में सात कवियों का एक कविता – संग्रह 'प्रथमतार सप्तक' निकला। इसी से प्रयोगवादी कविता का आरंभ माना जाता है। प्रथम तार सप्तक के अंतर्गत जिन कवियों को शामिल किया गया है वे हैं – 1) श्री अज्ञेय 2) गजानन माधव 3) नेमिचंद्र जैन 4) भरत भूषण अग्रवाल 5) प्रभाकर माचवे 6) गिरिजा कुमार माथुर 7) रामविलास शर्मा। इन सातों का परिचय प्रस्तुत करते हुए अज्ञेयजी

ने लिखा है – ''उन के तो एकत्र होने का कारण ही यदी है कि वे किसी एक स्कूल के नहीं है। किसी मंजिल पर पहुँचे हुए नहीं है। अभी राही हैं – राही नहीं, राहों के अन्तेषी।'' 1951 में प्रकाशित दूसरे तार सप्तक में 1) भवानी शंकर मिश्र 2) शकुंतला माथुर 3) हरिनारायण व्यास 4) शमशेर बहादुर सिंह 5) नरेश मेहता 6) रघुवीर सहाय 7) धर्मवीर भारती शामिल किए गए। इस के अतिरिक्त प्रतीक, दृष्टिकओम, पाटल आदि पत्रिकाओं के माध्यम से अनेक प्रयोगवादी कवि परिचित किए गए। इन में से कुछ प्रमुख कवियों का परिचय निम्नांकित है।

6.5.1 श्री अज्ञेय :-

अज्ञेयजी प्रयोग वादी कविता का जन्मदाता माने जाते हैं। वे बहुर्मुखी प्रतिमा के लेखक हैं। कहानी, उपन्यास निबंध, आलोचना, कविता आदि अनेक विधाओं में उन्होंने रचना की है। अज्ञेय जी का साहित्य उनके जीवन की तरह अधिक वैविध्य पूर्ण है। भग्नशूत, चिंता इत्यालम, दरी घारुपर, क्षण, भर, बावश महेरी, इंद्रधनु रौंदे हुए थे, भरी ओ कसव्म प्रभामया, आंगन के पार आर तथा सुनहले शैबाल उनके प्रमुख काव्यग्रंथ हैं। अज्ञेयजी एक गंभीर कवि और अजग आलोचक भी है। साहित्य, जीवन, कवि और कविता के प्रति उनकी स्पष्ट धारणाएँ रही हैं। काव्य सृजन के बारे में उनका विचार है कि – ''मैं स्वांत: सुखाय नहीं लिखता, अन्य मानवों की भांति अहं मुझ में भी मुखर है और आत्माभिव्यक्ति का महत्व मेरे लिए भी किसी से कम नहीं।'' आरंभिक संग्रहों में कवि अज्ञेय एक प्रयोग धर्मी तथा नवीनता के प्रति आग्रही दिखाई पड़ते हैं। 'आंगन के पार द्वार' में वे एक संतुलित कवि के रूप में नजर आतचे हैं। 'आंगन के पार द्वार' में वे एक संतुलित कवि के रूप में नजर आते हैं। कवि का विश्वास है कि व्यापक सत्य का कोई अंतिम धोर नहीं है। एक आंगन के पार द्वार खुलता है। द्वार के कपार फि आंगन है। 'सुनदले शैवाल' अज्ञेय की प्रकृतिपरक कविताओं का संकलन है। इस में अज्ञेय की मानवादी कविताएं भी संकचित हैं।

6.5.2 गजाननमाधव 'मुक्ति बोध' :-

प्रयोगवादियों में अधिक चर्चित कवि हैं। इनका जन्म 1917 में तथा मृत्यु 1964 में हुई है। डॉ.इंद्रनाथ मदान के अनुसार इन पर टालस्टाय, बर्गसां और मार्कसवाद का प्रभाव है। एक स्वस्थ सामाजिक चेतना, लोकमंगल भावना तथा जीवन के प्रति व्यापक दृष्टिकोम इन की कविताओं में देखा जा सकता है। क्षणवाद के स्थान पर शाश्वत आशावाद, जीवन की विदूपता और क्षण भंगुरता के स्थान पर उसकी सुंदरता और गतिशीलता, निराशा के स्थान पर आस्था व्यक्ति के समित अहं के स्थान पर

समिष्टि की चेतना आदि उनकी कविताओं की कुछ और विशेषताएँ हैं। 'चांद का मुह टेढा है।' इन का बहुत चर्चित काव्य संग्रह है। 'अंधेरे में', 'ब्रहत राक्षस' आदि उनकी लोकप्रिय रचनाएँ हैं।

6.5.3 भारतभूषण अग्रवाल :-

भारत भूषण जी का जन्म 1919 में मथुरा में हुआ। साहित्य अकादमी, आकाशवाणी, भारत सरकार आदि में उन्होंने काम किया। छति के बंधन, जगते रहो, मुक्तिमार्ग, भी अप्रस्तुत मन आदि उनके काव्य संग्रह हैं। इन संग्रहों में सौदंर्य, प्रेम और विरह की अनुभूतियों के सत्य साथ आधुनिक युग की सुलभ प्रवृत्तियाँ–निराशा तथा पीडा की अभिव्यक्ति हुई है। 'जागते रहो' कवि ने मार्कसवाद का समर्थन किया। 'मुक्तिमार्ग' के कवि द्वन्द्व से पीडित हैं। कविता के विषय में भारत भूषण का लक्ष्य सर्व था उदात्त रहा है। उनका विचार है कि चले ही उनकी कविताएँ महान नहीं है किन्तु उन में मन की छटपटा हर अवश्य है।

6.5.4 प्रभाकर माचवे :-

माचवे जी बन्दु मुर्खाप्रतिमा के लेखक हैं। उन्होंने आलोचना, निबंध, कहानी, उपन्यास तथा व्यंग्य भी लिखा है। संपादक और अनुवादक भी रहे हैं। तारसप्तक में इन की कविताएँ प्रकाशित हैं। इन के 'स्वप्न यंग' तथा 'अनुक्षण' शीर्षक से काव्य–संग्रह प्रकाशित हुए हैं।

6.5.5 गिरिजा कुमार माथुर :-

माथुर जी का जन्म सन् 1919 में सध्य प्रदेश के असोक नगर में हुआ। इन की प्रारंभिक रचनाए छायावादी प्रवृत्ति की थीं। बाद में वे नवी कविता के चर्चित कवि बने हैं। इन की कविताओं में निराशा, असफलता तथा विषाद की छाया संकित है। मंजरि, नाश और निर्माण, धूप के धान, शिला पंख चमकी ले आदि दन के काव्य संग्रह हैं। (जो बंध नहीं सक, भीतरी नहीं की यात्रा, साक्षी रहे वर्तमान छाया मतलूना मन) माथुर की कविताएँ नवबोध की है। माथुरज का विचार है – '' पूर्ववर्ती मूल्य सूखे, जीर्ण छिलकों की तरह झरक गिर गये हैं और विज्ञान कालीन नए परिधानों का आमासभी नहीं हैं। कपास में फूल आने में भी देर है। आदमी आत्मा से इस समय एकदम नंगा है।''

6.5. 6 शकुंतला माधुर :-

तारसप्तक में प्रकाशित कविताओं के अतिरिक्त 'चांदनी का चूनद' नामक इन का एक और संग्रह प्रकाशित हुआ है। कवयित्री सवभाव से अत्यंत संकोचशील है और अपने आप को कवि मानने में संकोच करती है। इन्हों ने जीवन के साधारण दृश्यों को अंकित का प्रयास किया है।

6.5.7 धर्मवीर भारती :-

प्रयोगवादी कवियों में भारती अधिक चर्चित हैं। पद्मश्री के पुरस्कृत भारती जी के काव्य में प्रयोग से ज्यादा नई कविता के विकास की कई मंजिले हैं और उस में आज के युग की नई चेतना है। भारती जी का विचार है कि जीवन जी ने योग्य है, उसे योगना है, इस से भागना नहीं। ठंडा लोहा, सातगीत वर्ज तथा कनुप्रिया, अंधा युग आदि इन की उल्लेखनीय रचनाएँ हैं। 'कनुप्रिया' धर्मवीर भारती की एक महान कृति है। इस में राधा और कृष्आ के पौराणिक प्रेमाख्यान को वर्तमान युग सापेक्ष एक नवीन संदर्भ में प्रस्तुत किया गया है। इस में पांच अध्याय हैं। इस में कवि ने राधा के अंतर्द्वन्द्व के माध्यम से मानव जीवन की शाश्वत समस्याओं – युद्धा व्यक्ति और समाज, नर–नारी के जीवन के चिर संबंध तथा प्रणय लक्ष्य आदि को एक नया रूप दिया है। उनके 'अंधायुग' में महाभारत युद्ध भी अनेक समस्याओं का चित्रण है। युद्ध के बाद के दुष्परिणामों के माध्यम से भारती जी ने युद्ध विरोधी दर्शन का समर्थन किया है।

- डॉ. आई. एन. चन्द्रशेखर रेड्डी

7. नई कविता एवं समकालीन कविता-प्रतिनिधि कवि एवं काव्य

7.0 प्रस्तावना :-

प्रयोगवादी कविता जो उत्पत्त, दमित, भावनाओं की तेज धारा थी कालांतर में अपनी गति को खोकर शांत प्रवाह में परिणत हो गयी। सन् 1954 के बाद लिखी गयी इस कविता को स्वयं कवियों ने तथा आलोचकों ने 'नयी कविता' के नाम से अभीहित किया है। सन् 1954 में डॉ.जगदीश गुप्त और राम स्वरूप चतुर्वेदी के संपादन में प्रयोगवादी कवियों का अर्धवार्षिक संग्रह – 'कई कविता' के नाम से प्रकाशित हो ने लगा। लगभग इसी समय से प्रयोगवादी कविता का नाम 'नई कविता' पड़ गया। कई आलोचक यह भी मानते हैं कि नयी कविता अलग से कोई काव्यांदोलन नहीं है बल्कि प्रयोगवाद का ही अगला संस्करण है। इस रूप में ये दोनों एक ही आंदोलन की दो अवस्थाएं मानी जा सकती हैं। प्रयोगवाद के अधिकांश कवि 'नई कविता' के कवि के रूप में भी दर्शन देते हैं। फिर भी प्रयोगवाद और नयी कविता एक नहीं है। दोनों में कश्य और रूप का स्पष्ट अंतर है। परन्तु नई कविता के शिल्प विधान में प्रयोगवाद के तत्व अवश्य ही आए हैं।

प्रयोगवाद के संस्थापक अज्ञेय जी ने ही नये सिरे से लिखी जानेवाली कविताओं के लिए 'नयी कविता' नाम सुझाया है। उन्होंने लिखा है – ''यह नैतिक दृष्टि से नैतिकता से संबंधित, नए मूल्यों को प्यास, मूलभूत संवेदनाओं का गवेषणात्मक परीक्षण, मूल्यों के स्रोतों की खोज को प्रयोग कहा जा सकता है, तो नया आंदोलन भी इस नाम के लिए उपयुक्त है। सामान्य रूप से इस संप्रदाय के कवि अपनी सर्जना को 'नई कविता' कहलाना पसंद करते हैं।'' नयी कविता के नाम करण की एक विशेषण यह भी है कि छायावाद, प्रगतिवाद तथा प्रयोगवाद की तरह 'नयी कविता' 'वाद' शब्द से मुक्त है। कुछ सीमा तक यह सही भी है। डॉ.शंभुनाथ सिंह ने प्रयोगवाद और नयी कविता का अंतर स्पष्ट करते हुए लिखा है – ''नई कविता नाम प्रचलित हो जाने के बावजूद बहुत से लोग प्रयोगवाद और नई कविता में कोई भेद नहीं मानते, क्योंकि बाह्यरुपाकार की दृष्टि से दोनों में विशेष अंतर नहीं है। किंतु आंतरिक तत्वों पर अभिव्यंजना पद्धति का विश्लेषण करने पर दोनों में बहुत अधिक अंतर दिखलाई पड़ता है।'' इस संदर्भ में 'नयी कविता' के बारे में गिरिजा कुमार माथुर के विचार भी उल्लेखन हैं। उन्होंने लिखा है – ''मौजूदा कविता के अंतर्गत वह दोनों प्रकार की कविताएँ कहीं जाती रही है जिन में एकओर या तो शैली, शिल्प और माध्यमों के प्रयोग होते रहे हैं या दूसरी ओर समाजोन्मुखता पर बल दिया जा रहा है। लेकिन नई कविता हम उसे मानते हैं, जिस में इन दोनों के स्वस्थ तत्वों का संतुलन और समन्वय

है। यह नई कविता, नये शिल्प और उपमानों के प्रयोग के साथ समाजोन्मुख और मानवता को एक साथ अंजुलि में भरे भविष्य की ओर अग्रसर हो रही है।'' इस परिभाषा के आधार पर नयी कविता का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत हो जाता है। नयी कविता तो नयी है जो पुरानी परंपरा से विलग होकर नये विकास की सूचना देती है। नये विकास बौद्धिक चेतना, भाव वस्तु, अभिव्यंजना-शैली प्रत्येक क्षेत्र में देखे जा सकते हैं।

7.1 नयीकविता का वैचारिक पक्ष :-

नयी कविता में मानव को बडा स्थान दिया गया है। आधुनिक युग में मानव को अनेक अंतर्बाह्य संघर्षों को झेलना पड़ा है। इस के बीच मानव के रूप-कुरुप विकसित हुए हैं, वस्तुत: वे ही नयी कविता की वस्तु के अंतर्गत है। नयी कविता में मानव के साथ उसका परिवेश भी प्रधान होने लगा है। नई कविता मानव और मानवता में पूर्ण विश्वास रखती हैं। मानव में ही उसका विश्वास है महा मानव में नहीं। मानव का जो अपमान विज्ञान की अंधी प्रगति, मशीन की निरंकुशता और युद्धों ने किया है, वह इस कवि को असह्य है। वह मानव को फिर से उस का खोया हुआ सम्मान दिलाना चाहती है।

नयी कविता में 'क्षण' के मूल्य को हांका गया है। नया कवि यह मानकर चलता है कि जीवन के कुछ स्फीत और महत्वपूर्ण क्षण इस प्रकार के हो सकते है कि इन पर युग निछावर किए जा सकते हैं। अज्ञेय जी जैसे कवियों ने 'क्षणवाद' संबंधी अनुभूतियों का समर्थन किया है। उनकी दृष्टि में क्षणवाद में क्षणिकता का आग्रह नहीं है, क्षण का आग्रह है। क्षण के आग्रह में भी अनुभूति की प्राथमिकता का ही आग्रह समाविष्ट है। यूरोप के साहित्य में अस्तित्ववादी विचार धारा को कारण मृत्यु-साक्षात्कार के क्षण का वर्णन अधिक है। 'नयी कविता' में ऐसा नहीं है।

'नयी कविता' में लघु मानव की प्रतिष्ठा हुई है। महत् का युग एक प्रकार से समाप्त हो गया। सत्य किसी महामानव किसी बडी घटना और किसी बडे प्रसंग में विहित नहीं है। वह तो आज क्षण क्षण में, सैकड़ों छोटे खंडों में बिखरा है। इन खंडों को एकत्र संयोजित करने से ही सत्य का वास्तविक रूप खडा होता है। 'नई कविता' में समीक्षण, सभी खंडित सत्य अपने समवेत स्तरों में मुखरित हैं। मनोविज्ञान की खोजों ने हमारे भीतर के न जाने कितने रुपों का उद्‌घाटन किया है। इन वर्णन शोधों ने आज के कवि की दृष्टि को दिशा प्रदान की है। 'नई कविता' में व्यक्तित्व युक्त व्यक्ति की प्रतिष्ठा है। व्यक्ति की विवशता भी नए कवियों को मान्य है। संक्षेप में 'नयी कविता' का यही वैचारिक पक्ष है। इस में मुख्य तया निराशा, पलायन, पराजय, वासना, कुंठा, व्यक्ति स्वातंत्र्य, अनास्था, क्षणवादिता, बौद्धिकता आदि की अभिव्यक्ति हुई है।

7.2 नयी कविता की प्रवृत्तिगत विशेषताएँ :-

प्रयोगवादी कविता की विशेषताओं में अपने में संजोयी हुई 'नयी कविता' उससे अलग होकर नयी प्रवृत्तियों की वाहिका बनी है। उस की निम्न प्रवृत्तिगत विशेषताएँ प्रयोगवाद से उसे अलगाती हैं तथा प्रयोगवाद से विकसित रूप को रेखांकित करती है।

7.2.1 वेदना और निराशा :-

वेदना और निराशा 'नयी कविता' की प्रमुख प्रवृत्ति के रूप में विकसित हुई हैं। यह छायावादी कवियों की वेदना और निराशा से भिन्न है। छायावादी कवियों की वेदना और निराशा वैयक्तिक भी तथा प्रणय जन्म थी। परन्तु इन की वेदना और निराश परिवेश जन्म है। वह भी युद्ध की विभीषिकाओं से विकसित हैं। सामाजिक, सांस्कृतिक शोष से शिकार होकर स्वतंत्रता की मांग और शून्य हृदयों की लिखों के रूप विकसित वेदना और निराशा है। वेदना और निराशा वर्तमान के असंतोष के कारण भी उत्पन्न होती है। अतृप्त आकांक्षाओं और अभावों से भी वेदना मुखरित होती है। कवि वेदना और पीडा में शुख भोगने की इच्छा प्रकट करता है। यह उसकी निराशा है –

वहन करो
ओ मन। वहन करो पीड़ा।
यह अंकुर है उस विशाल वेदना की,
तुम में थी जन्म जात
आत्मज है।
स्नेहकरो
आंचल से ढंक कर रक्षण दो।

7.2.2. आस्था और विश्वास :-

नयी कविता में आश्ता और विश्वास के स्वर भी सुनाई पड़ते हैं। निराशाजन्य भावनाओं, युद्ध की विभीषिकाओं से लडने की ताकत कवि में है। यह विश्वास अपने भुज बल से प्राप्त है। इसी भुज बल के योग से उन्होंने न जाने कितने संघर्षों, कटुता, विषमता, रिक्तता, घुटन आदि का सामना किया। उसका विश्वास चिर दृढ है। टूटा नहीं है –

और क्यों कि हम ने युग बल से
अपना मार्ग प्रशस्त बनाया
दुखों से कर युद्ध
परिस्थितियों से लड़कर
और जूझ कर भारी से भारी अंधड से
अपना ऊंचा सिर न झुका कर
केवल मिथ्या आदर्शों से नहीं
नहीं कोटी रंगीन कल्पनाओं से
किन्तु जिंदगी की मिठास का रस ले ने को
हम ने कटुता से खुल कर संघर्ष किया है।

(गिरिजा कुमार माथुर)

7.2.3 दुरुहता :-

नयी कविता में कहीं-कहीं संप्रेषणियता जटिल हो गयी है। सैद्धांतिक पक्ष गंभीर होने के कारण ही ऐसा हुआ है। इस के अतिरिक्त भाव तत्व और काव्यानुभूति के बीच राज गम्य के बजाय बुद्धिगत संबंध अधिक होने के कारण तथा काव्य के उपकरणों एवं भाषा के एकांत वैयक्तिक और अनर्गल प्रयोग से भी 'नयी कविता' में दुरूहता आगयी है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

देखा
रुप -
नामहन
एकज्योति
अस्मिताश्यता की
ज्वाला
अपराजित, अनावृता।

7.2.4 अतिनग्न यथार्थवाद :-

नयी कविता में अतृप्त वासनाओं एवं यौन विकृतियों का यथार्थ रूप में चित्रण हुआ है। कहीं यह जुगुप्सा पैदा करता है यौन वर्जनायों के साथ कवि ने कोई विषेधमूलक दृष्टि नहीं अपनायी है।

फैल रही है परिधि स्तनों की
हरुरते अभी जवान है।
आओ दोस्तो और साथियों
आओ मेरे झंडे के नीचे
उत्सव करें।

- डॉ. आई. एन. चन्द्रशेखर रेड्डी

❋ ❋ ❋

आ. आधुनिक काल : गद्य साहित्य का विकास

उद्देश्य :

हिन्दी की अन्य गद्य विधाओं के समान हिन्दी निबन्ध का विकास भी भारतेन्दु युग से प्रारम्भ हुआ। इस काल में भारतीय समाज में एक नई चेतना का विकास हो रहा था। पढे-लिखे लोग अपने विचारों को स्वच्छन्दतापूर्वक एक निजीपन लिए हुए ढंग से स्वतंत्र रूप से व्यक्त करने लगे थे। इस समय तक हिन्दी की अनेक पीटीआर-पत्रिकाएं होने लगी थीं , जीनामे हरिचन्द्र चंद्रिका , उदंत मार्तण्ड, ब्राह्मण , प्रदीप , बनारस अखबार , सरसुधानिधि आदि महत्वपूर्ण थीं। इन समाचार पत्रों एवं पत्रिकाओं में विविध विषयों पर जो विचार व्यक्त किए जाते थे , उन्हें ही हिन्दी निबन्ध का प्रारम्भिक रूप कहा जा सकता है। निबन्ध इन पत्र-पत्रिकाओं से सीधे जुड़े हुए थे। लेखकों के समक्ष अनेक विषय थे । वे सामाजिक , राजनीतिक, सामाजिक ,धार्मिक विषयों पर प्रायः निबन्धों के माध्यम से प्रकाश डालते रहते थे। स्पष्ट रूप से यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि हिन्दी के प्रारम्भिक निबन्ध पत्रकारिता से सीधे जुड़े हुए थे।

8. निबन्ध

रूपरेखा : 8.1 प्रस्तावना

8.2 आधुनिक काल गद्य साहित्य के उद्भव और विकास

8.3 निबंध विधा उद्भव और विकास

1. भारतेन्दु युग (1873ई॰ -1900ई॰)
2. द्विवेदी तुग (1900ई॰-1920 ई॰)
3. शुक्ल युग (1920ई॰-1940 ई॰)
4. शुक्लोत्तर युग (1940ई॰ के उपरान्त)

8.4 हिन्दी निबंधों के प्रकार

1. विचारात्मक निबन्ध
2. भावात्मक निबन्ध
3. वर्णनात्मक निबन्ध
4. विवरणात्मक निबन्ध
5. आत्मपरक निबन्ध

8.5 सारांश

8.6 बोध प्रश्न

8.7 संदर्भ ग्रंथ सूचि

8.1 प्रस्तावना :

मूलतः 'निबन्ध' शब्द का अर्थ , 'रोकना' बाँधना है तथा इसके पर्यायवाची के रूप में 'लेख', 'संदर्भ', 'प्रस्ताव' आदि का उल्लेख किया जाता है ; आधुनिक साहित्य में 'निबन्ध' कि विधा का विकास भी बहुत कुछ पाश्चात्य साहित्य की प्रेरणा से हुआ है , अतः इसके स्वरूप को स्पष्ट रूप में हृदयंगम करने केलिए पाश्चात्य विद्वानों द्वारा प्रस्तुत की गई विभिन्न परिभाषाओं पर दृष्टिपात कर लेना उपयोगी सिद्ध होगा। आधुनिक निबन्ध के जन्मदाता मौनतेन महोदय का कथन है – निबन्ध विचारों , उद्धरणों और कथाओं का मिश्रण है'।

8.2 आधुनिक काल : गद्य साहित्य के उद्भव और विकास

गद्य साहित्य : एक ऐसी रचना जो छंद, ताल, लय एवं तुकबंदी से मुक्त तथा विचारपूर्ण हो, उसे गद्य कहते हैं। गद्य शब्द गद धातु के साथ यत प्रत्यय जोड़ने से बना है। गद का अर्थ होता है बोलना, बतलाना या कहना। सामान्यतः दैनिक जीवन में उपयोग होनेवाली बोलचाल की भाषा में गद्य का ही प्रयोग किया जाता है।

आधुनिक काल से पूर्व हिन्दी में गद्य-साहित्य इतनी न्यून मात्रा तथा अविकसित दशा में मिलता है कि वह प्रायः नगण्य-सा समझा आता है। कुछ विव्दान मानते हैं कि प्रत्येक भाषा के साहित्य का आरम्भ ही पद्य से होता है, अतः हिन्दी में ही ऐसा होना स्वाभाविक है। कुछ विचारकों के मतानुसार संस्कृत में पद्य का ही महत्व था तथा परवर्ती भारतीय भाषाओं ने भी संस्कृत के इसी आदर्श का पालन किया, अतः हिन्दी में भी गद्य का विकास नहीं हो सका। लेकिन यह कोई सर्वमान्य सिद्धांत नहीं है कि प्रत्येक साहित्य का आरंभ पद्य से ही हो। यदि थोड़ी देर के लिए इसे स्वीकार भी कर लिया जाय, तो इसके अनुसार हिन्दी-साहित्य के प्रारम्भिक काल में भी गद्य का अभाव रहना चाहिए था, मध्यकाल पर यह लागू नहीं होता। इसी प्रकार यह मानना भी ठीक नहीं कि संस्कृत में काव्य संज्ञा का प्रयोग गद्य और पद्य दोनों के लिए होता था तथा गद्य को न केवल काव्य का उत्कृष्ट रूप माना जाता था। दूसरे, संस्कृत में अनेक रूपों-नाटक, कथा, आख्यायिका आदि-की अत्यंत अमृद्ध एवं सुविकसित परम्परा थी। अतः हिन्दी के प्रारम्भिक युगों में गद्य का विकास न होने के पीछे 'संस्कृत के आदर्शों का पालन' करना नहीं, अपितु उन्हें त्याग देना ही कारण है। वस्तुतः हिन्दी से पूर्व अपभ्रंश में ही संस्कृत की गद्य परम्परा बहिष्कृत एवं लुप्त हो चुकी थी। जिन काव्य रूपों-कथा, आख्यायिका, चरित आदि में संस्कृत के सहित्यकारों ने गद्य का प्रयोग किया था, उन्हीं में अपभ्रंश के कवियों व्दारा पद्य प्रयुक्त हुआ है।

हिन्दी गद्य की स्थिति : आधुनिक काल से पूर्व हिन्दी गद्य प्रायः अविकसित रहा, किन्तु इसका यह भी तात्पर्य नहीं है कि उसका सर्वथा अभाव रहा है। वस्तुतः ऐसा नहीं है। पूर्ववर्ती युग के हिन्दी गद्य को भाषा की दृष्टि से मुख्यतः चार वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। (1) राजस्थानी गद्य (2) मैथिली गद्य (3) ब्रज-भाषा का गद्य और (4) खड़ी बोली का गद्य।

1 **राजस्थानी गद्य** : राजस्थानी की प्राचीनतम उपलब्ध गद्य-रचनाएँ तेरहवीं शताब्दी की हैं , जिनमें 'आराधना', 'अतिचार', बाल शिक्षा उल्लेखनीय हैं। राजस्थानी गद्य रचना का अधिकांश गद्य-साहित्य या तो जेन-मंदिरों के आश्रय में रचित है या राजपूत नरेशों के आश्रय में अतः दोनों प्रकार के आश्रय में इसे पर्याप्त संरक्षण प्राप्त हुआ है धर्माश्रय में रचित गद्य-साहित्य सर्वत्र ही धर्म से प्रेरित नहीं है , अनेक जैन मुनियों ने शिक्षा देने के साथ-साथ कलात्मक सृष्टि के लक्ष्य से भी गद्य-रचनाएँ प्रस्तुत की हैं , अतः उनमें पर्याप्त साहित्यिकता मिलती है।

राजस्थानी गद्य-रचनाओं की भाषा-शैली के संबन्ध में यह बात ध्यान देने की है कि उसमें विभिन्न रचनाओं में काल-भेद एवं स्थान-भेद के अनुसार विभिन्न प्रकार की भाषाएँ प्रयुक्त हुई हैं , अतः राजस्थानी गद्य के तेरहवीं शती से लेकर अब तक के विकासक्रम का अध्ययन अविच्छिन्न रूप से किया जा सकता है। विषय-वस्तु की दृष्टि से भी राजस्थानी गद्य-साहित्य का क्षेत्र पर्याप्त व्यापक है। उसमें धर्म , राजनीति , लोक-वार्ता आदि अनेक विषयों का समावेश हुआ है।

2 **मैथिली गद्य** : राजस्थानी की भाँति-मैथिली भाषा में भी गद्य-साहित्य की दीर्घ परम्परा उपलब्ध होती है। इसका प्राचीनतम उपलब्ध गद्य ग्रंथ ज्योतिरीश्वर कृत 'वर्ण रत्नाकर' है , जिसका रचना-काल 1324 ई॰ माना जाता है। आगे

चलकर प्रसिद्ध गीतिकार विद्यापति ठाकुर ने अपनी दो गद्य रचनाओं – 'कीर्तिलता' एवं 'किर्ति पताका' – व्दारा ज्योतिरीश्वर की गद्य परम्परा को आगे बढ़ाया। 'कीर्तिलता' गद्य-पद्य मिश्रित ऐतिहासिक काव्य है , जिसमें कवि ने अपने आश्रयदाता कीर्तिसिंह के युद्ध की एक घटना का विवरण आकर्षक शैली में प्रस्तुत किया है।

विद्यापति की दूसरी रचना 'किर्ति पताका' खंडित एवं अशुद्ध रूप में उपलब्ध है। इसमें महाराजा शिवसिंह की वीरता का आख्यान करते हुए युद्ध की घटना वर्णित की गई है। विद्यापति के अनंतर मैथिली गद्य की कोई महत्वपूर्ण साहित्यक रचना उपलब्ध नहीं होती। मिथिला , नेपाल एवं आसाम में रचित नाटकों में अवश्य मैथिली गद्य का प्रयोग मिलता है।

3 ब्रज-भाषा का गद्य : ब्रज-भाषा के गद्य-साहित्य को मुख्यत: तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है –

(क) मौलिक-ग्रंथ (ख) टीकाओं के रूप में लिखित रचनाएँ और (ग) अनुदिता ग्रन्थ।

मौलिक ग्रन्थ : इस वर्ग में सबसे पुरानी रचना गोरखनाथ कृत 'गोरखसार' समझी जाती रही है तथा इसे कुछ विव्दान सं॰ 1400 के आस-पास की रचित मानते रहे हैं , किन्तु अब यह रचना अप्रामाणिक सिद्ध हो गई है। व्रजा भाषा गद्य के विकास में सर्वाधिक योग देने का श्रेय पुष्टि सम्प्रदाय के भक्त-लेखकों को है , जिन्होंने अपने सम्प्रदाय के विभिन्न व्यक्तियों को लेकर विपुल गद्य-साहित्य की सृष्टि की। पुष्टि-सम्प्रदाय के विभिन्न आचार्यों एवं भक्तों व्दारा प्रस्तुत गद्य-साहित्य की एक सूची-मात्र प्रस्तुत की जाती है।

1. गोस्वामी विट्ठलनाथ व्दारा रचित ग्रन्थ – 'श्रृंगार रस-मंडल', 'यमुनाष्टक','नवरत्न सटीक'आदि।
2. चतुर्भुजदास व्दारा रचित 'षट ऋतु की वार्ता।
3. गोकुलनाथ व्दारा रचित 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता', 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' आदि।
4. गोस्वामी हरिराय जी व्दारा रचित ग्रन्य _'श्री आचार्य महाप्रभु की व्दादस निज वार्ता', श्री आचार्या महाप्रभु के सेवक 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता', 'गोसाई जी के स्वरूप के चिंतन का भाव', 'कृष्णावतार स्वरूप', 'सातों स्वरूपों की भावना', आदि।
5. गोविंदादस ब्राह्मण कृत 'वार्ता'।
6. ब्रज भूषण कृत ग्रंथ- 'नित्य-विनोद', 'नीति-विनोद', आदि प्रमुख है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वल्लभा-संप्रदाय के अनुयायियों ने शताधिक गद्य रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। वल्लभ-सम्प्रदाय के अतिरिक्त अन्य संप्रदायों के कुछ भक्तों ने भी कतिपय गद्य या गद्य-पद्य मिश्रित रचनाएँ प्रस्तुत की हैं , जिनमें नाभदास का 'अष्टयाम', ललित किशोर और ललित मोहिनी की 'श्री स्वामीजी महाराज की वचनिका', यशवंतसिंह की 'सिद्धान्त-बोध' आदि उल्लेखनीय हैं।

वस्तुतः विभिन्न धर्म-संप्रदायों व्दारा प्रस्तुत इस गद्य-साहित्य का महत्व या तो तत्कालीन मनः क्षितियों एवं परिस्थितियों के अध्ययन की दृष्टि से है या भाषा के नमूनों की दृष्टि से , विशुद्ध साहित्यक दृष्टि से इनका महत्व नगण्य है।

कुछ लेखकों ने काव्य-शास्त्र , छंद-शास्त्र तथा अन्य शास्त्रीय विषयों पर विचार करने के उद्देश्य से भी ब्रजभाषा गद्यात्मक रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। इनमें ये उल्लेखनीय हैं – बनारसी दस की 'बनारसी विलास' सुखदेव सिंह मिश्र का 'पिंगल ग्रंथ' , बेनी कवि का 'टिकैतराय प्रकाश', प्रियादास ककृत 'सेवक-चरित्र' लल्लूलाल कृत राजनीति', और ,माधो विलास बख्शी सुमन सिंह का पिंगल-भूषण आदि।

ब्रज भाषा-गद्य के अन्य मौलिक ग्रंथों में व्यास का 'शकुन-विचार', वैष्णवदास का 'भक्त माल प्रसंग', मीनराज प्रधान का 'हरतालिका कथा', कवि महेश का 'हम्मीर रासो' आदि उल्लेखनीय हैं। ये सभी अठारहवीं शती में रचित हैं तथा इनमें से अनेक गद्य-पद्य मिश्रित हैं।

टीका साहित्य : विभिन्न साहित्यक , धार्मिक तथा अन्य प्रकार के ग्रंथों की टिकाओं के रूप में लिखित गद्य-रचनाएँ ब्रज भाषा में बड़ी भारी संख्या में मिलती हैं। इनमें से प्रमुख रचनाओं की यहाँ नामावली मात्र प्रस्तुत की जाती है – (1)'शिक्षा ग्रंथ की टीका ; टीकाकार-श्री गोपेश्वर (2) 'हीत चौरासी की टीका', प्रेमदास कृत। (3) 'भुवन दीपिका' सटीक ; लेखक अज्ञात' (4) 'रस-रहस्य' सटीक ; कुलपति मिश्र ;(5) 'भागवत की टीका'; कृष्णदेव माथुर ;17वीं शती। (6) 'बिहारी सतसई टीका ; राधाकृष्ण चौबे ;17वीं शती आदि।

टिकाकारों का लक्ष्य मूल विषय की व्याख्या करना मात्रा था, किन्तु इसमें उन्हें प्रायः सफलता नहीं मिली है। अधिकांश की शैली अस्पष्ट , प्रवाह-शून्य एवं शिथिल है।

अनूदित ग्रंथ : ब्रज-भाषा-गद्य में संस्कृत तथा अन्य भाषाओं से अनूदित ग्रंथ भी बहुत बड़ी सम्हक्य में उपलब्ध हिते हैं। (1) 'नासकेतु पुराण' नंददास , (2) 'मार्कण्डेय पुराण', दामोदर दास , (3) 'भाषामृत (श्रीमद्भगवद गीता का अनुवाद) (4) श्रीमद्भगवद गीता का अनुवाद ; आनन्द राय आदि। इन अनुवाद-ग्रंथों की भाषा-शैली पूर्वोक्त टिकाओं की अपेक्षा अधिक सशक्त एवं प्रवाहपूर्ण है ; अस्तु , ब्रज – भाषा में गद्य-साहित्य की मात्रा पर्याप्त है तथा उसका विषय-क्षेत्र भी विविध है , किन्तु साहित्यकाता एवं कलात्मकता की दृष्टि से वह उच्च कोटी का नहीं। उसकी रचना धार्मिक , दार्शनिक एवं शास्त्रीय ग्रंथों के विचारों को समझने की दृष्टि से ही हुई है , लालित्य की प्रेरणा उसके मूल में प्रायः दृष्टिगोचर नहीं होती।

4 खड़ीबोली का प्रारम्भिक गद्य-दक्खिनी का गद्य : खड़ी बोली के साहित्य का उद्भव एवं विकास प्रारम्भ में दक्षिण के सहित्यकारों ने अपनी भाषा को 'हिन्दी', 'दक्खिनी' 'देहलवी', 'जबान हिंदुस्तान' आदि कई नामों से पुकारा है , किन्तु वस्तुतः वह4 खड़ीबोली का ही प्रारम्भिक रूप है। दक्षिण के गद्य लेखकों में ख्वाजा बंदे नवाज गेसूदराज , शाह मीराँजी शम्सुल उश्शाक, शाह बुरहानुद्दीन जानम, अमीनुद्दीन आला, मुल्ला वजही आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

उत्तरी भारत में खड़ीबोली गद्य का विकास : उत्तरी भारत में खड़ीबोली गद्य की परम्परा का सूत्रपात सत्रहवीं अठारहवीं शती से होता है। उत्तरी भारत की परम्परा के विकास में दक्षिणी परम्परा ने कितना योग दिया है , इसका स्पष्टीकरण अभी तक नहीं हो सका ; किन्तु उत्तर एवं दक्षिण दोनों पर ही मुगल शासकों का अधिकार होने के कारण यह स्वीकार किया जा सकता है कि दोनों में राजनीतिक संबन्धों के साथ-साथ साहित्यिक संपर्क भी रहा होगा तथा इस तरह इनमें साहित्यिक परंपराओं का भी आदान-प्रदान होना सम्भव है।

उत्तरी भारत की खड़ीबोली की प्रचीनतम गद्य रचना के रूप में अब तक प्रसिद्ध कवि गंग की 'चंद छंद वरनन की महिमा' (रचनाकाल सत्रहवीं शती) का उल्लेख किया जाता है। अठारहवीं शताब्दी की दो महत्वपूर्ण गद्य-रचनाएँ 'भाषायोगवाशिष्ठ' एवं 'पद्म पुराण' है। उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में हिन्दी गद्य के क्षेत्र में एकाएक चार

उच्चकोटि के गद्य लेखक अवतरित हुए। मुंशी सदासुखलाल' इंशा अल्ला खाँ, लल्लुलाल और सदल मिश्र। मुंशी सदासुखलाल दिल्ली के निवासी थे तथा उर्दू-फारसी के भी विव्दान एवं साहित्यकार थे। खड़ीबोली में उन्होंने 'विष्णु पुराण' के आधार पर 'सुखसागार' नामक ग्रंथ का निर्माण किया , जो शैली की दुष्टि से प्रौढ़ है।

इंशा अल्ला खाँ: उर्दू के प्रसिद्ध शायर थे , किन्तु इन्होंने अपनी 'उदयभान चरित' या 'रानी केतकी की कहानी' की रचना में विशुद्ध 'हिंदवी' के प्रयोग का प्रयास किया है।

लल्लूलाल : आगरे के रहने वाले गुजराती ब्राह्मण थे तथा इन्हें संस्कृत के विशेष ज्ञान के साथ उर्दू का भी थोड़ा-बहुत ज्ञान था। इनके द्वारा रचित ग्रंथों की सूची इसी प्रकार है – 'सिंहासन बत्तीसी' 'बैताल पच्चीस' 'शकुंतला नाटक' 'माधोनल' 'राजनीति ' प्रेमसागर' 'लतायफ-इ-हिन्दी' 'ब्रजभाषा-व्याकरण' आदि इनसे रचे गए गद्य रचनाएँ हैं।

सदल मिश्र : मूलतः बिहारी-निवासी थे 'चंद्रावती' या 'नासिकेतोपाख्यान' और 'राम चरित्र'। दोनों रचनाएँ क्रमशः संस्कृत की नचिकेता कथा एवं 'अध्यात्म रामायण' पर आधारित है।

ईसाई-प्रचारकों का योग-दान : ईसाई-प्रचारकों ने भी हिन्दी गद्य के विकास में पर्याप्त योग दिया है। उन्होंने अपने मत का प्रचार करने के लिये अपने धार्मिक ग्रंथों के अनुवाद , व्याख्यान लेख तथा पाठ्य-पुस्तकें हिन्दी में प्रस्तुत की, जिनसे अप्रत्यक्ष में हिन्दी-गद्य की सेवा हुई। सन 1798 ई॰ में कलकत्ते के समीप 15 मिल दूर पर श्रीरामपुर में ईसाई प्रचारकों का एक सुदृढ केंद्र स्थापित हुआ। आगे चलकर इस संस्था ने अपना मुद्रण-यंत्र भी स्थापित कर लिया, जिससे अनेक पुस्तकें तथा पीटीआर-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुई। इसके द्वारा कलकत्ता और आगरा में 'स्कूल-बुक-सोसायटी' की भी स्थापना हुई जिसके दावरा विभिन्न विषयों पर पाठ्य-पुस्तकें तैयार की गई। विदेशी पादरियों ने इस कार्य में अनेक भारतीय लेखकों का भी सहयोग प्राप्त किया तथा उन्हें गद्य-लेखन में प्रवृत्त किया। इन संस्थाओं के द्वारा 1838 से 1857 ई॰ के बीच मेम विभिन्न विषयों पर शताधिक पुस्तकें प्रकाशित हुई। अंकगणित , ज्यामिति , इतिहास , भूगोल , अर्थ-शास्त्र , समाज-शास्त्र , विज्ञान , चिकित्सा राजनीति , कृति-कर्म , ग्राम-शासन , शिक्षा ; यात्रा, नीति , धर्म , ज्योतिष , दर्शन , अंग्रेजी राज्य व्याकरण कोश आदि सभी प्रमुख विषयों पर इनके द्वारा सरल एवं लोकोपयोगी पुस्तकें प्रकाशित हुई। अस्तु , ईसाई-प्रचारकों ने गद्य-शैली के विकास की दृष्टि से भले ही विशेष सफलता प्राप्त न की हो , किन्तु हिन्दी-गद्य को विषय-विस्तार प्रदान करने एवं गद्य लेखन के प्रयासों को प्रोस्तहित करने की दृष्टि से महत्वपूर्ण कार्य किया।

महावीर प्रसाद द्विवेदी एवं उनके सहयोगी : हिन्दी गद्य के क्षेत्र में नयी गति महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रयासों से आई। वे सन 1900 में अपने युग के हिन्दी-साहित्यकारों का नेतृत्व करते हुए उनका ध्यान हिन्दी गद्य और पद्य की विभिन्न न्यूनताओं एवं त्रुटियों की ओर आकर्षित किया। जहाँ पद्य के क्षेत्र में उन्होंने खड़ीबोली की प्रतिष्ठा के आंदोलन को दृढ़ किया वहीं गद्य के क्षेत्र में भाषा की शुद्धता , शब्द-रूपों की एकरूपकता , व्याकरण के दोष-परिष्कार आदि की ओर अपना ध्यान केन्द्रित किया। गद्य के संबन्ध में उनकी भाषा-नीति सूत्र –

1 विषयानुकूल एवं जनता के अनुकूल सरल , शुद्ध एवं प्रवाहपूर्ण शैली का प्रयोग करना।

2 उर्दू एवं अंग्रेजी के प्रचलित शब्दों को स्वीकार करना।

3 शब्द-रूपों एवं प्रयोगों को निश्चित रूप प्रदान कराते हुए भाषा में एकरूपता लाना।

4 भाषा की अभिव्यंजना-शक्ति की अभिवृद्धि के लिए संस्कृत के सरल एवं उपयुक्त तत्सम शब्दों लोकोक्तियों एवं मुहावरों तथा अन्य भाषाओं के शब्दों को स्वीकार करना।

8.3 निबंध विधा उद्भव और विकास

मूलतः 'निबन्ध' शब्द का अर्थ , 'रोकना' बाँधना है तथा इसके पर्यायवाची के रूप में 'लेख', 'संदर्भ', 'प्रस्ताव' आदि का उल्लेख किया जाता है ; आधुनिक साहित्य में 'निबन्ध' कि विधा का विकास भी बहुत कुछ पाश्चात्य साहित्य की प्रेरणा से हुआ है , अतः इसके स्वरूप को स्पष्ट रूप में हृदयंगम करने केलिए पाश्चात्य विद्वानों द्वारा प्रस्तुत की गई विभिन्न परिभाषाओं पर दृष्टिपात कर लेना उपयोगी सिद्ध होगा। आधुनिक निबन्ध के जन्मदाता मौनतेन महोदय का कथन है – निबन्ध विचारों , उद्धरणों और कथाओं का मिश्रण है' ।

भारतेन्दु युग के निबंधकारों ने साधारण-से-साधारण और गंभीर-से-गंभीर विषयों पर निबन्ध की रचना की । सामाजिक एवं राजनीतिक गतिविधियों पर स्वच्छंद रूप से विचार व्यक्त करते हुए इन्होंने हिन्दी निबन्ध को विकास पाठ पर अग्रसर किया। संक्षेप में हिन्दी निबन्ध के विकास को चार कलों में विभक्त किया जा सकता है :

1. भारतेन्दु युग (1873ई॰ -1900ई॰)
2. द्विवेदी तुग (1900ई॰-1920 ई॰)
3. शुक्ल युग (1920ई॰-1940 ई॰)
4. शुक्लोत्तर युग (1940ई॰ के उपरान्त)

1. भारतेन्दु युग (1873ई॰ -1900ई॰)

भारतेन्दु युग को हिन्दी निबन्ध की विकास यात्रा का प्रारम्भिक चरण माना जा सकता है। इससे पूर्व के गद्य लेखकों की रचनाओ मे निबन्ध के गुण उपलब्ध नहीं थे। सही अर्थों में भारतेन्दु जी के निबन्ध ही हिन्दी के प्रथमिक निबन्ध हैं ,जिन में निबन्ध कला की मूलभूत विशेषताएँ उपलब्ध होती हैं। भारतेन्दु जी ने हिन्दी गद्य की अनेक विधाओं का न केवल सूत्रपात हि किया अपितु उन्हें पल्लवित करने का श्रेय भी प्रपट किया। भारतेन्दु जी के निबन्ध विषय एवं शैली की दृष्टि से विविधतापूर्ण हैं। उन्होंने इतिहास ,समाज ,धर्म ,राजनीति , यात्रा ,प्रकृति वर्णन एवं व्यंग्य-विनोद जैसे विषयों पर निबन्धों की रचना की । अपने सामाजिक निबंधों में उन्होंने सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार किए तो राजनीतिक निबंधों में अंग्रेजी राज्य पर तीखे व्यंग्य किए। भारतेन्दु जी के निबन्धों में विषयानुकूल भाषा-शैली का प्रयोग हुआ हे। उनके आलोचनात्मक निबन्धों की भाषा प्रौढ़ होते हुए भी दुरूह एवं बोझिल नहीं हो पाई है। भारतेन्दु जी के कुछ निबन्धों के नाम यहाँ देना अप्रासंगिक न होगा – अंग्रेज़ स्त्रोत , पांचवें पैगंबर , स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन , लेवी प्राण लेवी, आदि। उनके निबन्धों की भाषा का एक उदाहरण दृष्टव्य है – "गाड़ी भी ऐसी टूटी-फूटी जैसे हिन्दुओं की किस्मत और हिम्मत। अब तो तपस्या करके गोरी –गोरी , कोख से जन्म लें तब ही संसार में सुख मिले"।

भारतेन्दु युग के प्रमुख निबंधकारों में स्वयं भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के अतिरिक्त बालकृष्ण भट्ट , बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमधन', प्रताप नारायण मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त ,राधाचरण गोस्वामी , अंबिकादत्त व्यास आदि उल्लेखनीय हैं। इन निबंधकारों ने भी हिन्दी निबन्ध के विकास में पर्याप्त योगदान किया है। पं . बालकृष्ण भट्ट 'हिन्दी प्रदीप' के यशस्वी सम्पादक थे और वरणात्मक , भावात्मक ,विचारोत्तेजक निबन्धों के लेखक के रूप में जाते थे। हास्य को वे बहुत महत्व देते थे। इसका पता उनके इस विचार से लगता है – "सच पूछो तो हास्य ही लेख का जीवन है। लेख पढ़कर कुंड कली समान दांत न खिल उठें तो वह लेख ही क्या" उनके निबन्ध भावात्मक भी हैं और विचारात्मक भी। 'चंद्रोदय' उनका भावात्मक निबन्ध है तो 'मुग्ध माधुरी' में विचार और भावना का संतुलित समन्वय दिखाई पड़ता है। गंभीर बातों को सरल और सुबोध ढंग से प्रस्तुत कर पाने की कला में वे निष्णात

थे। विषय की व्यापकता एवं मौलिकता के साथ-साथ शैली की रोचकता उनके निबन्धों की प्रमुख विशेषता मानी जा सकती है।

भारतेन्दु के निबन्धों में विषय के अनुरूप विभिन्न प्रकार की भाषा शैलियों का प्रयोग हुआ है। उनकी भाषा में मार्मिक अभिव्यंजना , विदग्ध वाग्मिता ,सजीव अनेकरूपकता और मन-मोहक स्वच्छता मिलती है । इसमें कहिम स्वाभाविक अलंकारयोजना है तो कहीं गोष्ठी – वार्तालाप का ढंग अपनाया गया है । उनके आलोचनात्मक निबन्धों , 'नाटक' , वैष्णवता और भारतवर्ष' की भाषा अत्यंत प्रौढ़ है , किन्तु फिर भी उसमें दुरूहता , दुर्बोधता, कृत्रिमता और समासात्मकता दृष्टिगोचर नहीं होती। अस्तु , विषय और शैली-दोनों की ही दृष्टि से भारतेन्दु का निबन्ध साहित्य महत्वपूर्ण है।

संक्षेप में ,भारतेन्दु युग के निबंधकारों में विषय की व्यापकता एवं विविधता है। वे निबन्ध लेखक होने के साथ-साथ पत्रकार भी हैं अतः उनमें वैयक्तिकता के साथ-साथ समाजिकता का भी समावेश है। इनकी शैली में हास्य-व्यंग्य एवं मनोरंजन की प्रथानता है । इन निबन्धों का प्रमुख उद्देश्य राजनीतिक विषमता और सामाजिक कुरीतियों पर चोट करना रहा है। भारतेन्दु युग के निबंधकारों का मूल्यांकन करते हुए डॉ . राम विलास शर्मा ने लिखा है – "जितनी सफलता भारतेन्दु युग के लेखकों को निबन्ध रचना में मिली उतनी कविता और नाटक में भी नहीं मिली। .....भारतेन्दु युग की गद्य शैली के सबसे चमत्कारपूर्ण निदर्शन निबन्धों में ही मिलते हैं"। बाबू गुलाबराय के अनुसार , "निबन्ध की पुष्ठभूमि में रहने वाला निजीपन , हृदयोल्लास और चलतेपन के लिए भारतेन्दु युग चिरस्मरणीय रहेगा" भारतेन्दु युग के सर्वश्रेष्ठ निबन्धकार स्वयं भारतेन्दु जी ही माने जा सकते हैं।

2. द्विवेदी युग (1900ई०-1920 ई०)

हिन्दी निबन्ध के विकास के द्वितीय चरण को आचाय महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम पर द्विवेदी युग कहा गया है। द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' पत्रिका का सम्पादकत्व सन1903 ई० में संभाला था , अतः द्विवेदी युग का प्रारम्भ हम इसी समय से मान सकते हैं। द्विवेदी जी ने सरस्वती के माध्यम से भाषा संस्कार एवं व्याकरण-शुद्धि के जो प्रयास प्रारम्भ किए उनका प्रभाव तत्कालीन सभी निबंधकारों पर किसी-न-किसी रूप में अवश्य पड़ा।

आचार्या द्विवेदी ने 'बेकन' के निबन्धों को आदर्श निबन्ध मानते हुए उनके निबन्धों का हिन्दी अनुवाद 'बेकन-विचार रत्नावली' के नाम से किया। इसके अतिरिक्त उनके अपने निबन्धों का संग्रह 'रसज्ञ रंजन' नाम से प्रकाशित हुआ है। द्विवेदी जी के कुछ प्रसिद्ध निबन्धों के नाम हैं – कवि और कविता , कवि कर्तव्य , प्रतिभा , साहित्य की महत्ता , लोभ , 'मेघदूत' आदि। उनके निबन्धों में वैचारिकता एवं गंभीरता है तथा भारतेन्दु युग की हास्य-व्यंग्य शैली का यहाँ अभाव है। इन निबन्धों की भाषा शुद्ध , सार्थक एवं परिमार्जित है। ये निबन्ध प्रायः व्यास शैली में लिखे गए हैं। जिससे वे बोधगम्यता के गुण से युक्त हो गए हैं। उनमें कहीं भी दुरूहता अथवा क्लिष्टता के गुण से युक्त हो गए हैं। उनमें कहीं भी दुरूहता अथवा क्लिष्टता नहीं है। विषय के अनुरूप वे अपनी शैली में परिवर्तन करते दिखाई पड़ते हैं उदाहरण के लिए , 'मेघदूत' निबन्ध की ये पंक्तियाँ दुष्टव्य हैं , जिनमें शैली की गम्भीरता स्पष्ट रूप में परिलक्षित होती है – 'कविता कामिनी के कमनीय नगर में कालिदास का 'मेघदूत' एक ऐसे भव्य भवन के सदृश है , जिसमें पद्य रूपी अनमोल रत्न जड़े हुए हैं"।

भारतेन्दु युग की निबन्ध परंपरा से एक स्पष्ट अलगाव द्विवेदीयुगीन निबन्धों में परिलक्षित होता है। भारतेन्दु युग के निबन्धों में जहाँ वैयक्तिकता की प्रधानता थी, वहीं द्विवेदी युग के निबन्धों में व्यक्तित्व-व्यंजक परंपरा

का हास दिखाई पड़ता है। द्विवेदी युग के निबंधकारों में पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी के अतिरिक्त अन्य प्रमुख निबन्ध लेखक थे – मधावप्रसाद मिश्र, गोविन्द नारायण मिश्रा , बाबू श्यामसुंदर दास , अध्यापक पूर्णसिंह , पदमसिंह शर्मा , चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' , मिश्र बंधु , जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी आदि।

इन निबन्धकारों ने द्विवेदी जी की परम्परा का अनुसरण करते हुए विचार प्रधान निबन्ध लिखे। माधव प्रसाद मिश्र के निबंधों का संग्रह 'माधव मिश्र निबन्धमाला' नाम से प्रकाशित हुआ हे। इन्होंने 'धृति' ,'सत्य' जैसे निबंधों की रचना विचार प्रधान गम्भीर शैली में की है। गोविन्द नारायण मिस्र की भाषा संस्कृतनिष्ठ एवं अलंकारों के बोझ से दाबी हुई है। वाक्य लम्बे-लम्बे हैं और तत्सम एवं सामासिक पदावली की अधिकता है।

बाबू श्यामसुंदरदास द्विवेदी युग के श्रेष्ठ निबन्धकार थे। वे एक उच्चकोटि के आलोचक थे। अतः उनके निबन्धों का विषय प्रायः आलोचना से संबन्धित रहा यथा – भारतीय साहित्य की विशेषताएँ ', 'कर्तव्य और सभ्यता', 'समाज और साहित्य' आदि। इनके निबन्धों में आत्माभिव्यंजन एवं वैयक्तिकता के तत्वों की उपेक्षा करते हुए केवल विचारों की अभिव्यक्ति पर ही ध्यान केन्द्रित किया गया है। शैली में प्रौढ़ता है , किन्तु कहीं भी अस्पष्टता नहीं दिखाई देती।

तुलनात्मक समलोचना के लिए प्रख्यात पं. पद्मा सिंह शर्मा के दो निबन्ध संग्रह 'पद्मपराग' एवं 'प्रबन्ध मंजरी' नाम से प्रकाशित हुए हैं। इनके निबन्धों में वैयक्तिकता एवं भावुकता की प्रधानता है। इनकी शैली प्रशंसात्मक एवं प्रभावपूर्ण है तथा उसमें खण्डन-मण्डन की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है । वाक्य रचना से उन्होंने कथ्य को विशेष प्रभावशील बना दिया है।

प्रशिद्ध पुरातत्वविद चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' के निबंधों में प्रखर पांडित्य की झलक दिखाई पड़ती है। उनामे गंभीर चिन्तन , सूक्ष्म विश्लेषण और व्यंग्य का पुट है। गुलेरीजी की भाषा प्रौढ़ एवं विषयानुकूल है। इनके निबन्ध संग्रहों के नाम हैं – 'गोबर गणेश संहिता' ,कछुआ डीएचआरएम और 'मारेसि मोहि कुठांव'।

द्विवेदी युग के सर्वाधिक सशक्त निबंधकार हैं – सरदार पूर्णसिंह जो हिन्दी में भावात्मक निबंधों की रचना के लिए तथा शैली की विशिष्टता एवं भाषा की लक्षणिकता के लिए सुविख्यात रहे हैं। उनके निबन्ध हिन्दी की अमूल्य निधि हैं। यह सर्वश्रेष्ठ निबन्धकार कहे जा सकते हैं। इनके निबन्धों के नाम हैं – आचरण की सभ्यता , मजदूरी और प्रेम , सच्ची वीरता , पवित्रता , कन्यादान और अमेरिका का मस्त योगी वाल्ट व्हिटमैन। स्वाधीन चिन्तन के साथ-साथ लक्षणिक एवं व्यंग्य प्रधान शैली की छाप दिखाई पड़ती है। पूर्णसिंह जी की लाक्षणिक पदावली के कुछ उदाहरण दुष्टव्य हैं – "आजकल भारत में परोपकार का बुखार फैल रहा है"। ....वह वीर ही क्या जो टीन के बर्तन की तरह झट गरम और झट ठंडा हो जाता है "।

उपरयुक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि द्विवेदी युग में विचार प्रधान निबंधों कि रचना अधिक हुई है। भारतेन्दु युग की अपेक्षा इस युग के निबंधकारों की भाषा-शैली में प्रौढ़ता दिखाई पड़ती है। इन निबंधकारों ने युगीन समस्याओं की अपेकषा साहित्यिक एवं वैचारिक समस्याओं पर अपना ध्यान केन्द्रित करते हुए निबंधों के विषयों की खोज की। हास्य-व्यंग्य के स्थान पर इनमें गंभीरता अधिक है। अध्यापक पूर्णसिंह एवं गुलेरी जी के निबंधों को छोड़कर शेष निबंधों में वैयक्तिकता का प्रस्फुटन नही हुआ है। इस युग के निबंधकारों ने भावात्मक , विचारात्मक ,

शोधपरक सभी शैलियों का प्रयोग किया है। भाषा की दृष्टि से निबन्ध निश्चित रूप से भारतेन्दु युगीन निबंधों से अधिक प्रौढ़ , क्यों कि इनकी भाषा व्याकरणसम्मत , प्रौढ़ एवं परिमार्जित है।

3. शुक्ल युग (1920ई० – 1940 ई०)

हिन्दी निबन्ध के तृतीय चरण को शुक्ल युग की संज्ञा प्रदान की गई है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबन्ध क्षेत्र में पदार्पण करने से इसे नए आयाम एवं नई दिशाएं प्राप्त हुई। उन्होंने 'चिंतामणि' में जो निबंध संकलित किए हैं उनसे हिन्दी निबन्ध अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंचा दिखाई पड़ता है। वस्तुतः निबन्ध कला के सभी गुण इनके निबंधों में उपलब्ध होते हैं। शुक्लाजी के निबंधों में भाव एवं विचार का अर्थात हृदय एवं बुद्धि का संतुलित समन्वय है। उनके निबन्ध दो प्रकार के हैं – साहित्यिक समीक्षा सम्बन्धी निबन्ध तथा मनोविकार सम्बन्धी निबन्ध। तुलसी का भक्तिमार्ग , कविता क्या है , साधारणी करण और व्यक्ति वैचित्र्यवाद प्रथम कोटि के निबन्ध हैं तो 'उत्साह' , 'लज्जा' और ग्लानि , 'श्रद्धा – भक्ति', 'क्रोध' द्वितीय प्रकार के निबन्ध हैं गहन विचार वीथियों के साथ-साथ रसपूर्ण छींटे यहां सर्वत्र बिखरे हुए हैं। शुक्लाजी के निबंधों में चिन्तन की मौलिकता , विश्लेषण की सूक्ष्मता एवं शैली की प्रौढ़ता के एक साथ दर्शन होते हैं। उनके निबन्धों के संबंध में यह निर्णय करना दुष्कर है कि वे विषय प्रधान हैं या व्यक्ति प्रधान ? इनके निबन्धों में वैयक्तिकता का तत्व भी है और गंभीर विवेचन तथा सूक्ष्म विश्लेषण भी है। भाषा कि दृष्टि से उनके निबन्धों को 'हिन्दी निबन्ध का आदर्श कहा जा सकता है। उनका वाक्य विन्यास सुसंगठित एवं सटीक है। प्रत्येक शब्द स्फटिक मणि की भांति अपने उचित स्थान पर जड़ा हुआ है , जिसका कोई विकल्प नहीं है। यदि कहा जाए कि 'शैली ही व्यक्तित्व है' तो यह कथन शुक्लजी के निबंधों पर पूर्णतः चरितार्थ होता है। शुक्ल जी ने विषयानुरूप सभी शैलियों का प्रयोग किया है। कहीं वे सूत्र शैली का प्रयोग करते हैं तो कहीं शोधपरक गवेषणात्मक शैली का। उनके निबन्धों में उपलब्ध कुछ सूत्रात्मक वाक्य दुष्टव्य हैं – "यदि प्रेम स्वप्न है तो श्रद्धा जगरण" , बैर क्रोध का आचार या मुरब्बा है"। शुक्लजी अपने विचारों को ऐसी कुशलता से व्यक्त करते हैं कि पाठकों को उनसे सहमत होने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं रहता। डॉ. गणपति चन्द्रगुप्त ने निबन्धकार शुक्लजी के विषय में अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है – "वस्तुतः शुक्लजी के निबन्धों में वे सभी गुण मिलते हैं , जो गम्भीर विषयों के निबन्धों के लिए अपेक्षित हैं। ..... शुक्लजी की शैली में भी निजी वुशिष्टता मिलती है। भारतेन्दु युग की सी मौलिकता उसमें है , किन्तु वे उनके छिछलेपन से दूर हैं , द्विवेदी युग की सी विचारात्मकता उसमें है किन्तु वैसी शुष्कता का उनमें अभाव है"। शुक्लजी के निबन्धों में परिष्कृत , प्रांजल , साहित्यिक भाषा का प्रयोग हुआ है। शब्द चयन , वाक्य रचना और सादृश्य विधान सबमें उनकी काव्यात्मक रुचि का परिचय मिलता है। आचार्य शुक्ल के अतिरिक्त इस कल के अन्य चर्चित निबन्धकार हैं – बाबू गुलाबराय , पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी , वियोगी हरि , रायकृष्ण दास , वसुदेव शरण अग्रवाल ,शांतिप्रिय द्विवेदी और माखनलाल चतुर्वेदी। इनमें से बाबू गुलबराय को हिन्दी निबन्ध साहित्य की उपलब्धि कहा जा सकता है। उनके निबन्ध संग्रहों के नाम हैं – 'मेरे निबन्ध', ''मेरी असफलताएँ ' और 'फिर निराशा क्यों'। गुलाबराय जी एक उच्चकोटि के आलोचक भी थे अतः उनके कुछ निबंधों में साहित्यक समस्याओं पर विचार किया गया है।

कुछ निबन्द्ज नितांत वैयक्तिक हैं , जिन्हें रोचक ढंग से लिखा गया है तथा इनमें उनके व्यक्तित्व के विभिन्न पहलू उभरकर सामने आए हैं।

बख्शीजी के निबन्ध 'कुछ' और 'पंचपात्र' में संकलित हैं , जिनमें मौलिक विचार एवं नूतन शैली के दर्शन होते हैं। 'अतीत स्मृति', 'उत्सव', 'रामलाल पण्डित', 'श्रद्धांजलि के दो फूल' जैसे निबंधों में लेखक की भावुकता , आत्मीयता और व्यंग्य का समन्वय मिलता है। इनकी शैली बाबू श्याम सुन्दरदास के निबंधों से मिलती-जुलती दिखाई पड़ती है।

शांतिप्रिय द्विवेदी ने एक ओर तो आलोचनात्मक निबन्ध लिखे तो दूसरी ओर वैयक्तिक निबन्धों की रचना की। 'कवि और कवि' तथा 'साहित्यिकी' में संकलित निबन्धों में भावुकता एवं आत्मीयता की प्रधानता है। डॉ. वसुदेव शरण अग्रवाल ने प्रायः संस्कृतिक विषयों पर निबन्ध लिखे हैं। जिनमें उच्चकोटि की विद्वत्ता झलकती है। माखनलाल चतुर्वेदी ने भाव प्रधान निबन्धों की रचना की है। किन्तु उनमें गंभीर चिंतन भी विद्यमान है। उनके निबन्धों में प्रयुक्त भाषा-शैली भी लाक्षणिक एवं प्रतीकात्मक है।

उपरयुक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि शुक्ल युग हिन्दी निबन्ध के विकास का स्वर्ण युग है। इस युग में निबन्धों का विषय क्षेत्र अधिक व्यापक हुआ साथ ही उसमें गंभीर एवं सूक्ष्मता भी आई।ये निबन्ध मनोविज्ञान , साहित्य , संस्कृति , इतिहास सभी विषयों को समाविष्ट किए हुए हैं। इन विषयों की मौलिक समस्याओं को बड़ी सूक्ष्म पकड़ के साथ प्रस्तुत किया गया, किन्तु निबन्धों में भावुकता एवं आत्मीयता का तत्व भी पर्याप्त मात्र में बना रहा। निजी अनु भूतियों एवं वैयक्तिक भावनाओं का प्रकाशन भी शुक्ल युग के निबंधकारों ने खूब किया है। भाषा-शैली की दृष्टि से यह युग द्विवेदी युग की तुलना में अधिक विकसित एवं प्रौढ़ है। आचार्या रामचन्द्र शुक्ल इस युग की महानतम उपलब्धि हैं और वे हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ निबंधकारों कहे जा सकते हैं।

4. शुक्लोत्तर युग (1940ई० के उपरान्त)

शुक्लाजी ने हिन्दी निबंध को जो नए आयाम दिए उससे हिन्दी निबंध का परवर्ती काल में विविधमुखी विकास हुआ। विषय क्षेत्र , वैचारिकता , भाषा-शैली सभी दृष्टियों से हिन्दी निबंध ने नई दिशाएँ खोजीं। इस काल में न केवल समीक्षात्मक और विचारात्मक निबन्धों की ही रचना हुई अपितु 'ललित निबन्धों' की भी पर्याप्त रचना हुई। शुक्लोत्तर निबंधकारों में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी , आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी , डॉ. नगेंद्र , रामधारी सिंह दिनकर , जयशंकर प्रसाद , इलाचन्द्र जोशी , जैनेन्द्र , प्रभाकर माचवे , डॉ. भागीरधा मिश्र , डॉ. रामविलास शर्मा , डॉ. विद्यानिवास मिश्र , कुबेरनाथ राय , देवेन्द्र सत्यर्थी , कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' आदि उल्लेखनीय हैं।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी शुक्लजी की परम्परा को आगे बढ़ाने वाले प्रमुख निबन्धकार हैं। उनके निबन्ध 'आधुनिक साहित्य', 'नया साहित्य', नए प्रश्न' में संकलित हैं। वैयक्तिकत एवं व्याग्य विनोद की झलक भी उनके निबंधों में पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी शुक्लोत्तरयुग के सर्वश्रेष्ठ निबन्धकार माने जा सकते हैं। इनके प्रकाशित निबन्ध संग्रहों में 'कल्पलता', 'अशोक के फूल', 'कुटज', 'विचार-प्रवाह' 'विचार और

वितर्क' उल्लेखनीय हैं। इनके निबंधों में विषय और व्यक्ति का संतुलित समन्वय तो है ही साथ ही उनकी विद्वत्ता एवं विषय की गहरी पकड़ भी परिलक्षित होती है। द्विवेदीजी के निबन्धों का विषय क्षेत्र व्यापक है। उनमें संस्कृति एवं समस्याओं को भी सम्मिलित किया गया है। द्विवेदीजी की शैली विषय के अनुरूप परिवर्तित होती रही है। आधुनिक युग की विकृतियों का चित्रण कराते समय वे प्रायः हसी-व्यंग्यमायी शैली का प्रयोग करते हैं, जब कि कालीदासयुगीन वातावरण का चित्रण करते समय शब्दावली संस्कृत गर्भित हो गई है। उनके निबन्धों में भाषा की लय संस्कृत तत्सम शब्दों से गुंफित पदावली के साथ-साथ विषयांतर एवं विभिन्न संदर्भ जुड़े हुए हैं। उन्होंने शोधपरक , समीक्षात्मक निबन्ध भी लिखी हैं और ललित निबन्धों की रचना भी की है।

शान्तिप्रिय द्विवेदी शुक्लोत्तर युग के प्रमुख समीक्षात्मक निबन्ध लेखक के रूप में जाने जाते हैं 'संचारिणी', युग और साहित्य', 'धरातल', आधान', साकल्प', 'वृन्त और विकास' उनके प्रमुख निबन्ध संकलनों का हिन्दी साहित्य में विशिष्ट स्थान है। शैली की दृष्टि से भी ये निबन्ध सरस एवं प्रभावोत्पादक हैं।

हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि रामधारी सिंह 'दिनकर' ने भी निबन्ध रचना में योगदान किया है। 'अर्धनारीश्वर', 'हमारी संस्कृतिक एकता', प्रसाद , पंत और मैथिली शरण , 'रष्टभाषा और राष्ट्रीय साहित्य' उनके निबन्ध संग्रहों के नाम हैं।

हिन्दी निबन्ध साहित्य ने बहुत कम समय में आशातीत प्रगति की हे । भारतेन्दु युग से लेकर वर्तमान युग तक हिन्दी निबन्ध ने क्रमशः प्रौढ़ता प्राप्त की है निबंधों का विविधमुखी विकास हुआ है। आज हिन्दी निबन्ध में विषय-वैविध्य है , विविध शैलियां हैं और गंभीर चिन्तन-मनन है , किन्तु उसमें व्यक्तित्व का प्रकाशन कम होता जा रहा है। हास्य-व्यंग्य और रोचकता में भी ह्रास हो रहा है। परिणामतः वे शुष्क , नीरस एवं दुरूह बनते रहे हैं। आज के निबंधों में राजनीतिक एवं सामाजिक समस्याओं की उपेक्षा हो रही है। तथा कुछ निबन्धकार तो केवल अपने ज्ञान की धक जमाने केलिए पाश्चात्य लेखकों के मतों को बिना पचाए हुए व्यक्त करने में ही अपनी शान समझ रहे हैं। आज निबन्ध में वैयक्तिकता का तत्व समाप्त होता जा रहा है। हिन्दी निबन्ध को आज भी नए आयामों की खोज है साथ ही नवीनता की भी खोज है तथा वह अपने अस्तित्व को बनाए रख पाने में सफल हो सकेगा।

8.4 हिन्दी निबंधों के प्रकार

डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त ने निबन्ध के पाँच प्रकार (भेद) बताए हैं :

1. विचारात्मक निबन्ध
2. भावात्मक निबन्ध
3. वर्णनात्मक निबन्ध
4. विवरणात्मक निबन्ध
5. आत्मपरक निबन्ध

आलोचनात्मक निबंधों को विचारात्मक निबंधों के अंतर्गत ही रखना समीचीन है , क्योंकि आलोचना विचार से अलग नहीं होती । इसी प्रकार वैयक्तिक , संस्मरणात्मक एवं हास्य-व्यंग्यात्मक निबंधों को भी भावात्मक निबंधों के अंतर्गत समाविष्ट किया जा सकता है।

1. विचारात्मक निबन्ध

गंभीर विषयों पर चिन्तन मनन करके लिखे गए निबन्ध विचारात्मक निबन्ध होते हैं। इनमें बुद्धि की प्रधानता होती है और विचार सूत्रों की प्रमुखता रहती है। लेखक का हृदय पक्ष दबा रहता है तथा बुद्धि पक्ष की प्रबलता इन निबंधों में दिखाई पड़ती है। निबंधों में विचारों की एक श्रृंखला रहती है और सारे विचर पूर्वापर संबन्ध से एक सूत्र में जुड़े रहते हैं। निबंधों में कहीं व्यास शैली , कहीं समास शैली , और कहीं सूत्र शैली अपनाई जाती है। भाषा

विषय के अनुसार प्रौढ़ , गम्भीर एवं संस्कृतनिष्ठ रहती है । हिन्दी में इस प्रकार के निबन्ध लेखक हैं – आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी , बाबू श्यामसुंदर दस , आचार्य रामचन्द्र शुक्ल , आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ,डॉ. नगेन्द्र आदि.

2. भावात्मक निबन्ध

भावात्मक निबंधों में भाव पक्ष अर्थात हृदय पक्ष की प्रधानता होती है। भावात्मक निबन्ध लेखक की संवेदनशीलता को व्यक्त कराते हैं। हिन्दी लिखे गए वे निबन्ध जिनमें वैयक्तिक संस्पर्श है , संस्मरणात्मक तथ्य दिए गए हैं अथवा जिनमें हास्य-व्यंग्य की प्रधानता है , इसी वर्ग के अंतर्गत आते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के मनोविकार सम्बन्धी निबंधों में से कुछ इसी कोटि के हैं। ऐसे निबंधों के लिए ही इनकी यह टिप्पणी उल्लेखनीय है –"यात्रा के लिए निकलती रही है बुद्धि , पर हृदय को भी साथ लेकर। बुद्धि पथ पर हृदय भी अपने लिए कुछ-न-कुछ पाता रहा है "। उनके 'चिंतामणि' में संकलित निबन्ध 'उत्साह', करुणा' आदि इसी प्रकार के हैं। हिन्दी में भावात्मक निबंधकारों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण निबन्धकार हैं – अध्यापक पूर्णसिंह। उनके निबन्ध आचरण की सभ्यता , मजदूरी और प्रेम, पवित्रता , आदि इसी प्रकार के भावात्मक निबन्ध हैं। भावात्मक निबंधों में हृदय पक्ष की प्रधानता रहती है तथा हास्य-व्यंग्य एवं मनोरंजन का तत्व प्रमुख होता है। ये निबन्ध लेखक के संवेदनशीला हृदय कतत्व प्रमुख होता है। ये निबन्ध लेखक के संवेदनशील हृदय का परिचय देते हैं समाज में व्याप्त राजनीतिक , धार्मिक , सामाजिक विद्रूपताओं को भी इस प्रकार के निबंधों के माध्यम से उजागर किया जाता है हिन्दी निबंधकारों में भारतेन्दु ,बाबू हरिश्चन्द्र , प्रताप नारायण मिश्र , अध्यापक पूर्णसिंह , गुलेरी जी , पद्मसिंह शर्मा , ब्रजनंदन सहाय ,रायकृष्ण दास इसी प्रकार के निबन्धकार हैं। 3.

वर्णनात्मक निबन्ध

वर्णनात्मक निबन्धों में निबन्धकार किसी घटना , टाठी , दृश्य ,स्थान आदि का क्रमबद्ध वर्णन इस प्रकार करता है कि पाठक के समक्ष वह दृश्य या घटना साकार हो जाती है। भाषा सरल एवं सुबोध रहती है तथा लेखक का ध्यान तथ्य निरूपण पर अधिक रहता है , कल्पना पर कम। हिन्दी में बालकृष्ण भट्ट , बाबू गुलाबराय , कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर एवं रामवृक्ष बेनीपुरी के निबन्ध इसी श्रेणी के हैं।

4. विवरणात्मक निबन्ध

विवरणात्मक निबन्धों में ऐतिहासिक , सामाजिक ,पौराणिक घटनाओं का विवरण दिया जाता है तथा उनमें कल्पना का भी यथोचित समावेश हिता है। वर्णन संवेदनशील एवं मार्मिक होते हैं तथा उनमें क्रमबद्धता पर विशेष बल नहीं होता। वर्णन का सम्बन्ध वर्तमान से होता है जब कि विवरण का भूतकाल से। अतः इनमें सम्भावना पर विशेष बल होता है। हिन्दी के प्रारम्भिक निबन्धकार – भारतेन्दु हरिचन्द्र , बालकृष्ण भट्ट , प्रताप नारायण मिश्र , शिव पूजन सहाय आदि ने विवरणात्मक निबन्ध लिखे हैं।

5.आत्मपरकनिबन्ध

यद्यपि हर प्रकार के निबन्ध में लेखक के व्यक्तित्व कि छाप दिखाई देती है तथापि 'आत्मपरक निबन्धों में लेखक का व्यक्तित्व पूरी तरह उभरकर सामने आता है। वर्तमान युग में लिखे जाने वाले ललित निबन्ध भी आत्मपरक निबंधों की कोटि में आते हैं। ललित निबन्धों में लालित्य का समावेश भाषा , विषय वस्तु , शैली-शिल्प में किया जाता

है। लेखक का पाण्डित्य , लोक संपृक्ति एवं भाषागत सौन्दर्य ऐसे निबन्धों में साफ झलकता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी , डॉ. विद्यानिवास मिश्र , कुबेरनाथ राय हिन्दी के प्रमुख ललित निबन्धकार हैं। इनके अतिरिक्त डॉ. विवेकी राय , देवद्र सत्यर्थी ने भी आत्मपरक निबन्धों की रचना की है।

8.5 सारांश :

बाबू गुलाबराय ने निबंध की परिभाषा में अनेक तत्त्वों का सम्मिश्रण करते हुए कहा है- "निबंध उस गद्य-रचना को कहते हैं, जिसमें एक सीमित आकार के भीतर किसी विषय का वर्णन या प्रतिपादन एक विशेष निजीपन, स्वच्छंदता, सौष्ठव और सजीवता तथा आवश्यक संगति और सम्बद्धता के साथ किया गया हो।"

निबन्ध (Essay) गद्य लेखन की एक विधा है। लेकिन इस शब्द का प्रयोग किसी विषय की तार्किक और बौद्धिक विवेचना करने वाले लेखों के लिए भी किया जाता है। निबंध के पर्याय रूप में सन्दर्भ, रचना और प्रस्ताव का भी उल्लेख किया जाता है। लेकिन साहित्यिक आलोचना में सर्वाधिक प्रचलित शब्द निबंध ही है। निबंध के प्रमुख तत्व हैं: संक्षिप्तता, गद्य की अनिवार्यता, व्यक्तित्व की प्रधानता, सजीवता और भाषा-शैली।

1. निबंध हमेशा गद्य में ही लिखा जाता है किंतु अपवादस्वरूप निबंध पद्य में भी लिखे गए हैं। ...
2. आपका निबंध वस्तुपरक हो या व्यक्तिव्यंजक, किसी-न-किसी रूप में उसमें लेखक का निजत्व और व्यक्तित्व झलक ही जाता है।
3. भावात्मक निबंध-भावना प्रधान कहलाते हैं जैसे- वसंतोत्सव, चांदनी रात, बुढ़ापा, बरसात का पहला दिन, मेरे सपनों का भारत आदि। इसमें कल्पनात्मक निबंध भी आते हैं। कल्पनात्मक निबंध के उदाहरण है- 'यदि मैं प्रधानमंत्री होता' मेरी अभिलाषा, 'नदी की आत्मकथा' आदि।
4. निबंध का विषय सामाजिक, वैज्ञानिक, दार्शनिक आर्थिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, साहित्यिक, वस्तु, प्रकृति-वर्णन, चरित्र, संस्मरण, भाव, घटना आदि में से किसी भी विषय पर हो सकता है, किंतु विषय ऐसा होना चाहिए कि जिसमें लेखक अपना निश्चित पक्ष व दृष्टिकोण भली-भाँति व्यक्त कर सके।) रामचंद्र शुक्ल - "गद्य कवियों या लेखकों की कसौटी है तो निबंध गद्य की कसौटी है।
5. हिंदी निबंध को 5 भागों में बांटा गया है। वे निम्नलिखित प्रकार से हैं। भावात्मक निबंधों में भाव की प्रधानता होती हैं। इस प्रकार के निबंध व्यक्ति की संवेदनशीलता को प्रकट करते हैं।
6. ललित निबंध की विशेषता सरसता, रोचकता, सारगर्भिता, संक्षिप्तता और संगति इसकी विशेषताएँ हैं। इसमें कल्पना, विचार, वर्णन, रागात्मकता और व्यंग्य तथा हास्य जैसे गुण विद्यमान् हैं । यह केवल खडीबोली की विशेषता है। "निबंध हिंदी साहित्य का नितांत आधुनिक रूप है।" यह प्रबंध और लेख से भिन्न है।
7. हिंदी के प्रथम निबंध के रूप में राजा भोज का सपना (1839 ई.) का उल्लेख मिलता है। सदासुखलाल के 'सुरासुरनिर्णय' के आधार पर इन्हें हिंदी का प्रथम निबंधकार माना जाता है।

निबन्ध (Essay) गद्य लेखन की एक विधा है। लेकिन इस शब्द का प्रयोग किसी विषय की तार्किक और बौद्धिक विवेचना करने वाले लेखों के लिए भी किया जाता है। निबंध के पर्याय रूप में सन्दर्भ, रचना और प्रस्ताव का भी उल्लेख किया जाता है। लेकिन साहित्यिक आलोचना में सर्वाधिक प्रचलित शब्द निबंध ही है। इसे अंग्रेजी के कम्पोज़ीशन और एस्से के अर्थ में ग्रहण किया जाता है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार संस्कृत में भी निबंध का साहित्य है। प्राचीन संस्कृत साहित्य के उन निबंधों में धर्मशास्त्रीय सिद्धांतों की तार्किक व्याख्या की जाती थी। उनमें

व्यक्तित्व की विशेषता नहीं होती थी। किन्तु वर्तमान काल के निबंध संस्कृत के निबंधों से ठीक उलटे हैं। उनमें व्यक्तित्व या वैयक्तिकता का गुण सर्वप्रधान है।

इतिहास-बोध परम्परा की रूढ़ियों से मनुष्य के व्यक्तित्व को मुक्त करता है। निबंध की विधा का संबंध इसी इतिहास-बोध से है। यही कारण है कि निबंध की प्रधान विशेषता व्यक्तित्व का प्रकाशन है।

निबंध की सबसे अच्छी परिभाषा है-

निबंध, लेखक के व्यक्तित्व को प्रकाशित करने वाली ललित गद्य-रचना है।

इस परिभाषा में अतिव्याप्ति दोष है। लेकिन निबंध का रूप साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा इतना स्वतंत्र है कि उसकी सटीक परिभाषा करना अत्यंत कठिन है।

निबंध की विशेषता

सारी दुनिया की भाषाओं में निबंध को साहित्य की सृजनात्मक विधा के रूप में मान्यता आधुनिक युग में ही मिली है। आधुनिक युग में ही मध्ययुगीन धार्मिक, सामाजिक रूढ़ियों से मुक्ति का द्वार दिखाई पड़ा है। इस मुक्ति से निबंध का गहरा संबंध है।

हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार-

"नए युग में जिन नवीन ढंग के निबंधों का प्रचलन हुआ है वे व्यक्ति की स्वाधीन चिन्ता की उपज है।

इस प्रकार निबंध में निबंधकार की स्वच्छंदता का विशेष महत्त्व है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है:

" निबंध लेखक अपने मन की प्रवृत्ति के अनुसार स्वच्छंद गति से इधर-उधर फूटी हुई सूत्र शाखाओं पर विचरता चलता है। यही उसकी अर्थ सम्बन्धी व्यक्तिगत विशेषता है। अर्थ-संबंध-सूत्रों की टेढ़ी-मेढ़ी रेखाएँ ही भिन्न-भिन्न लेखकों के दृष्टि-पथ को निर्दिष्ट करती हैं। एक ही बात को लेकर किसी का मन किसी सम्बन्ध-सूत्र पर दौड़ता है, किसी का किसी पर। इसी का नाम है एक ही बात को भिन्न दृष्टियों से देखना। व्यक्तिगत विशेषता का मूल आधार यही है। इसका तात्पर्य यह है कि निबंध में किन्हीं ऐसे ठोस रचना-नियमों और तत्वों का निर्देश नहीं दिया जा सकता जिनका पालन करना निबंधकार के लिए आवश्यक है। ऐसा कहा जाता है कि निबंध एक ऐसी कलाकृति है जिसके नियम लेखक द्वारा ही आविष्कृत होते हैं। निबंध में सहज, सरल और आडम्बरहीन ढंग से व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति होती है।

"हिन्दी साहित्य कोश" के अनुसार:

"लेखक बिना किसी संकोच के अपने पाठकों को अपने जीवन-अनुभव सुनाता है और उन्हें आत्मीयता के साथ उनमें भाग लेने के लिए आमंत्रित करता है। उसकी यह घनिष्ठता जितनी सच्ची और सघन होगी, उसका निबंध पाठकों पर उतना ही सीधा और तीव्र असर करेगा। इसी आत्मीयता के फलस्वरूप निबंध-लेखक पाठकों को अपने पांडित्य से अभिभूत नहीं करना चाहता।

इस प्रकार निबंध के दो विशेष गुण हैं-

1. व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति

2. सहभागिता का आत्मीय या अनौपचारिक स्तर

निबंध का आरंभ कैसे हो, बीच में क्या हो और अंत किस प्रकार किया जाए, ऐसे किसी निर्देश और नियम को मानने के लिए निबंधकार बाध्य नहीं है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि निबंध एक उच्छृंखल रचना है और निबंधकार एक उच्छृंखल व्यक्ति। निबंधकार अपनी प्रेरणा और विषय वस्तु की संभावनाओं के अनुसार अपने व्यक्तित्व का प्रकाशन और रचना का संगठन करता है। इसी कारण निबंध में शैली का विशेष महत्त्व है।

हिन्दी साहित्य में निबन्ध :

हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग में भारतेन्दु और उनके सहयोगियों से निबंध लिखने की परम्परा का आरंभ होता है। निबंध ही नहीं, गद्य की कई विधाओं का प्रचलन भारतेन्दु से होता है। यह इस बात का प्रमाण है कि गद्य और उसकी विधाएँ आधुनिक मनुष्य के स्वाधीन व्यक्तित्व के अधिक अनुकूल हैं। मोटे रूप में स्वाधीनता आधुनिक मनुष्य का केन्द्रीय भाव है। इस भाव के कारण परम्परा की रूढ़ियाँ दिखाई पड़ती हैं। सामयिक परिस्थितियों का दबाव अनुभव होता है। भविष्य की संभावनाएँ खुलती जान पड़ती हैं। इसी को इतिहास-बोध कहा जाता है। भारतेन्दु युग का साहित्य इस इतिहास-बोध के कारण आधुनिक माना जाता है।

प्रमुख हिंदी निबंधकार	हजारी प्रसाद द्विवेदी	महादेवी वर्मा
भारतेन्दु हरिश्चंद्र	प्रतापनारायण मिश्रबालकृष्ण भट्ट	बालमुकुंद गुप्त
सरदार पूर्ण सिंह	महावीर प्रसाद द्विवेदी	चंद्रधर शर्मा गुलेरी
कुबेरनाथ राय	विद्यानिवास मिश्र	नंददुलारे वाजपेयी

8.6 बोध प्रश्न :

1. निबन्ध का क्या अर्थ है ? समझाइए।
2. विषय तथा शैली के आधार पर निबंधों का वर्गिकरण कीजिए ?
3. विचारात्मक निबन्ध और वर्णनात्मक निबन्ध में क्या अंतर है ?
4. विचारात्मक निबन्ध और भावात्मक निबन्ध में क्या अन्तर है ?
5. निबन्ध के प्रमुख कौन से चार प्रमुख प्रकार माने जाते हैं ?संक्षेप में प्रकाश डालिए।
6. विषय तथा शैली के आधार पर निबन्धों का वर्गीकरण कीजिये।
7. हिन्दी के चार ललित निबंधकारों का नाम बताइए ?
8. आधुनिक युग के प्रमुख निबंधकारों के नाम बताइए ?

8.7 संदर्भ ग्रंथ सूचि

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र
2. साहित्यक निबन्ध - गणपतिचन्द्र गुप्त
3. यू.जी.सी नेट/सेट/जे.आर.यफ.हिन्दी - डॉ. अशोक तिवारी
4. निबन्ध लेखन - यस . डी . झांब
5. हिन्दी मे निबंध-साहितत्य - जनार्दन स्वरूप अग्रवाल
6. हिन्दी साहित्य का सरल इतिहास - राजनाथ शर्मा

****

- **डॉ. यम. मंजुला**

9. उपन्यास विधा

उद्देश्य

1 आरंभ में उपन्यासों का उद्देश्य केवल मनोरंजन करना था। लेकिन साहित्य की अन्य विधाओं की तरह वर्तमान उपन्यास भी जीवन के यथार्थ को सामने रखने की कोशिश करता है। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण द्वारा मानव मन का गहन व्याख्या का प्रयास इसमें किया जा रहा है। जीवन रहस्यों को, जीवन के अनुभवों को व्यक्त करने का कार्य उपन्यास करते है।

2 देशकाल-वातावरण का वर्णन सन्तुलित होना चाहिए, जहाँ तक वह कथा-प्रभाव में आवश्यक हो तथा पाठक को वह काल्पनिक न होकर यर्थाथ लगे। अनावश्यक अंशों की प्रधानता नहीं होनी चाहिए।

3 उपन्यास को जीवन का चित्र माना जाता है और इसलिए उसके पात्रों का भी जीवंत होना आवश्यक है। साथ ही पात्रों का सहज और स्वाभाविक अर्थात् मानवीय भी होना अनिवार्य है। उपन्यास में चरित्र-चित्रण प्रधान उपन्यास अधिक लिखे जाने लगे हैं। अज्ञेय का 'शेखर एक जीवनी' एक ऐसा ही उपन्यास है।

विषय सूची - II

9.1. प्रस्तावना

9.2. उपन्यास के तत्व

9.3 ऐतिहासिक उद्भव , विकास और वर्गिकरण

प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी उपन्यास

प्रेमचन्द युगीन हिन्दी उपन्यास

प्रेमचंदोत्तर हिन्दी उपन्यास

9.4 प्रतिनिधि रचनाएँ और रचनाकार

9.5 सारांश

9.6 अभ्यास के लिए प्रश्न

9.1 प्रस्तावना :

'उपन्यास' शब्द का मूल अर्थ है – 'निकट रखी हुई वस्तु' (उप – निकट ;न्यास – रखी हुई), किन्तु आधुनिक युग में इसका प्रयोग साहित्य के एक ऐसे रूप विशेष के लिए होता है, जिसमें एक दीर्घ कथा का वर्णन गद्य में किया जाता है। आधुनिक युग में 'उपन्यास' शब्द अंग्रेजी के 'नोविल' (novel) kए अर्थ में प्रयुक्त होता है जिसका अर्थ – एक दीर्घ कथात्मक गद्य रचना है। 'वह वृहत आकार का गद्य आख्यान या वृत्तान्त जिसके अंतर्गत वास्तविक जीवन के प्रतिनिधित्व का दावा करने विले पात्रों और कार्यों का चित्रण किया जाता है।

गुजराती में 'नवल-कथा', मराठी में 'कादम्बरी' एवं बंगला में 'उपन्यास' शब्द का प्रयोग भी अंग्रेजी के 'नावेल' के अर्थ में ही किया जाता है। संभवतः हिन्दी में भी इस शब्द का प्रयोग बँगला के अनुकरण पर ही

होने लगा है। उपन्यास शब्द का शाब्दिक अर्थ है सामने रखना। अर्थात् उप का अर्थ है समीप और न्यास शब्द का अर्थ है, उपस्थित करना। इस पक्रार उपन्यास का अर्थ है परिस्थितियो को स्पष्ट रूप से सामने रखने वाला।

9.2 उपन्यास के तत्व :

उपन्यास साहित्य मानव जीवन का महत्वपूर्ण अंग बन चुका है। उपन्यास के तत्त्व : अधिक्तर विद्वानों ने उपन्यास के प्रमुख छः तत्त्व माने हैं। (१) कथानक या कथावस्तु (२) पात्र या चरित्र-चित्रण (३) कथोप कथन या संवाद (४) देशकाल या वातावरण (५) भाषा-शैली (६) उद्देश्य।

कथानक – उपन्यास का मुला तत्व है। कथानक की वस्तु होती है जिस पर उपन्यास का भवन खड़ा होता है। यह उपन्यास का ढाँचा होता है। उपन्यास के अन्य तत्व अतराधन उपकरणों की भांति कार्य कराते है। कथानक को घतनाओं का लेखा भी कहा जाता है।

उपन्यास की कथावस्तु को मुख्यतः तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है। - (अ) आधिकारिक कथावस्तु (आ) प्रासंगिक कथावस्तु तथा (इ) अवांतर घटनाएँ। आधिकारिक कथावस्तु मूल कथा होती है , जो प्रारंभ से अन्त तक चलती है तथा नायक के चरित्र से संबंध्द होती है। कथा का मूल उद्देश्य इसी में निहित रहता है। प्रासंगिक कथावस्तु अधिकाधिक कथावस्तु की सहायक होती है। यह अधिकाधिक कथा प्रारंभ होने के बाद प्रारंभ होती है और मूल कथा के समाप्त होने से पूर्व ही समाप्त हो जाती है। कथा समय अवश्यकतानुसार घटित होनेवाली घटनाएँ नायक तथा खलनायक से भी संबन्धित हो सकती है।

9.3 ऐतिहासिक उद्भव , विकास और वर्गिकरण :

- उपन्यास हिंदी गद्य की एक आधुनिक विधा है। इस विधा का हिंदी में प्रादुर्भाव अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव स्वरूप हुआ । ...
- उपन्यास विधा का उद्भव और विकास पहले यूरोप में हुआ। बाद में बांग्ला साहित्य के माध्यम से यह विधा हिंदी साहित्य में आयी।
- हिंदी उपन्यास-साहित्य के लेखन का प्रारम्भ 19वीं शताब्दी के सातवें दशक के उपरांत हुआ। यद्यपि भारत में कथा-साहित्य की परम्परा अत्यंत प्राचीन और समृद्ध थी तथापि जिस रूप में हिंदी उपन्यास साहित्य का जन्म और विकास हुआ उसका इतिहास उतना पुराना नहीं है
- सुधारवादी भावना से युक्त उपन्यासों मे सामाजिक तथा ऐतिहासिक उपन्यासों को रखा जाता है। हिंदी उपन्यासों का प्रथम युग भाग्यवती के रचनाकाल 1877 ई. से आरंभ होता है। श्रद्धाराम फिल्लौरी कृत भाग्यवती एक सामाजिक उपन्यास है, जिसकी नायिका अपनी बुद्धिमता का परिचय देते हुए अपना और अपने परिवार का जीवन सुखमय बनाती है।
- अधिनिक उपसन्यास-साहित्य के रूप-विधान का विकास सबसे पहले युरप में माना जाता है, किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि प्राचीन भारत में उपन्यास जेसी किसी विधा का प्रचार ही नहीं रहा। संस्कृत गद्य में लिखे गए पंचतंत्र , हितोपदेश , वैताल पंचविंशति, वृहतकथा-मंजरी , वासवदत्ता, कादम्बरी और दशकुमार चरित में हमें क्रमशः औपन्यासिकता का विकास मिलता है।
- कुछ विद्वानों ने 'कादम्बरी' को भारत का पहला उपन्यास माना है, यहाँ तक कि मराठी साहित्य में 'उपन्यास' का

पर्यायवाची ही कादम्बरी है। वस्तुतः मानवीय चरित्र के स्वाभाविक चित्रण ,मनोवैज्ञानिक तथ्यों के उद्घाटन, यथार्थवादी दृष्टिकोण एवं शैली कि स्वाभाविकता की दृष्टि से 'दशकुमार-चरित' को भारत का पहला सफल 'उपन्यास' कह सकते हैं। इस में अनेक स्वतन्त्र कथानकों को मूल कथा वस्तु के क्षीण तन्तुओं के द्वारा परस्पर सम्बंद्ध किया गया हे, जो आधुनिक उपन्यास की दृष्टि से इसका यह एक बड़ा भारी दोष हे ; किन्तु इसके अन्य गुणों को देखते हुए यह दोष उपेक्षणीय कहा जा सकता है।

उपन्यास का उद्भव यूरोप में रोमांटिक कथा साहित्य से हुआ ,जो मूलतः भारतीय प्रेमाख्यानों से प्रेरित था। रोमांटिक का अर्थ है जिसमें प्रेम और साहस का निरुपण हो। संस्कृत के 'वासवदत्ता' , 'कादम्बरी' और 'दशकुमार-चरित' में प्रेम , साहस और धैर्य का ही चित्रण किया गया हे। इस युग के भारतीय कथा-साहित्य में इन तत्वों की इतनी प्रधानता थी कि आचार्या रुद्रट ने कथा-साहित्य के लक्षण निर्धारित करते समय प्रेम और साहस को उसका आवश्यक लक्षण माना है । यूरोप में रोमांटिक उपन्यासों का प्रचार सर्वप्रथम इटली में माना जाता है।

हिन्दी उपन्यास के विकासक्रम का अध्ययन करने के लिए हम उसे तीन चरणों में विभक्त कर सकते हैं। यदि 'प्रेमचन्द' को हिन्दी उपन्यासकारों में केन्द्रबिन्दु मन लेम तो ये तीन चरण निम्नावत हैं।

1 प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी उपन्यास

2 प्रेमचन्द युगीन हिन्दी उपन्यास

3 प्रेमचंदोत्तर हिन्दी उपन्यास

9.3.1 प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी उपन्यास:

प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी उपन्यास: 1882 से लगभग 1916 ई. तक के युग को हिन्दी उपन्यास में प्रेमचन्द पूर्व युग के नाम से जाना जाता है।

प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी उपन्यास

यह हिन्दी उपन्यास के विकास का आरम्भिक काल है। प्रेमचन्द पूर्व उपन्यास लेखन की परम्परा में दो ही प्रवृत्तियाँ उभरकर आई उपदेशात्मक तथा मनोरंजनात्मक। इस दौर के उपन्यासों को चार वर्गों में बाँटा जा सकता है।

1. तिलस्मी ऐयारी उपन्यास लेखन की परम्परा
2. जासूसी उपन्यास लेखन की परम्परा
3. ऐतिहासिक उपन्यास लेखन की परम्परा
4. सामाजिक उपन्यास लेखन की परम्परा

तिलस्मी ऐयारी उपन्यास लेखन की परम्परा:

'ऐयार' अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है तीव्रगामी या चपल व्यक्ति। देवकीनन्दन खत्री के अनुसार, 'ऐयार उसे कहते हैं जो हर एक फन जानता हो। शक्ल बदलना और दौड़ना उसका मुख्य काम है।' खत्री जी के उपन्यासों में इन्हीं ऐयारों की करामात का रहस्य-रोमांच भरा ऐसा आख्यान है जिसको पढने वाला व्यक्ति आत्म-विस्मृति की हद पर पहुँच कर इतने मनोरंजनपूर्ण संसार में लीन हो जाता है कि वहां से निकलना उसे प्रीतिकर नहीं लगता।

तिलस्मी ऐयारी उपन्यास लेखन की शुरूआत देवकीनन्दन खत्री से हुई। खत्री महोदय का सम्बन्ध जंगली लकडियों के व्यवसाय से था। बीहड जंगलों से जुडे होने के कारण कल्पना लोक को तैयार करना उनके लिए आसान था। इच्छानुसार वेश बदलने वाले ऐयारों को केन्द्र में रखकर काल्पनिक कथा गढ़ने की यह

परम्परा काफी विकसित हुई। घटना प्रधान तथा औत्सुक्य उत्पन्न करने वाले ये उपन्यास तिलस्मी अथवा एन्द्रजालिक कथाओं के सूत्र को लेकर चलते थे। खत्री महोदय का उपन्यास 'चन्द्रकान्ता' इसी श्रेणी का उपन्यास रहा है। इसके अतिरिक्त चन्द्रकान्ता सन्तति , भूतनाथ, काजल की कोठारी, कुसुमकुमारी, नरेन्द्र-मोहिनी तथा वीरेन्द्र वीर आदि इसी श्रेणी के उपन्यास हैं।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में बाबू देवकी नन्दन का स्मरण इस बात के लिए सदैव बना रहेगा कि जितने पाठक इन्होंने उत्पन्न किए उतने किसी ग्रन्थकार ने नहीं किया। चन्द्रकान्ता पढने के लिए ही न जाने कितने लोगों ने हिन्दी सीखी।

जासूसी उपन्यास लेखन की परम्परा:

जासूसी उपन्यासों की धारा बाबू गोपालराय गहमरी से शुरू हुई। गहमरी साहब अंग्रेजी के जासूसी उपन्यासकार आर्थर कानन डायल से प्रभावित थे। गहमरी जी के निम्नलिखित उपन्यास हैं-

1. अद्भुत लाश 2. सरकटी लाश (1900)
3. जासूस की भूल (1901) 4. जासूस पर जासूस (1904)

इन उपन्यासों में भी घटना की प्रधानता थी। सामान्यतः ऐसे उपन्यासों की शुरुआत किसी हत्या अथवा लावारिस लाश की छानबीन से होती थी। इनमें सामाजिक सीख अथवा उपदेशात्मकता की कोई गुंजाइश नहीं थी। किशोरी लाल गोस्वामी कृत जासूसी उपन्यास निम्नलिखित हैं-

1. जिन्दे की लाश 2. तिलस्मी शीश महल
3. लीलावती 4. याकूत तख्ती

ऐतिहासिक उपन्यास लेखन की परम्परा:

इन उपन्यासों में हालाकि ऐतिहासिक पात्रों और घटनाओं का चित्रण हुआ है, फिर भी इन्हें सही मायनों में ऐतिहासिक उपन्यास नहीं कहा जा सकता क्योंकि एक तो इनमें ऐतिहासिक वातावरण का अभाव है और साथ ही ऐतिहासिक घटनाओं और उस समय की रीति-नीति, आचार-विचार, वेश-भूषा आदि के वर्णन में काफ़ी दोष भरा हुआ है। सच कहा जाए तो इन लेखकों की प्रवृत्ति इतिहास लिखना कम प्रेम प्रसंगों, विलास लीलाओं, रहस्य रोमांस और कुतूहल पूर्ण घटनाओं को बढा चढ़ा कर दिखाना ज़्यादा रहा है। ऐसा लगता है कि इन्होंने ऐतिहासिक छान-बीन कम की, कल्पना से अधिक काम लिया। इन्हें ऐतिहासिक रोमांस कथा कहना ज़्यादा सही होगा।

इसके अलावा गंगा प्रसाद (नूरजहां, वीर पत्नी, कुमार सिंह सेनापति, हम्मीर), जयरामदास गुप्त (काश्मीर पतन, रंग में भंग, मायारानी, नवाबी परिस्तान व वाज़िद अली शाह, मल्का चांद बीवी), मथुरा प्रसाद शर्मा (नूरजहां बेगम), ब्रजनन्दन सहाय (लाल चीन) आदि ने भी ऐतिहासिक उपन्यास लिखे।

कुछ ऐतिहासिक उपन्यासों का सम्बन्ध भारतीय अतीत की गौरवगाथा से रहा है। इस धारा के उपन्यासकारों पर पुनरोत्थावादी चेतना का विशेष प्रभाव था। ऐतिहासिक पात्रों को आधार बनाकर राष्ट्रीय सामाजिक जागरण का प्रयास करने वाले उपन्यासाओं में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, किशोरीलाल गोस्वामी, दीनबन्धु मित्र की विशेष भूमिका रही है। सजातमीर देव, बाणभट्ट की आत्मकथा, प्रथा, नीलदर्पण उस दौर के कुछ महत्त्वपूर्ण उपन्यास रहे है।

सामाजिक उपन्यास लेखन की परम्परा:

सामाजिक उपन्यासों में नैतिकता तथा सोद्देश्यपरकता की स्पष्ट झलक देखी गई। मेहता लज्जाराम शर्मा, अयोध्या प्रसाद खत्री और बाबू जगमोहन सिंह इस धारा के प्रमुख उपन्यासकार रहे। इस धारा के प्रमुख उपन्यास निम्नलिखित हैं-

1. आदर्श रमणी 2. सुशीला विधवा
3. हिन्दू दम्पति 4. स्वतन्त्र रमा परतन्त्र लक्ष्मी
5. धूर्तरसिक लाल 6. अधखिला फूल
7. ठेठ हिन्दी की ठाठ 8. श्यामास्वप्न

इस दौर के उपन्यासों में भारतीय तथा पश्चिमी संस्कृति को आमने-सामने रखकर भारतीय संस्कृति के स्वर्णिम पक्षों को उद्घाटित करने का प्रयास किया गया है। हिन्दू जाति की नैतिकता तथा नारी जाति के सतीत्व को पुनः स्थापित करने का प्रयास किया गया है। भारतीय नारीत्व के मूल्यों को पचाने की कोशिश ही नही बल्कि पश्चिमी अन्धानुकरण के दुष्परिणामों को उभारने का प्रयास भी दिखाई पडता है। बाबू जगमोहन सिंह ने भारतीय समाज में पारम्परिक वैवाहिक मूल्यों के बिखरने की त्रासदी को उद्घाटित करना चाहा है। अन्तर्जातीय विवाहों की सामाजिक विडम्बना क्या हो सकती है ? उनके उपन्यास 'श्यामास्वप्न' का यही मुख्य स्वर है।

9.3.2 प्रेमचन्द युगीन हिंदी उपन्यास:

प्रेमचन्द युगीन हिन्दी उपन्यासकारों में 'प्रेमचंद' अपन्नी महान प्रतिभा के कारण युग के रूप में जाने जाते हैं। वस्तुतः सही अर्थों में उन्होंने ही हिन्दी उपन्यास शिल्प का विकास किया। उनके उपन्यासों में पहली बार सामान्य जनता की समस्याओं की कलात्मक अभिव्यक्ति की गई थी और जनजीवन का प्रामाणिक एवं वास्तविक चित्र पाठकों को देखना सुलभ हुआ था। अपने महान उपन्यासों के कारण वे वास्तव में 'उपन्यास सम्राट' की पदवी पाने के अधिकारी सिद्ध हुए।

पाश्चात्य प्रभाव को स्वीकार करते हुए भी वे भारतीय संस्कृति के मूलभूत आधार-**आदर्श, संयम, त्याग, उदारता, सेवा, परोपकार** आदि को जीवन-दर्शन का प्रेरक-तत्व मानते थे।

व्यवहारिक जीवन में प्रेमचंद जी ने गांधी जी के रचनात्मक कार्यों को पूर्णतः स्वीकार किया था। उनमे आर्य समाज की तार्किकता, गांधीजी की विनयशीलता तथा तिलक की तेजस्विता का अद्भुत समन्वय था।

वस्तुत प्रेमचंद युग की गतिशील जीवन-दृष्टि के निर्माण में **आर्य समाज, तिलक और गांधी** की विचारधारा का योग था।

1919 ईस्वी से भारतीय जीवन-चेतना के क्षितिज पर गांधीजी का पूर्ण प्रकाश फैल गया। वे देश के कर्णधार बन गए। उन्होंने सांप्रदायिक एकता, अस्पृश्यता निवारण, नशाखोरी दूर करना, ग्राम सुधार, स्त्रियों की उन्नति और बुनियादी शिक्षा, स्वास्थ्य और सफाई की भावना का प्रचार, राष्ट्रभक्ति, राष्ट्रभाषा और राजभाषा प्रेम, किसानों-मजदूरों के प्रति सहानुभूति तथा छात्र संगठन के रचनात्मक कार्यों पर बल दिया।

प्रेमचन्द के प्रमुख उपन्यासोम में हैं –

1. सेवा सदन – 1918 ई. – यह उपन्यास पहले 'बाज़ारे – हुस्न' नाम से उर्दू में लिखा गया था, परन्तु 'उर्दू' में प्रकाशित नहीं करवाकर इसका हिंदी अनुवाद पहले प्रकाशित करवाया गया |
2. प्रेमाश्रय – 1922 ई. - यह उपन्यास पहले 'गोशए- आफ़ियत' नाम से उर्दू में लिखा गया था, परन्तु 'उर्दू' में प्रकाशित नहीं करवाकर इसका हिंदी अनुवाद पहले प्रकाशित हुआ |
3. रंगभूमि – 1925 ई. – यह उपन्यास भी पहले 'चौगाने – हस्ती' नाम से उर्दू में लिखा गया है, परन्तु इसका भी पहले हिंदी अनुवाद ही प्रकाशित हुआ | 4. कायाकल्प – 1926 ई.

5. निर्मला – 1927 ई. 6. गबन – 1931 ई. 7. कर्मभूमि – 1933 ई.
8. गोदान – 1935 ई. 9. मंगलसूत्र – अपूर्ण उपन्यास (बाद में पुत्र ने पूर्ण किया)
विशेष तथ्य -
1. ये प्रारम्भ में नवाबराय नाम से उर्दू में लेखन कार्य करते थे। इनके उर्दू कहानी संग्रह 'सोजे – वतन' को अंग्रेज सरकार ने जब्त कर लिया। उसके बाद इन्होंने अपना नाम बदलकर प्रेमचन्द रख लिया। इनका मूल नाम धनपतराय था। 2 इन्हें 'कलम का सिपाही' और 'कलम का मजदूर' भी कहा जाता है।

9.3.3 प्रेमचंदोत्तर हिन्दी उपन्यास

प्रेमचन्द के उपरांत हिन्दी उपन्यास किसी एक निश्चित दिशा की ओर अग्रसर नहीं हुआ, आओइतु उसकी विविध धाराएँ अनेक दिशाओं की ओर प्रवाहित हुई। विषय की दृष्टि से यदि हम प्रेमचंदोत्तर उपन्यासों का वर्गीकरन करें तो निम्न वर्ग बनाए जा सकते हैं :

1. मनोविश्लेषणवादी **उपन्यास**
2. साम्यवादी (प्रगतिवादी) **उपन्यास**
3. ऐतिहासिक **उपन्यास**
4. .आंचलिक **उपन्यास**
5. प्रयोगवादी **उपन्यास**
6. घटना प्रधान **उपन्यास**
7. चरित्र प्रधान (व्यक्तिवादी) **उपन्यास**
8. सामाजिक **उपन्यास**

यदि कालक्रम को दृष्टिगत रखकर प्रमचंदोत्तर उपन्यासों का वर्गीकरण करें तो उसे तीन कालखण्डों में विभक्त कर सकते हैं : अ) 1936 से 1950 तक के उपन्यास
आ) 1950 से 1960 तक के उपन्यास
इ) 1960 के उपरान्त के उपन्यास

प्रेमचंद के अंतिम दिनों में उपन्यास-साहित्य में यथातथ्यवाद, व्यक्तिवाद,यथार्थवाद मनोविश्लेषणवाद, अस्तित्वाद और प्रकृतिवाद आदि नई प्रवृत्तियाँ, जन्मीं; जो विषयवस्तु के धरातल पर प्रेमचंदोत्तर उपन्यास को प्रेमचंद - युग के साहित्य से अलगाती हैं।

प्रेमचंद के निधन (1936) से स्वतंत्रता प्राप्ति (1947) तक

1 **मनोविश्लेषणवादी** उपन्यासकारों में जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशीव्म अज्ञेय का उल्लेखनीय योगदान है। जैनेन्द्र ने परख (1929 ई.),सुनीता (1935 ई.) और त्यागपत्र (1937 ई.) के द्वारा हिन्दी उपन्यास को एक नई दिशा प्रदान की। उनके कुछ अन्य उपन्यास हैं – कल्याणी (1939 ई.), सुखदा (1952 ई.) विवर्त (1953 ई.) और व्यतीत (1953 ई.)। इन उपन्यासों में विभिन्न पात्रों के मन की उलझनों, गुत्थियों एवं शंखाओं का निरूपण कथा के माध्यम से किया गाया है। त्यागपत्र में 'मृणाल' के आत्मपीड़न की गाथा का मनोवैज्ञानिक चित्रण हिय है। साथ ही अनमेल विवाह के दुष्परिणामों का चित्रण भी किया गया है। 'सुनीता' में फ्रायड के सिद्धांतों के आलोक में हरि प्रसन्न के व्यवहार का चित्रण है तथा 'कल्याणी' एक अतृप्त और आधुनिक नारी की कथा है। 'सुखदा' एक कुंठाग्रस्त नारी की कहानी है। जैनेन्द्र जी ने आधुनिक समाज में नारी की स्थिति का यथातथ्य निरूपण करने का प्रयास अपने उपन्यासों में किया है।

2. हिन्दी के साम्यवादी उपन्यास वे हैं जिनमें मार्क्सवादी विचारधारा का आधार ग्रहण करके कथानक का ताना-बाना बुना गया है। यशपाल,राहुल संस्कृत्यायन, रांगेय राघव, भैरव प्रसाद, गुप्त और अमृतराय इसी कोटि के उपन्यासकार हैं। यशपाल ने पार्टी कामरेड (1945 ई.), दादा कामरेड (1941 ई.), देश द्रोही (1943 ई.), मनुष्य के रूप (1949 ई.), अमिता (1946 ई.), दिव्य (1945 ई.), और झूठा-सच (1957 ई.) आदि उपन्यासों में अपने मार्क्सवादी विचारों को

अभिव्यक्ति दी। झूठा-सच देश विभाजन की त्रासदी पर आधारित एक एस उपन्यास हे जिसमें तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों का सफलतापूर्वक चित्रण हुआ हे। इनके अतिरिक्त भैरव प्रसाद गुप्त ने नमशाल, सती मेय का चौरा आदि उपन्यासों में मार्क्सवादी चेतना का निरूपण किया है।

3 हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासकारों में बाबू बृंदावनलाल वर्मा का उल्लेख किया जा चुका है उनके अतिरिक्त चतुर सेन शास्त्री एवं हजारी प्रसाद द्विवेदी का नाम इस वर्ग में लिया जा सकता है। आचार्य हजारी प्रसाद जी ने 'बाण भट्ट की आत्मकथा', 'चारु चंद्रलेखा', 'पुनर्नवा' और 'अब रैक्व आख्यान' में इतिहास और कल्पना का सुन्दर समन्वय करते हुए रोचक उपन्यासों की रचना की है। इन उपन्यासों में ऐतिहासिक वातावरण की सुन्दर प्रस्तुति हुई। राहुल संकृत्यायन के 'सिंह सेनापति' और 'जय यौधेय' नमक ऐतिहासिक उपन्यास लिखे तथा रांगेय राघव ने 'मुदों का टीला' नामक ऐतिहासिक उपन्यास में मोहन जोदड़ो के गणतन्त्र का चित्रण किया है।

4. स्वतंत्रोत्तर हिन्दी उपन्यासों में '**आंचलिक उपन्यास'** एक महत्वपूर्ण उपलब्धि रही है। वे उपन्यास जिनमें किसी विशेष अंचल का चित्रण कथानक के द्वारा किया जाता है , इस वर्ग में आते हैं। हिन्दी के आंचलिक उपन्यासकारों में सर्वप्रमुख हैं – फणीश्वरनाथ 'रेणु' जिन्हों मैला आंचल (1954 ई.) तथा परती परिकथा (1957 ई.) नामक उपन्यासों में बिहार के ग्रामीण अंचल के रहन-सहन, रीति-रिवाज, राजनीतिक अस्थाओं, आदि का विशद चित्रण किया है। रेणु के अतिरिक्त अन्य आंचलिक उपन्यासकार हैं - नागार्जुन (रतिनाथ की चाची, बलचनमा, बाबा बटेसरनाथ, दुखमोचन, वरुण के बेटे), उदयशंकर भट्ट (सागर लहरें और मनुष्य), रांगेय राघव (कब तक पुकारूं)आदि।

5. आधुनिक हिन्दी उपन्यासों की नवीनतम धारा को **प्रयोगवदी उपन्यास** या आधुनिक बिध के उपन्यास कहा जा सकता है। औद्योगीकरण, बदलते हुए परिवेश, भ्रष्ट व्यवस्था, महानगरीय जीवन और यांत्रिक सभ्यता के परिणाम से आज जीवन में वाथव, विश्रृंखलता, अकेलापन एवं निराशा घर कर गयी है। कुंठा, संत्रास एवं असुरक्ष की भावना ने हमें संत्रस्त कर दीता है। उपन्यासकारों की दृष्टि इस ओर भी गई है और उन्होंने अनेक उपन्यासों में इन्हें अभिव्यक्ति प्रदान की है। मोहन राकेश के 'अंधेरे बंद कमरे' (1916 ई.) तथा 'न आने वाला कल' (1916 ई.) ऐसे ही उपन्यास हैं। इनके अतिरिक्त राजेंद्र यादव के 'उखड़े हुए लोग' में उपन्यासकार ने टूटते हुए मानव का चित्रण किया है। मन्नू भण्डारी ने 'आपका बंटी' में तलाक़शुदा दंपति के बच्चों पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव का निरूपण किया। तो नरेश मेहता के 'यह पाठ बंधु था' में अकेलेपन एवं अजनबीपन का बोध कराया गया है। **निर्मल वर्मा** के उपन्यासों – 'वे दिन' (1964 ई.), "लालटीनकी छत'और 'एक चिथड़ा सुख' में भी आधुनिकता बोध मुखरित हुआ है।

6. चरित्र प्रधान (व्यक्तिवादी) उपन्यास : आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी के मतानुसार ऐसे उपन्यासों को व्यक्तिवादी उपन्यास का नाम दिया जाता है। जो व्यक्तिगत जीवनघटना, व्यक्तिगत चरित्र, व्यक्तिगत जीवन दर्शन, व्यक्तिगत मनोविज्ञान या व्यक्तिगत जीवन समस्या का निरूपण करते हैं। इस वर्ग के उपन्यासकारों में भगवती प्रसाद वाजपेयी, उपेन्द्रनाथ अश्क, रामेश्वर शुक्ल, अंचल इत्यादि लेखक आते हैं।

भगवती प्रसाद वाजपेयी ने "पतिता की साधना" में नन्दा तथा होरी के चरित्रों में उच्चादश की प्रतिष्ठा की है। "चलते-चलते" में एक आधुनिक चिंतनशील युवक की जीवन यात्रा का चत्रण है। अश्क के उपन्यासों में नायकों तथा नायिकाओं के जीवन की मूल समस्या व्यक्ति के संघर्ष तथा वोकस की समस्या है। रामेश्वर शुक्ल ने भी अपने उपन्यासों में पात्रों के व्यक्ति गत सुख-दुख, आशा-आकांक्षा की सुन्दर झाँकी प्रस्तुत की है।

सामाजिक एवं मानवतावादी उपन्यास :

इस चरण में उपन्यास साहित्य काफ़ी समृद्ध हुआ। यह एक बड़ी शक्ति के रूप में स्थापित होने लगा। उपन्यासकारों ने न सिर्फ़ समाज के विभिन्न रूपों, प्रवृत्तियों, आदि का विस्तृत प्रत्यक्षीकरण किया बल्कि साथ ही साथ उसके निराकरण की प्रवृत्ति भी उत्पन्न किया। गांधी जी के नेतृत्व में स्वाधीनता संग्राम तो चल ही रहा था। मज़दूरों का अन्दोलन भी बढ रहा था। धीरे-धीरे राजनीति में वामपंथी विचारधारा का ज़ोर बढता गया। साहित्यकारों में भी हलचल दिखाई दी। 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई। प्रेमचंद जी इसके सभापति हुए। फलस्वरूप साहित्य के संघटित रूप से आंदोलन और प्रचार शुरु हुआ, जिसे आगे चलकर प्रगतिवादी साहित्य नाम दिया गया।

मानवतावादी लेखक मनुष्य को पशु-सामान्य धरातल से ऊपर का प्राणी मानता है। वह त्याग और तप को मनुष्य का वास्तविक धर्म मानता है। वह विश्वास करता है हालाकि मनुष्य में बहुत पशु-सुलभ वृत्तियां रह गई हैं, फिर भी वह पशु नहीं है। वर्षों की साधना से उसने अपने भीतर त्याग, तप, सौंदर्य-प्रेम और पर-दुख-कातरता जैसे गुणों का विकास किया है। ये गुण ही मनुष्य की निशानी हैं। उसके भीतर संभावनाएं अनेक हैं। इसी मर्त्यलोक को अद्भुत अपूर्व शांतिस्थल बनाने की क्षमता इस मनुष्य में है।

प्राचीन धर्मभावना में मनुष्य को परलोक में सुखी बनाने का संकल्प था। मानवतावदी दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से प्राचीन धर्मभावना के विपरीतगामी था। परिणामस्वरूप आचारों, विश्वासों और क्रियाओं के मूल्य में अंतर आया। ईश्वर और मोक्ष को मानना गौण बात हो गई, मनुष्य को इसी लोक में सुखी बनाना मुख्य।

सामाजिक यथार्थ के चित्रण और मनुष्य के चातुर्दिक विकास और हित पर विशेष बल देने वालों उपन्यास के परम्परा में **शिवपूजन सहाय** का नाम भी आता है। **शिवपूजन सहाय** का जन्म 1893 में बिहार के शाहाबाद ज़िले के उनवास गांव में हुआ था। हाई स्कूल की परीक्षा पास कर हिन्दी शिक्षक नियुक्त हो गए। हिन्दी की पत्रिकाओं 'मतवाला','बालक','आदर्श','समन्वय','गंगा','जागरण'और'साहित्य' का सम्पादन कार्य किया। छपरा के राजेन्द्र कॉलेज के हिन्दी विभागाध्यक्ष पद को सुशोभित किया। 1960 में पद्मभूषण से सम्मनित किया गया। देहावसान 1963 में हुआ। इनकी भाषा सहज और स्वाभाविक है। बोल-चाल के व उर्दू शब्दों का प्रयोग हुआ है। भाषा में अनुप्रासों व भाषण कला के दर्शन होते हैं।

9.4 प्रतिनिधि रचनाएँ और रचनाकार :

हिंदी के प्रसिद्ध उपन्यासों की सूचि में पहले स्थान पर मेरे प्रिय उपन्यासकार **प्रेमचंद जी द्वारा रचित "गोदान"** है। इसमें प्रेमचंद जी ने गरीब किसानों की बेबसी, निराशा का संपूर्ण उल्लेख किया है। गाँव का गरीब किसान जमींदार के ऋण तले पिसता ही जाता है। कहानी विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व करने वाले कई पात्रों के इर्द-गिर्द घूमती है। कहानी के एक पहलू में गरीब होरी का कठिन जीवन दर्शया गया है, जो जिंदगी भर मेहनत करता है और अनेक कष्ट सहता है। कहानी का दूसरा पहलू शहर से जुड़ा है, जिसमे दर्शाया गया है कैसे शहरी- अमीर धन को अपने शौक को पूरा करने में उड़ा देता है।

धर्मवीर भारती जी द्वारा कृत "गुनाहों का देवता" हिंदी साहित्य की सबसे लोकप्रिय प्रेम कहानियों में से एक है। यह कहानी चंदर और सुधा की अधूरे प्रेम के इर्द-गिर्द घूमती है। जिसमे चंदर को अपने कॉलेज के प्रोफेसर डॉ शुक्ला की

बेटी सुधा से प्यार हो जाता है। चंदर निम्न जाति से ताल्लुक रखने के कारण सुधा के पिता से सुधा का हाथ नहीं मांग पाता। इस कहानी में लेखक ने जातिवाद भेदभाव को भी दर्शाया है।

बंकिम चंद्र चटर्जी जी (कई लोग उन्हें बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय नाम से भी जानतें हैं) द्वारा लिखी **आनंदमठ** एक महान लोकप्रिय साहित्यिक कृति है। जब हमारा देश विदेशी शासन (मुगल और अंग्रेजो) के अधीन था तब बंकिम बाबू ने इस महान रचना के माध्यम से राष्ट्रीय पहचान को बढ़ाने और मजबूत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। वंदे मातरम (माता की वन्दना करता हूँ) देशभक्ति गीत आनंदमठ के पन्नों से ही उजागर हुआ है। आनंदमठ में सत्यानंद नाम के संत भारत को मुगल और अंग्रेजो के शासन से मुक्त करना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने विशाल सेना इक्क्ठा की लोगो के अन्दर देश-प्रेम की भावना जागृत कर मुगलों और अंग्रेजों के खिलाप भीषड़ युद्ध किया।

कमलेश्वर जी द्वारा रचित "कितने पाकिस्तान " इतिहास और मानवता पर केंद्रित है। यह रचना दुनिया में शांति लाने की सीख देती है। इसके अतिरिक्त लेखक यह भी मांग करतें है कि भारत को विभाजन की परंपरा समाप्त करनी चाहिए। विभाजन से लोगों के जीवन को नुकसान पहुँचता है।

प्रेमचंद जी द्वारा कृत "निर्मला" हिंदी के प्रसिद्ध उपन्यासों में से एक है। यह एक बाल वधू की कहानी है, जिसमे निर्मला का विवाह उसके पिता के उम्र वाले व्यक्ति से होता है। निर्मला के पति को अपने बेटे और निर्मला के रिश्ते में शक होता है, जिसके कारण वह अपने बड़े बेटे को खो देता है। निर्मला में प्रेमचंद जी ने दहेज-प्रथा, बाल-विवाह और महिलाओं की बुरी स्थिति जैसे मुद्दों को भली भांति दर्शाया है।

भीष्म साहनी जी द्वारा कृत "तमस " एक छोटे से शहर की कहानी है, जिसमे हिन्दू और मुस्लिम दंगों में फंस जाते है। दंगे पूरे पाँच दिनों तक चलते है। इन पूरे पाँच दिनों में कई जिंदगियां बरबाद हो जाती है। यह उपन्यास देश के विभाजन से पहले की घिनौनी मानसिकता के वृत्तान्त और ख़ौफ़नाक विधर्म-संबंधी दंगों को चित्रित करता है।

श्रीलाल शुक्ल जी द्वारा रचित "राग दरबारी " एक प्रशिद्ध व्यंग्य है। जिसमे रंगनाथ नाम का पात्र कुछ समय के लिए अपने गाँव आता है। वह देखता है की इस गाँव का प्रत्येक आदमी भ्रष्टाचार में लिप्त है और हर व्यक्ति अपने फायदे के लिए कुछ भी कर सकता है।

शिवाजी सावन जी द्वारा लिखा गया उपन्यास "मृत्युंजय " में लेखक ने कर्ण के व्यक्तित्व को भली-भाँति दर्शाया है। उपन्यास के अंत तक कर्ण इसी उलझन में रहता है कि मैं कौन हूँ? मैं क्यों सबसे अलग हूँ? मृत्युंजय में लेखक ने पौराणिक कथाओं और सनातन संस्कृति को बख़ूबी से उजागर किया है।

प्रेमचंद जी कृत "गबन" हिंदी के प्रसिद्ध उपन्यासों में से एक है। यह कहानी रामनाथ और जलापा की है। जलापा का विवाह रामानाथ से होता है और शादी के बाद जलापा रामनाथ से गहनों की मांग करती है। रामनाथ गहने बनाने के लिए उधार ले लेता है, पर चूकता करने के लिए उसके पास पैसे नहीं रहते। गलती से रामनाथ अपने ऑफिस में गबन कर देता है और पुलिस के डर से कोलकाता भाग जाता है। यहाँ से कहानी में एक नया मोड़ आता है।

काशीनाथ सिंह जी द्वारा रचित "काशी का अस्सी" रचना पाँच कहानियों से समृद्ध हैं। ये कहानियाँ 1990 की घटिया राजनीतिक और बेबस सामाजिक प्रणाली को उजागर करती हैं। हर कहानी समाज और राजनीति के स्वरूप पर तंज कसती है।

फणीश्वर नाथ रेणु जी द्वारा लिखी "मैला आँचल" एक युवा डॉक्टर की कहानी है जो अपनी शिक्षा शहर से पूरी करने के बाद बिहार के पिछड़े गाँव की हालत सुधारने का जिम्मा अपने कंधों में लेता है। वह ग्रामीण जीवन के दुःख और अंधविश्वास का सामना करता है। कहानी के अन्त में गाँव के लोगो की सोई हुई चेतना जाग जाती है।

राही मासूम रज़ा जी द्वारा कृत "आधा गाँव "आजादी के दौरान भारत विभाजन को लेकर गंगौली गाँवो के लोगों का दर्द व्यक्त करती है। गंगौली गाँव इस पुस्तक का मुख्य केंद्र है। गंगौली के मुस्लिम सोचते है कि पाकिस्तान निर्माण से हमें क्या मतलब? इनके लिए गंगौली ही इनका घर था और ये यहाँ से कहीं नहीं जाना चाहते थे।

यशपाल जी द्वारा रचित "झूठा सच" भारत विभाजन की घटनाओं पर आधारित है। विभाजन के दौरान लोगों की मुश्किलों का लेखक ने बखूबी चित्रण किया है। उन्होंने उपन्यास को दो खंडों में लिखा है- पहला वतन और देश और दूसरा देश का भविष्य शीर्षक के तहत प्रकाशित हुआ था।

महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में उनका प्रगतिशील दृष्टिकोण :

डॉ रानू मुखर्जी । बड़ौदा भारतीय साहित्य जगत में आधुनिक युग के प्रारंभ से ही नारी लेखन को प्रधानता दी जाने लगी । बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में महादेवी वर्मा, सुभद्रा कुमारी चौहान अपनी रचना धर्मिता के साथ उभरकर आई। इसके प्रभाव स्वरूप स्वाधीनता के पश्चात साहित्य जगत में विशेषतः कथा साहित्य के क्षेत्र में अनेक नवोदित महिला रचनाकारों ने अपना विशेष योगदान दिया। इन्होंने नारी मुक्ति अभियान को अधिक महत्व दिया। इसके साथ-साथ अस्मिता के संघर्ष से शुरू हुए लेखन में मानव जीवन के सभी पहलुओं पर भी प्रकाश डाला गया। इन सभी में मूल रूप से नारी जीवन को ही प्रधानता दी गई । जिसमें नारी चेतना, शोषण , आपसी भेदभाव , आदि सवालों के साथ दलित आदिवासी एवं मजदूर समाज के वर्ण वर्ग संबंधी मजदूर या भूमिहीन किसान औरतें आदि के चित्र लेखिकाओं की कलम से उभरकर आई ।

भारतीय नारी विमर्श अपने चरित्र में पश्चिम के नारीवाद जितना न तो अतिवादी है और न ही वह पुरूष को अपना एक मात्र शत्रु समझता है। वह नारी के व्यक्तित्व जितना ही पुरूष के व्यक्तित्वचा को महत्वपूर्ण मानता है । नारी की प्रगतिशील मानसिकता के लिए एक सबसे बडी समस्या वे स्त्रियां है जो अभी तक प्रगतिशीलता की अवधारणा से परिचित नहीं हैं या पुरूष मानसिकता से ग्रस्त हैं। व्यवहारिक स्तर पर प्रश्न यही है कि नारी को उसकी प्रगतिशीलता से परिचित करवाकर उन्हें अपने हक और अधिकारों के प्रति कैसे जागरुक बनाया जाय और उनकी मुक्ति की दिशा में उनकी शक्ति का कैसे सकारात्मक उपयोग किया जाए। इसी दिशा की ओर कदम बढाती हुई महिला उपन्यासकारों ने अपनी कलम को इस दिशा की ओर मोड़ा ताकि नारी मानसिकता की तह तक जाकर उसे सशक्त बनाएं।

अर्जित धन के प्रति पुरूषों का मोह इतना अधिक होता है कि मृत्यु के बाद भी वह किसी और के हाथों न जाए - उनके अपनी औरत, अपने संतान के हाथों ही रहे - इसकी व्यवस्था उन्होंने स्त्रियो की स्वतंत्रेता पर पहरे बिठाकर और परिवार का दुर्ग और मजबूत बनाकर किया। बाद में औरतें जब स्वयं अपना धन अर्जित करने लगी तब और शारीरिक मानसिक रूप से अपने निर्णय लेने लगी तब इन प्रतिबंधों का अर्थ कुछ खास रहा ही नहीं। इन विषयों को आधार बनाकर महिला उपन्यासकारों ने समाज मे जागृति लाने के लिए अपनी लेखनी का माध्यम बनाया। ऐसा नहीं है कि जीवन शैली , उन्नत सोच और आर्थिक स्वतंत्रता के कारण स्त्रियों का स्नेह ममत्व मर गया है । पहले स्त्रियां संबंध

निभाती थी तो आर्थिक परतंत्रताजन्य विवशता उनके साथ रहती थी , पति आदि से विरोध भी है तो चुप चाप सहना है , निभाना है , हाथ पांव बंधे है। अब आर्थिक स्वतंत्रता है तो उपाय बहुतेरे हैं। शिक्षित होने के कारण आत्मिक - बौद्धिक और नैतिक परिष्कार भी उनमें आया है। इस स्थिति का भरपूर प्रयोग उपन्यासों मे मिलता है।

9.5 सारांश :

अर्नेस्ट ए. बेकर ने उपन्यास की परिभाषा देते हुए उसे गद्यबद्ध कथानक के माध्यम द्वारा जीवन तथा समाज की व्याख्या का सर्वोत्तम साधन बताया है। यों तो विश्वसाहित्य का प्रारंभ ही संभवत: कहानियों से हुआ और वे महाकाव्यों के युग से आज तक के साहित्य का मेरुदंड रही हैं, फिर भी उपन्यास को आधुनिक युग की देन कहना अधिक समीचीन होगा। साहित्य में गद्य का प्रयोग जीवन के यथार्थ चित्रण का द्योतक है। साधारण बोलचाल की भाषा द्वारा लेखक के लिए अपने पात्रों, उनकी समस्याओं तथा उनके जीवन की व्यापक पृष्ठभूमि से प्रत्यक्ष संबंध स्थापित करना आसान हो गया है। जहाँ महाकाव्यों में कृत्रिमता तथा आदर्शोन्मुख प्रवृत्ति की स्पष्ट झलक देखने को मिलती है, आधुनिक उपन्यासकार जीवन की विशृंखलताओं का नग्न चित्रण प्रस्तुत करने में ही अपनी कला की सार्थकता देखता है।

यथार्थ के प्रति आग्रह का एक अन्य परिणाम यह हुआ कि कथा साहित्य के अपौरुषेय तथा अलौकिक तत्व, जो प्राचीन महाकाव्यों के विशिष्ट अंग थे, पूर्णतया लुप्त हो गए। कथाकार की कल्पना अब सीमाबद्ध हो गई। यथार्थ की परिधि के बाहर जाकर मनचाही उड़ान लेना उसके लिए प्राय: असंभव हो गया। उपन्यास का आविर्भाव और विकास वैज्ञानिक प्रगति के साथ हुआ। एक ओर जहाँ विज्ञान ने व्यक्ति तथा समाज को सामन्य धरातल से देखने तथा चित्रित करने की प्रेरणा दी वहीं दूसरी ओर उसने जीवन की समसयाओं के प्रति एक नए दृष्टिकोण का भी संकेत किया। यह दृष्टिकोण मुख्यत: बौद्धिक था। उपन्यासकार के ऊपर कुछ नए उत्तरदायित्व आ गए थे। अब उसकी साधना कला की समस्याओं तक ही सीमित न रहकर व्यापक सामाजिक जागरूकता की अपेक्षा रखती थी। वस्तुत: आधुनिक उपन्यास सामाजिक चेतना के क्रमिक विकास की कलात्मक अभिव्यक्ति है। जीवन का जितना व्यापक एवं सर्वांगीण चित्र उपन्यास में मिलता है उतना साहित्य के अन्य किसी भी रूप में उपलब्ध नहीं।

सामाजिक जीवन की विशद व्याख्या प्रस्तुत करने के साथ ही साथ आधुनिक उपन्यास वैयक्तिक चरित्र के सूक्ष्म अध्ययन की भी सुविधा प्रदान करता है। वास्तव में उपन्यास की उत्पत्ति की कहानी यूरोपीय पुनरुत्थान (रेनैसाँ) के फलस्वरूप अर्जित व्यक्तिस्वातंत्रय के साथ लगी हुई है। इतिहास के इस महत्वपूर्ण दौर के उपरांत मानव को, जो अब तक समाज की इकाई के रूप में ही देखा जाता था, वैयक्तिक प्रतष्ठा मिली। सामंतवादी युग के सामाजिक बंधन ढीले पड़े और मानव व्यक्तित्व के विकास के लिए उन्मुक्त वातावरण मिला। यथार्थोन्मुख प्रवृत्तियों ने मानव चरित्र के अध्ययन के लिए भी एक नया दृष्टिकोण दिया। अब तक के साहित्य में मानव चरित्र के सरल वर्गीकरण की परंपरा चली आ रही है। पात्र या तो पूर्णतया भले होते थे या एकदम गए गुजरे। अच्छाइयों और त्रुटियों का सम्मिश्रण, जैसा वास्तविक जीवन में सर्वत्र देखने को मिलता है, उस समय के कथाकारों की कल्पना के परे की बात थी। उपन्यास में पहली बार मानव चरित्र के यथार्थ, विशद एवं गहन अध्ययन की संभावना देखने को मिली।

अंग्रेजी के महान् उपन्यासकार हेनरी फ़ील्डिंग ने अपनी रचनाओं को गद्य के लिखे गए व्यंग्यात्मक महाकाव्य की संज्ञा दी। उन्होंने उपन्यास की इतिहास से तुलना करते हुए उसे अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण कहा। जहाँ इतिहास कुछ विशिष्ट व्यक्तियों एवं महत्वपूर्ण घटनाओं तक ही सीमित रहता है, उपन्यास प्रदर्शित जीवन के सत्य, शाश्वत और संर्वदेशीय महत्व रखते हैं। साहित्य में आज उपन्यास का वस्तुत: वही स्थान है जो प्राचीन युग में महाकाव्यों का था। व्यापक सामाजिक चित्रण की दृष्टि से दोनों में पर्याप्त साम्य है। लेकिन जहाँ महाकाव्यों में जीवन तथा व्यक्तियों का आदर्शवादी चित्र मिलता है, उपन्यास, जैसा फ़ील्डिंग की परिभाषा से स्पष्ट है, समाज की आलोचनात्मक व्याख्या प्रस्तुत करता है। उपन्यासकार के लिए कहानी साधन मात्र है, साध्य नहीं। उसका ध्येय पाठकों का मनोरंजन मात्र भी नहीं। वह सच्चे अर्थ में अपने युग का इतिहासकार है जो सत्य और कल्पना दोनों का सहारा लेकर व्यापक सामाजिक जीवन की झाँकी प्रस्तुत करता है।

उपसंहार :

कई उपन्यासों के अतिरिक्त और भी कई प्रकार के उपन्यास लिखे जा रहे हैं जैसे – 'इंसान', 'निर्माण पथ', 'महल और मकान' और 'बदलती','राहें' । जिनमें यज्ञावत्त शर्मा ने भारतीय जनता का विकासोन्मुखी निर्माण चेतना और इसके संगर्ष पारायण जीवन को केंद्र बनाया है । व्यंग्यात्मक उपन्यासों की भी रचना होने लगी है इस क्षेत्र में श्री लाल शुक्ला का उपन्यास 'राग दरबारी' उल्लेखनीय है । इसमें जीवन के बदलते हुए मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में, बाहर और गाँव के जन जीवन, समाज व्यवस्था तथा सरकारी व अर्ध सरकारी तंत्र में फैले हुए भ्रष्टाचार का व्यंग्यात्मक शैली में चित्रण है । इसी तरह का एक और उपन्यास बड़ी उज्जमाँ का 'एक डुड़े की मौत' है, जिसमें दफ्तर के भीतर पायी जानेवाली बुराइयों का वर्णन है । नवीनतम उपन्यासकारों में मोहन राकेश का नाम उल्लेखनीय है । इनका नव्यतम उपन्यास 'नीली रोशनी की वाहे' धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुआ है ।

डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त ने वर्तमान उपन्यासकारों को तीन वर्गों में विभक्त है – अ) वे जो प्राचीन परंपराओं का निर्वाह करते हुए जीवन के केवल सद पक्ष को स्वीकार करते हुए उसे स्वस्थ उज्वल और जीवन्त रूप में उपस्थित कराते हैं । , आ) वे जो जीवन में श्लील और अशलील, अच्छाई तथा बुराई का सम्मिश्रण मानते हुए अंततः उनमें सद्र पक्ष को महात्व देते हैं । इ) तीसरा वर्ग उन उपन्यासकारों का है जिनकी दृष्टि केवल आश्रद पर टका रहती है । वे फ्रायड युग, एजलर तथा मार्क्सवादी सिद्धांतों की आड़ में मानव की पाशविक वृत्तियों, अनैतिकताओं,और जघन्य कुंठाओं को मनोविश्लेषण के नाम पर चित्रित करते हैं । हिन्दी साहित्य में उपन्यास का भविष्य उज्जवल हैं, इसलिए कि मानव जीवन जितना ही व्यस्त होता जाता है उतना ही अधिक जटिल समस्याएं उत्पन्न होती जाती हैं और उन्हें उपन्यासों के माध्यम से ही प्रस्तुत किया जा सकता है । अतः उपन्यास आधुनिक युग में अभिव्यक्ति का अर्वोत्तम साधन है ।

9.6 अभ्यास के लिए प्रश्न :

1. उपन्यास की परिभाषा देते हुए उसके स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।
2. उपन्यास की कथावस्तु के गुणों पर प्रकाश डालिए
3. कथावस्तु के विषय के आधार पर उपन्यासों का वर्गीकरण कीजिए।
4. हिन्दी उपन्यासों में चरित्र की महत्ता का प्रतिपादन लीजिए।
5. उपन्यास में कथोपकथन एवं संवाद की विशेषताएँ बताइए।
6. उपन्यास की भाषा एवं शैली पर एक निबन्ध लिखिए।

7. हिन्दी उपन्यासों के विकास को काल, क्रमानुसार विभाजित कीजिए।
8. प्रेमचन्द युग के उपन्यासों की वोशेषताएँ।
9. प्रेमचन्द युग उपन्यास कला की दृष्टि से समृद्ध हे। पुष्टि कीजिए।
10. प्रेमचंदोत्तर उपन्यास साहित्य के विकास क्रम को रेखांकित कीजिए।

9.7 संदर्भ ग्रंथ सूचि :

1. साहित्यक निबन्ध - गणपति चन्द्र गुप्त
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र
3. उपन्यास कला - विनोद शंकर व्यास
5. हिन्दी उपन्यास - डॉ प्रताप नारायण तंडन
6. हिन्दी उपन्यास की शिल्प विधि का विकास - डॉ. कृष्ण नाग
9. हिन्दी उपन्यास : उद्भव और विकास - डॉ. सुरेश सिन्हा

****

- **डॉ. यम. मंजुला**

10 कहानी विधा

उद्धेश्य

सामान्यत: मनुष्य की बोलने या लिखने पढ़ने की छंदरहित साधारण व्यवहार की भाषा को गद्य (prose) कहा जाता है। इसमें केवल आंशिक सत्य है क्योंकि इसमें गद्यकार के रचनात्मक बोध की अवहेलना है। साधारण व्यवहार की भाषा भी गद्य तभी कही जा सकती है जब यह व्यवस्थित और स्पष्ट हो। रचनात्मक प्रक्रिया को ध्यान में रखते हुए गद्य को मनुष्य की साधारण किंतु व्यवस्थित भाषा या उसकी विशिष्ट अभिव्यक्ति कहना अधिक समीचीन होगा। कहानी, हिन्दी में गद्य लेखन की एक विधा है। उन्नीसवीं सदी में गद्य में एक नई विधा का विकास हुआ जिसे कहानी के नाम से जाना गया। कहानी में वास्तविकता का पुट देने के लिये देशकाल अथवा वातावरण का प्रयोग किया जाता है। प्रस्तुतीकरण के ढंग में कलात्मकता लाने के लिए उसको अलग-अलग भाषा व शैली से सजाया जाता है। कहानी में केवल मनोरंजन ही नहीं होता, अपितु उसका एक निश्चित उद्देश्य भी होता है। पहले कहानी का उद्देश्य उपदेश देना और मनोरंजन करना माना जाता है। आज इसका लक्ष्य मानव- जीवन की विभिन्न समस्याओं और संवेदनाओं को व्यक्त करना है। यही कारण है कि प्रचीन कथा से आधुनिक हिन्दी कहानी बिल्कुल भिन्न हो गई उसकी आत्मा बदली है और शैली भी। कहानी के तत्व- मुख्यतः कहानी के छ तत्व माने गये है।

विषय सूची - II

10.1. प्रस्तावना

10.2. कहानी के तत्व

1.कथावस्तु 2.चरित्र-चित्रण 3. कथोपकथन

4.देशकाल 5. भाषाशैली 6. उद्देश्य।

10.3. कहानी का ऐतिहासिक उद्भव और विकास

1. प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी उपन्यास
2. प्रेमचन्द युगीन हिन्दी उपन्यास
3. प्रेमचंदोत्तर हिन्दी उपन्यास

10.4 स्वतंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी : नयी कहानी

10.5 सारांश

10.6 अभ्यास प्रश्न

10.1. प्रस्तावना

'कहानी' शब्द संस्कृत कथानिका प्राकृत कहाणिआ, सिंहली-मराठी कहानी से विकसित हुआ है जिसका अर्थ मौखिक या लिखित कल्पित या वास्तविक, तथा गद्य या पद्य में लिखी हुई कोई भाव प्रधान या विषय प्रधान घटना, जिसका मुख्य उद्देश्य पाठकों का मनोरंजन करना, उन्हें कोई शिक्षा देना अथवा किसी वस्तु स्थिति से परिचित कराना होता है। इसका अंग्रेजी पर्याय 'स्टोरी' है।

आधुनिक हिंदी कहानी का प्रारंभ उन्नीसवीं सदी में हुआ जिसे कहानी या कथा कहते हैं इसका शाब्दिक अर्थ 'कहना' है। इस अर्थ के अनुसार जो कुछ भी कहा जाये कहानी है। किंतु विशिष्ट अर्थ में किसी विशेष

घटना के रोचक ढंग से वर्णन को 'कहानी' कहते हैं। 'कथा' एवं 'कहानी' पर्यायवाची होते हुए भी समानाथ नहीं हैं। दोनों के अर्थों में सूक्ष्म अंतर आ गया है। कथानक व्यापक अर्थ की प्रतीति कराता है इसमें कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी आदि का समावेश हो जाता है। कथा साहित्य के अंतर्गत मुख्य रूप से कहानी एवं उपन्यास को ही माना जाता है जबकि कहानी के अंतर्गत कहानी और लघु कथाएं ही आती हैं।

यूरोप में विकसित कहानी का स्वरूप अंग्रेजी और बंगला के माध्यम से बीसवीं शताब्दी के आरंभ में भारत आया। प्राचीन कहानी एवं आधुनिक कहानी के स्वरूप में पर्याप्त अंतर है। आधुनिक कहानी जनसाधारण मनुष्य जीवन से संबंधित लौकिक यथार्थवादी, विचारात्मक धरती के सुख तक सीमित है।

10.2. कहानी के तत्व :

रोचकता, प्रभाव तथा वक्ता एवं श्रोता या कहानीकार एवं पाठक के बीच यथोचित सम्बद्धता बनाये रखने के लिये सभी प्रकार की कहानियों में निम्नलिखित तत्व महत्वपूर्ण माने गए हैं कथावस्तु, पात्र अथवा चरित्र-चित्रण, कथोपकथन अथवा संवाद, देशकाल अथवा वातावरण, भाषा-शैली तथा उद्देश्य। कहानी के ढाँचे को कथानक अथवा कथावस्तु कहा जाता है। प्रत्येक कहानी के लिये कथावस्तु का होना अनिवार्य है क्योंकि इसके अभाव में कहानी की रचना की कल्पना भी नहीं की जा सकती। कथानक के चार अंग माने जाते हैं - आरम्भ, आरोह, चरम स्थिति एवं अवरोह। कहानी का संचालन उसके पात्रों के द्वारा ही होता है तथा पात्रों के गुण-दोष को उनका 'चरित्र चित्रण' कहा जाता है। चरित्र चित्रण से विभिन्न चरित्रों में स्वाभाविकता उत्पन्न की जाती है। संवाद कहानी का प्रमुख अंग होते हैं। इनके द्वारा पात्रों के मानसिक अन्तर्द्वन्द एवं अन्य मनोभावों को प्रकट किया जाता है। कहानी में वास्तविकता का पुट देने के लिये देशकाल अथवा वातावरण का प्रयोग किया जाता है। प्रस्तुतीकरण के ढंग में कलात्मकता लाने के लिए उसको अलग-अलग भाषा व शैली से सजाया जाता है। कहानी में केवल मनोरंजन ही नहीं होता, अपितु उसका एक निश्चित उद्देश्य भी होता है।

कहानी एक अत्यंत लोकप्रिय विधा के रूप में स्वीकृत हो चुकी है। प्रायः सभी पत्र-पत्रिकाओं में, पाठकीय माँग के फलस्वरूप, कहानियों का छापा जाना अनिवार्य हो गया है। इस देश की प्रत्येक भाषा में केवल कहानियों की पत्रिकाएँ भी संख्या में कम नहीं हैं। रहस्य, रोमांस और साहस की कहानियों के अतिरिक्त उनमें जीवन को गंभीर रूप में लेने वाली कहानियाँ भी छपती हैं। साहित्यिक दृष्टि से इन्हीं का महत्व है। ये कहानियाँ चारित्रिक विशेषताओं, 'मूड', वातावरण, जटिल स्थितियों आदि के साथ सामाजिक-आर्थिक जीवन से भी संबद्ध होती हैं। सामानयतः कहानी मीमांसा के लिए छः तत्वों का उल्लेख किया जाता है –

1.कथावस्तु 2.चरित्र-चित्रण
3. कथोपकथन 4.देशकाल
5. भाषाशैली 6. उद्देश्य।

एक श्रेष्ठ सफल कहानी के लिए निम्नलिखित आठ तत्त्व अपेक्षित हैं –

1. शीर्षक –

यह कहानी का न केवल प्राथमिक एवं महत्त्वपूर्ण उपकरण है अपितु कहानी का दर्पण भी है। कहानी अच्छी है अथवा बुरी, इसका बहुत-कुछ अंकन शीर्षक पर भी निर्भर है। भाव अथवा अर्थ-सूचकता के आधार पर शीर्षक के अनेक रूप हो सकते हैं।

कुछ प्रमुख रूप इस प्रकार हैं – (क) स्थान-सूचक (ईदगाह-प्रेमचन्द), (ख) घटना-व्यापारसूचक (पुरस्कार-प्रसाद), (ग) कौतूहलजनक (उसने कहा था-गुलेरी), (घ) व्यंग्यपूर्ण (आदम की डायरी-अज्ञेय), (ङ) अर्थपूर्णता, (च) विषया

2. कथावस्तु –

कहानी में कथावस्तु का स्थान मुख्य है। यही कहानी का वह अंग है जिस पर कहानी निर्मित होती है। आरंभिक काल में कथावस्तु ही कहानी की सब कुछ हुआ करती थी किन्तु आज जब से कहानी में मनोवैज्ञानिक अनुभूति और मनोविश्लेषण का प्रादुर्भाव हुआ, सब से इसका रूप अत्यन्त सूक्ष्म होता जा रहा है। अनुभूतियों, घटनाओं और स्थूल होगी किन्तु अनुभूतियों का प्रादुर्भाव हमारी मनोवैज्ञानिक सत्यता अथवा अंतर्द्वन्द और मनोविश्लेष्य के धरातल से हुआ है , तब कथानक का रूप कहानी में अत्यन्त सूक्ष्म और गौण होगा। आधुनिक कहानी कला में कहीं कहीं पत्रों एवं परिस्थितियों के चित्रण से कहानी प्रस्तुत हो जाती है , किन्तु फिर भी व्यापक रूप में कथावस्तु का सहारा किसी न किसी रूप में कहानीकार को लेना ही पड़ता है। इस प्रकार कथावस्तु के स्वरूप में वैविध्य हो जाता है जो इस प्रकार है –

1. घटना प्रथान कथावस्तु 2. चरित्र प्रधान 3. भाव प्रधान

घटना प्रथान कथावस्तु

घटना प्रथान कथावस्तु में घटना अथवा करी व्यापार की शृंखलाएँ ही इनके निर्माण में चरितार्थ होती है। इसमें कार्य व्यापार की सीमा स्वाभाविकता से बहुत आगे बढ़ जाती है – अर्थात दैवी संयोगी और अति मानवीय शक्तियाँ भी कार्यरत होती हैं। जासूसी कहानियों की कथावस्तु इसका सुन्दर उदाहरण है। यह कहानी का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। कहानी के शरीर में कथानक हड्डियों के समान है, अतः कथानक या कथावस्तु की रचना अत्यन्त वैज्ञानिक तरीके से क्रमिक विकास के रूप में होनी चाहिये।

चरित्र प्रथान कथावस्तु :

इसमें घटना और संयोग गौण हो जाता है , चरित्र और विश्लेषण ही मुख्य हो जाता है। कथा-सूत्र किसी मुख्या पात्र की रेखाओं में अपना विकार पता है। ऐसे कथानकों से चरित्र विश्लेषण अथवा चरित्र अध्ययन के धरातल से कार्य व्यापार लिए जाते है। अतएव इसका रूप अपेक्षाकृत अधिक सूक्ष्म और कलात्मक होता है। इन कथानकों में हहया घटनाएँ, कार्य व्यापार बिलकुल नहीं प्रयुक्त होते वरन चारित्रिक अंतर्व्दद्व , पत्रों के मानसिक ऊहापोह और विभिन्न परिस्थितियों में व्यक्त होनेवाली उनकी समस्त चरित्रक विशेषताएँ उसके निर्माण में चरितार्थ होती हैं। अज्ञेय और जैनेद्र कुमार की मनोवैज्ञानिक धरातल की कहानियों के कथानक इसके महत्वपूर्ण उदाहरण है।एक अच्छे कथानक के लिए चार प्रमुख गुण अपेक्षित हैं-मौलिकता, संभाव्यता, सुसं- गठिकता एवं रोचकता। मौलिकता से तात्पर्य यहाँ नवीनता से है।

भावप्रधान कथावस्तु :

पत्र की अनुभूति और भाव इस प्रकार की कथावस्तु के मुख्य सूत्र है। इसमे कथावस्तु सूक्ष्म और अमूर्त होती है। इस प्रकार की कथावस्तु में पात्र की कोई विशेष भाव दिशा अथवा मनोदशा स्वयं अपने समग्र विकास में कहानी का मेरुदंड बन जाती है। इसमें चरित्र की मनोदशा और उसके व्यक्तित्व की समूची इकाइयाँ संकेतात्मक अथवा व्यंजनात्मक रूप में संगठित की जाती है। अज्ञेय की प्रसिद्ध कहानी 'कोठरी की बात' इस प्रकार की कथासूत्र का महत्वपूर्ण उदाहरण है। किसी भी अच्छे कथानक की पांच अवस्थाएँ मानी गई हैं-

1. आरम्भ, 2. विकास, 3. मध्य, 4. चरम सीमा तथा, 5. अन्त इन पाँच अवस्थाओं से युक्त कहानी एक सफल कहानी मानी जाती है।

3 पात्र और चरित्र चित्रण :

कथावस्तु के बाद चरित्र-चित्रण कहानी का अत्यन्त आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। वस्तुतः पात्र कहानी के सजीव संचालक होते हैं। पात्रों के माध्यम से एक ओर कथानक का आरम्भ, विकास और अन्त होता है, तो दूसरी ओर हम कहानी में इनसे आत्मीयता प्राप्त करते हैं।

जहाँ तक पात्रों के चयन का सम्बन्ध है वे सर्वथा सजीव और स्वाभाविक होने चाहिए तथा पात्रों की अवतारणा कल्पना के धरातल से न होकर कहानीकार की आत्मानुभूति के धरातल से होनी चाहिये।

कहानी में पात्रों की भूमिका के आधार पर उन्हें तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है -मुख्य, सहायक एवं खल। इस तरह के वर्गीकरण से कहानी के नायक तथा उसके सहयोगी या विरोधी पात्रों का चरित्रांकन किया जाता है।

पात्रों के स्वभाव, उनके व्यक्तित्व तथा उनकी चिन्तन प्रणाली के आधार पर कई विभाग किये जा सकते हैं, जैसे-आदर्शवादी, यथार्थवादी, व्यक्तिवादी, मनोवैज्ञानिक, प्रतीकात्मक, ऐतिहासिक, पौराणिक आदि। जहाँ तक चरित्र-चित्रण अथवा पात्र-योजना के गुणों का सम्बन्ध है, उसमें निम्नलिखित गुण अपेक्षित हैं – अनुकूलता, मौलिकता, स्वाभाविकता, सजीवता, यथार्थता, सहृदयता तथा अन्तर्द्वन्द्वात्मकता।

4. कथोपकथन या संवाद योजना :

कथोपकथन कहानी का महत्त्वपूर्ण अंग है। यदि किसी कहानी में संवाद न होकर केवल वर्णन ही होंगे तो उस कहानी के पात्र अव्यक्त रह जायेंगे तथा प्रभावशीलता एवं संवेदनशीलता नष्ट हो जायेगी, परन्तु यदि केवल संवाद ही होंगे, तो वह कहानी न रह कर एकांकी नाटक बन जायेगी। अतः कहानी में संवाद वर्णन में उचित समन्वय होना चाहिये।

कहानी में कथोपकथन का कार्य कथा को गति प्रदान करना, पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं को स्पष्ट करना, भाषा-शैली का निर्माण करना तथा कथा को रस की स्थिति तक पहुँचाना है।

सफल कथोपकथन वे कहे जायेंगे जो स्वाभाविक एवं परिस्थिति के अनुकूल हों, जिनमें जिज्ञासा एवं कुतूहलता उत्पन्न करने की क्षमता हो। संक्षिप्तता एवं ध्वन्यात्मकता भी कथोपकथन के गुण हैं।

5. भाषा-शैली

भाषा कहानी का पांचवाँ मूल तत्त्व है। भाषा वस्तुतः भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम है। अतः भाषा के लिए यह आवश्यक है कि वह सहज, सरल एवं बोधगम्य हो। कहानी की भाषा ऐसी होनी चाहिए कि उसमें मूल संवेदना को व्यक्त करने की पूरी क्षमता हो। वह ओज एवं माधुर्य गुणों से युक्त तथा विषयानुकूल हो। सफल भाषा के गुणों में प्रवाहात्मकता, आलंकारिकता, चित्रात्मकता, प्रतीकात्मकता आदि गुण प्रमुख माने जाते हैं।

भावों को अभिव्यक्ति प्रदान करने का माध्यम भाषा है और अभिव्यक्ति का ढंग शैली है। सरल एवं बोधगम्य भाषा के द्वारा ही कहानी को प्रभावशाली बनाया जा सकता है। भाषा की क्लिष्टता और दुरूहता से कथन का अभिप्राय स्पष्ट नहीं हो पाता और कहानी अस्वाभाविक हो जाती है। काल और पात्र की यथार्थ अभिव्यक्ति के लिए भाषा में

स्वाभाविकता अपरिहार है। भाषा जितनी ही सरल और भावाभिव्यञ्जक होगी, उतनी ही प्रभावशाली होगी। प्रेमचन्द की कहानियों का प्रभाव पाठको पर इसीलिए पड़ता है कि उनकी भाषा अत्यन्त सरल और सरस है।

6. उद्देश्य

कहानी का उद्देश्य पुष्प में गन्ध की भाँति छिपा रहता है। प्राचीन कहानियों का उद्देश्य आध्यात्मिक विवेचना अथवा नैतिक उपदेश प्रदान करना था। कालान्तर में मनोरञ्जन करना अथवा महान् चरित्र के शौर्य आदि गुणों का प्रदर्शन करना कहानी का उपजीव्य बन गया। मनोरंजन अथवा उपदेश के साथ ही शाश्वत सत्य का उद्घाटन करना भी कथा का एक महत्त्वपूर्ण प्रयोजन है।

प्रेमचन्द-युग में आदर्श की स्थापना और शाश्वत सत्य का उद्घाटन कहानी का प्रमुख उद्देश्य बन गया था। कोई भी घटना, परिस्थितियाँ और कार्य लेखक के लिए निरपेक्ष रूप से महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। प्रत्येक कहानी के मूल मे कोई केन्द्रीय भाव अवश्य छिपा होता है, जो कहानी का मौलिक आधार बनता है। एक ही घटना को लेकर अनेक प्रकार की कहानियाँ लिखी जा सकती हैं, परन्तु प्रत्येक का दृष्टिकोण भिन्न होने के कारण कथा का रूप बदल जाता है। यही कहानीकार की मौलिकता है। कहानी का केन्द्रीय भाव ही वह हेतु या उद्देश्य है, जिसके लिए कहानी लिखी जाती है। संवेदना की विशिष्ट इकाई के मूल में लेखक का एक निर्दिष्ट लक्ष्य होता है। प्रभावान्विति और संवेदनात्मक इकाई के कारण ही कहानी मुक्तक काव्य और एकांकी की समीपवर्ती कही जाती है।

10.3 हिंदी कहानी का उद्भव एवं विकास :

मानव के आदि काल से कहानी कहने, सुनने, सुनाने की प्रवृत्ति चली आ रही है। विश्व के प्राचीनतम ग्रंथों में कहानी का महत्व प्राय: देशों में है। भारतीय वांगमय में वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश तथा पुरानी हिंदी में किसी न किसी स्वरूप में कहानी विद्यमान है, इसके अतिरिक्त पुराणों, उपनिषदों, ब्राह्मणों, रामायण, महाभारत, पालि जातक, तथा पंचतंत्र आदि में कहानियों का भंडार भरा पड़ा है। इन सभी कहानियों में उपदेशात्मक अथवा धार्मिक सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया है। आधुनिक अर्थ में इन्हें कहानी नहीं कहा जा सकता है।

हिंदी की प्रथम कहानी

हिंदी की प्रथम कहानी किसे माना जाए इस विषय में पर्याप्त मतभेद है। लगभग दर्जन भर कहानियां प्रथम कहानी की होड़ में सम्मिलित हैं जिन्हें आलोचक मान्यता प्रदान करते हैं।

सन् 1803 ई. में लिखी गई, हिंदी गद्य में कहानी शीर्षक से प्रकाशित होने वाली प्रथम रचना 'रानी केतकी की कहानी' है। इस कहानी के लेखक इंशा अल्ला खां हैं। डॉ. राम रतन भटनागर ने 'रानी केतकी की कहानी' को हिंदी प्रथम कहानी स्वीकारा है। किंतु इसकी संयोग बहुलता, अतिमानवीयता के कारण इसे प्रथम कहानी के रूप में नहीं स्वीकारा जा सकता है क्योंकि ये विशेषताएं आधुनिक कहानी में क्षम्य नहीं है। इसके विषय में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन समीचीन प्रतीत है कि यह नई परंपरा की प्रारंभिक कहानी नहीं है, बल्कि मुस्लिम प्रभावापन्न परंपरा की अंतिम कहानी है।

डॉ. बच्चन सिंह ने किशोरी लाल गोस्वामी कृत 'प्रणायिनी परिणय' (सन् 1887 ई.) को हिंदी की प्रथम कहानी माना है जबकि स्वयं इसके लेखक ने इसे उपन्यास कहा है। कारण यह बताया गया है कि सन् 1900 ई. तक कथा साहित्य को उपन्यास कहने की परिपाटी थी। इसलिए यह भी प्रथम कहानी नहीं है। क्योंकि इसका विभाजन सात

निष्कों में किया गया है। प्रत्येक निष्क को अलग खंड मान लेने पर कहानी कई खंडों में विभक्त प्रतीत होती है। इस तरह खंडों में विभाजित कर कहानी लिखने की परिपाटी चलती रही है। प्रत्येक निष्क या खंड के प्रारंभ में श्लोक बद्ध नीति कथन हैं जो कहानी के रूप विन्यास में बाधक सिद्ध होते हैं। इस कहानी के रूप बंध पर आख्यान पद्धति का पूर्ण प्रभाव हैं। संस्कृतनिष्ठ शब्दावली में केन्द्रीय भाव प्रगाढ़ प्रेम की सुखद परिणति दिखलाई गई है।

रैवरेंट जे. न्यूटन कृत 'जमींदार का दृष्टांत' तथा अनाम 'छली अरबी की कथा' नामक दो कहानियां अलीगढ़ से प्रकाशित 'शिलापंख' मासिक के 'कल की कहानी' स्तंभ में प्रकाशित देखकर यह अनुमान लगाया किंचित ये ईसाई धर्म प्रचार हेतु लिखी गई है। 'शिलापंख' के संपादक राजेंद्र गढ़वालिया ने सन् 1871 ई. में प्रकाशित इस कहानी को अब तक प्राप्त कहानियों में प्राचीनतम माना है। प्राचीनतम होकर भी प्रथम कहानी नहीं क्यों धर्म प्रचार हेतु लिखी गई है।

डॉ. सुरेख सिन्हा गोस्वामी कृत 'इन्दुमती' को प्रथम कहानी मानने पर बल देते हुए लिखा है, "प्रथम कहानी का निर्धारण समय क्रम से होना चाहिए न कि कथानक, शिल्प, विचार धारा, या अन्य किसी दृष्टिकोण से।"

'रानी केतनी की कहानी' के पश्चात राजा शिव प्रसाद सितारे हिंद कृत 'राजा भोज का सपना'; भारतेंहु हरिश्चन्द्र कृत 'अद्भुत अपूर्व स्वप्न' का उल्लेख किया जा सकता है जिसमें कहानी की सी रोचकता विद्यमान है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आधुनिक ढंग की कहानियों का आरंभ 'सरस्वती पत्रिका' के प्रकाशन काल से स्वीकारा है। 'सरस्वती' में प्रकाशित कहानियां इस प्रकार हैं-

1. **इंदुमती -** किशोरी लाल गोस्वामी (1900 ई.)
2. **गुलबहार -** किशोरी लाल गोस्वामी (1902 ई.)
3. **प्लेग की चुडैल -** मास्टर भगवान दास (1902 ई.)
4. **ग्यारह वर्ष का समय -** राम चन्द्र शुक्ल (1903 ई.)
5. **पंडित और पंडितानी -** गिरजादत्त बाजपेयी (1903 ई.)
6. **दुलाई वाली -** बंग महिला (1907 ई.)

ये सभी कहानियां 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थीं। इस प्रकार प्रथम कहानीकार किशोरी लाल गोस्वामी तथा प्रथम कहानी 'इंदुमती' प्रमाणित होती है। 'इंदुमती' की चर्चा प्राय: प्रत्येक समीक्षक ने की है। इस पर टेम्पेस्ट की छाया मानकर इस की मौलिकता पर भी प्रश्न चिह्न लगा दिया। रामचन्द्र शुक्ल 'इंदुमती' को ही प्रथम कहानी मानते हैं।

रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है, "यदि 'इंदुमती' किसी बंगला कहानी की छाया नहीं है तो हिंदी की यही पहली मौलिक कहानी ठहरती है इसके उपरांत 'ग्यारह वर्ष का समय' और 'दुलाईवाली' का नंबर आता है।"

सुरेश सिन्हा को शुक्ल के कथन में चालाकी की गंध आती है। उन्हें लगता है कि इंदुमती को अनूदित करार देकर अपनी कहानी 'ग्यारह वर्ष का समय' को प्रतिष्ठित करना चाहते थे। किंतु यह प्रमाणित हो चुका है कि 'इंदुमती' मौलिक रचना नहीं है। डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल शिल्प की दृष्टि से रामचन्द्र शुक्ल कृत 'ग्यारह वर्ष का समय' (सन् 1903) हिंदी की प्रथम कहानी है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी इसे आधुनिकता के लक्षण से युक्त माना है।

देवी प्रसाद वर्मा, ओंकार शरद और देवेश ठाकुर आदि समीक्षकों ने 'छत्तीसगढ़ मित्र' में प्रकाशित माधव राव सप्रे कृत 'एक टोकरी भर मिट्टी' (सन् 1901) को हिंदी की प्रथम कहानी का श्रेय दिया है। देवेश ठाकुर के अनुसार काल क्रमानुसार अपने समय के यथार्थ परिवेश से जुड़ी है। शिल्प की दृष्टि से सहजता, सरलता तथा भाषा की शुद्धता इसमें है। अत: जब तक इस दिशा में और अधिक शोध न हो जाए मान लेना चाहिए कि माधव राव सप्रे कृत

'एक टोकरी भर मिट्टी' हिंदी की प्रथम कहानी है। आर्थिक चेतना की कहानी होने के कारण यह आधुनिक अर्थमूला कहानियों की पहचान की पहली हिंदी कहानी है। 'दुलाईवाली' (सन् 1907 ई.) को यथार्थवादी चित्रण की सर्वप्रथम रचना माना है। किंतु वंग महिला का नाम नहीं ज्ञात है।

प्रो. वासुदेव 'इंदु' में प्रकाशित 'ग्राम' (1911 ई.) को हिंदी की पहली कहानी का गौरव प्रदान करते हैं। प्रसाद की यह पहली कहानी है।

शिवदान सिंह चौहान के विचार में हिंदी कहानी का श्रीगणेश प्रसाद और प्रेमचन्द से माना जाना चाहिए। राजेन्द्र यादव चन्द्रधर शर्मा गुलेरी कृत - 'उसने कहा था' (1916) को हिंदी की पहली मौलिक कहानी मानते हुए इसी से आधुनिक हिंदी कहानी का श्रीगणेश मानना चाहिए अब तक 'दुलाई वाली' को ही प्रथम कहानी माना जाता है। 'जमींदार का दृष्टांत' (1871 ई.) को अंग्रेजों की लिखी कहानी को प्रथम श्रेय नहीं मिलना चाहिए।

'दुलाईवाली' या 'ग्यारह वर्ष का समय' को हिंदी की प्रथम कहानी का श्रेय मिलना श्रेयस्कर है।

हिंदी कहानी का विकास

हिंदी कहानी के विकास में प्रेम चन्द केन्द्र बिन्दु हैं जिन्हें आधार बनाकर प्रेम चन्द पूर्वोत्तर, प्रेमचन्द, प्रेमचन्द परवर्ती युग के विभाग द्वारा संपूर्ण कहानी काल का विवेचन किया जाता रहा है। यह कहना कि प्रसाद का महत्व खो जाता है उनका युग नहीं बन पाता है। वे मूलतः कवि हैं उनका युग माना जा सकता है माना जाए। चरणों में अध्ययन वैज्ञानिक न होते भी आसान है किंतु सन् 1950 ई. से आज तक एक ही चरण नहीं माना जाना चाहिए। लगभग पांच चरणों में कहानी के विकास को विभाजित किया जाना श्रेयस्कर प्रतीत होता है।

1. प्रथम चरण (सन् 1870 - 1915 ई.)
2. द्वितीय चरण (सन् 1916 - 1935 ई.)
3. तृतीय चरण (सन् 1936 - 1955 ई.)
4. चतुर्थ चरण (सन् 1956 - 1975 ई.)
5. पंचम चरण (सन् 1976 से आज तक)

प्रथम चरण (सन् 1870-1915 ई.)

हिंदी का प्रारंभिक कहानियों के विषय में डॉ. रामदरश मिश्र का कथन सत्य है कि इनमें यथार्थ समर्थित आदर्श की व्यंजना लक्ष्य रूप में विद्यमान है। 'इंदुमति', 'दुलाई वाली', 'ग्यारह वर्ष का समय', 'जमींदार का दृष्टांत', 'प्रणयिनी परिणय', 'छली अरब की कथा' तथा 'एक टोकरी भर मिट्टी' आदि प्रमुख कहानियां हैं। जमींदार का दृष्टांत तथा प्रणयिनी परिणय में परोपकारी भावना का चित्राण किया गया है। 'एक टोकरी भर मिट्टी' की परिणति परहित में हुई है। 'जमींदार का दृष्टांत' में महाजन कृषकों की परेशानी से अवगत होकर सोचता है कि मेरे पास अपार धन दौलत है। इनके आर्थिक संकट का निवारण मैं कर सकता हूँ।

'प्रणयिनी परिणय' में राजाराम शास्त्री की सहायता करता है। परोपकारी वृत्ति के आदर्श के साथ राज्य कर्मचारियों की धन लिप्सा के यथार्थ की ओर भी संकेत किया गया है - "ऐसी चपलता, क्या राज्य कर्मचारी ऐसे-ऐसे भयंकर

लालच से बच सकते हैं? फिर तब क्या अनर्थ न्यून होने की संभावना हो सकता है? यदि इस समय मैं न होता तो इधर न्यायाधीश अवश्य ही घूस लेकर इसे छोड़ देते।" 'ग्यारह वर्ष का समय' में प्रेम के आदर्श की अभिव्यक्ति हुई है - इस अदृष्ट प्रेम का कर्म और कर्त्तव्य से घनिष्ठ संबंध है। इसकी उत्पत्ति केवल सदाशय और नि:स्वार्थ हृदय में ही हो सकती है।

इस कालावधि की अधिकांश कहानियों में भावुकता और संयोग का बाहुल्य दृष्टिगोचर होता है। 'ग्यारह वर्ष का समय' में दीर्घ काल के उपरांत पति पत्नी का मेल एकाएक एक टूटे फूटे निर्जन भवन में हो जाता है। 'इंदुमती' में भी संयोग से ही चन्द्रशेखर इंदुमती का अतिथि बन जाता है। राधिका रमण सिंह कृत 'कानों में कंगना' में गहरी भावुकता के दर्शन होते हैं। अधिकांश कहानियां अंग्रेजी एवं बंगला कहानियों से प्रभावित हैं। कहानी शिल्प अति अव्यवस्थित है मात्रा 'छली अरब की कथा' और 'एक टोकरी भर मिट्टी' शिल्प की दृष्टि से कसी हुई कहानियां हैं।

यद्यपि इन कहानियों का महत्व नहीं है। इतना अवश्य है कि अब तक कहानीकारों के एक मंडल का गठन हो चुका था तथा पत्रा पित्राकाओं के माध्यम से कहानी एक लोकप्रिय विधा का रूप धारण करती जा रही थी।

द्वितीय चरण (सन् 1916-1935 ई.)

1. प्रेमचन्द- द्वितीय चरण को कहानी की प्रेमचन्द की अपूर्व देन के कारण प्रेमचन्द युग कहा जाता है। मुंशी प्रेमचन्द द्वारा रचित कहानियों की संख्या लगभग तीन सौ से अधिक है जो मान सरोवर के आठ भागों में संग्रहीत हैं। इसके अतिरिक्त इनकी कहानियों के संग्रह 'सप्तसरोज', 'नव निधि', 'प्रेम पचीसी', 'प्रेम पूर्णिमा', 'प्रेम द्वादशी', 'प्रेम तीर्थ', तथा 'सप्त सुमन' आदि हैं। प्रेमचन्द पहले उर्दू में लिखते थे। उनका उर्दू में लिखा हुआ प्रसिद्ध कहानी संग्रह सोचे वतन सन् 1907 ई. में प्रकाशित हुआ था जो स्वातंत्रय भावनाओं से ओत-प्रोत होने के कारण अंग्रेजी सरकार द्वारा जब्त कर लिया गया था।

सन् 1919 ई. में उनकी हिंदी रचित प्रथम कहानी 'पंच परमेश्वर' प्रकाशित हुई। उनकी कहानियों में इसके अतिरिक्त 'आत्माराम', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'रानी सारंघा', 'वज्रपात', 'अलग्योझा', 'ईदगाह', 'पूस की रात', 'सुजान भक्त', 'कफन', 'पंडित मोटे राम' आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। प्रेमचन्द की कहानियों में जन साधारण के जीवन की सामान्य परिस्थितियों, मनोवृत्तियों एवं समस्याओं का मार्मिक चित्रण हुआ है। वे साधारण से साधारण बात को भी मर्मस्पर्शी रूप में प्रस्तुत करने की कला में निपुण कहानीकार थे। उनकी शैली सरल स्वाभाविक एवं रोचक है। जो पाठक के हृदय पर सीधा प्रहार करती है। उनकी सभी कहानियां सोद्देश्य हैं - उनमें किसी न किसी विचार या समस्या का अंकन हुआ है किन्तु इससे उनकी रागात्मकता में कोई न्यूनता नहीं आई है।

भाव-विचार, कला-प्रचार का सुंदर समन्वय किस प्रकार किया जा सकता है, इसका प्रत्यक्ष उदाहरण प्रेम चंद का कहानी साहित्य है। द्वितीय चरण में हिंदी कहानी दो विशिष्ट धाराओं में विभक्त होकर चलती है-

1. प्रथम धारा व्यक्ति हित या व्यक्ति सत्य के भावात्मक अंकन की है, जिसके सर्वप्रथम प्रमुख कहानीकार जयशंकर प्रसाद हैं और रायकृष्ण दास, विनोद शंकर व्यास तथा चतुरसेन शास्त्री इस परंपरा को अग्रसर करने वाले सहयोगी हैं।

2. द्वितीय धारा के विषय में डॉ. इंद्रनाथ मदान का कथन है "हिंदी कहानी के विकास की दूसरी दिशा जिसमें समष्टि-सत्य की संवेदना है, समष्टि - विकास की संचेतना है, समष्टि मंगल की भावना है, समष्टि यथार्थ को आत्मसात करने की प्रेरणा है, प्रेम चन्द के कहानी साहित्य से आरंभ होती है।" प्रेमचन्द के समसामयिक कहानीकार सुदर्शन और विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक प्रेमचन्द की कथा दृष्टि का समर्थन करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं।

प्रेमचन्द और उनके सहयोगी कहानीकारों में समकालीन यथार्थ की आदर्शात्मक परिणति मिलती है। अपनी कहानी यात्रा के अंतिम चरण में प्रेमचंद ने स्वयं को आदर्श के मोह से अलग कर दिया था लेकिन सुदर्शन, विश्वंभर नाथ शर्मा 'कौशिक' ज्वाला दत्त शर्मा आदि बराबर आदर्शोन्मुख यथार्थवादी कहानियां लिखते रहे। इस दृष्टि से कौशिक की 'रक्षा बंधन', 'सुदर्शन की एलबम', 'हार जीत' और 'एथेन्स का सत्यार्थी' उल्लेखनीय कहानियां हैं। प्रेमचन्द की कहानी यात्रा के तीन मोड़ माने जा सकते हैं।

1. 'पंच परमेश्वर', 'बड़े घर की बेटी', 'नमक का दरोगा' आदि प्रारंभिक कहानियों में उनका आग्रह पुरातन आदर्शों को प्रतिष्ठित करता प्रतीत होता है। इन कहानियों में उपदेश का प्रच्छन्न स्वर सुनाई देता है।

2. सन् 1920-30 ई. के मध्य लिखी गई गांधी वादी विवाद धारा सतह पर है।

3. 'मैकू', 'शेख नाद', 'दुर्गा मन्दिर', 'सेवा मार्ग' आदि कहानियों में प्रेम चन्द स्थूल कथात्मकता को छोड़कर यथार्थ को विश्लेषण और संकेत के स्तर पर ग्रहण करते दिखाई देते हैं। डॉ. बचन कुमार सिंह के अनुसार, "चरित्रों के चित्रण में मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मताओं का समावेश भी उनमें आ गया है। नाटकीयता तथा व्यंग्य के पैनेपन के कारण उसमें जीवंतमयता और प्रभान्विति की घनता आ गई है। 'नशा', 'पूस की रात' और 'कफन' आदि कहानियां प्रेम चन्द की कहानी कला के अंतिम चरण की है। यहां तक आते-आते प्रेम चन्द अपनी सारी आस्थाओं का परित्याग कर देते हैं और जीवन के प्रति उनकी दृष्टि अधिक तीखी और निर्मम हो गई है। इन कहानियों में जो सूक्ष्मता और सांकेतिकता विद्यमान है वह 'नई कहानी' की अच्छी कहानियों में भी नहीं है। यह कम महत्वपूर्ण नहीं है कि हिंदी कहानी का विकास प्रेमचन्द द्वारा संकेतित दिशा में ही हुआ है।

प्रेमचन्द की कहानियों में जहां एक ओर युग का सच्चा चित्राण है, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक संदर्भों के विश्लेषण की कोशिश है वहीं दूसरी ओर प्रेम, सहानुभूति, तपस्या, सेवा आदि महनीय मूल्यों का जोरदार समर्थन उनमें है। अधिकांश कहानियों में प्रेम चंद ने जन साधारण के जीवन को उसी की भाषा में उपस्थित किया है। वे संभवत: पहले कहानीकार हैं जिनकी कहानियों में ग्रामीण जीवन अपनी समूची शक्ति और सीमा के साथ उभरा है। डॉ. भगवत स्वरूप मिश्र ने लिखा है, "मानव स्वभाव के परिचय, युगबोध, विषय क्षेत्रा के विस्तार, कहानी कला के उत्कर्ष आदि की दृष्टि से प्रेमचन्द स्कूल का एक भी कहानीकार प्रेमचन्द की गरिमा को नहीं पहुंच सका।"

10.4 स्वतंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी : नयी कहानी

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात लेखक ऐसी रचनाएं कर रहे थे जो समाज के उत्थान की ओर ले जा रही थी । नई कहानी कारों की एक ऐसी पीढ़ी तैयार हुई कि उसने हिंदी कहानी की वस्तु शिल्फ और संचेतना में व्यापक परिवर्तन ला दिया। इस प्रकार हिंदी कहानियां नए-नए रूप रंगो में परिवर्तित होती चली गई । हिंदी कहानियों को उत्थान की तरफ ले जाने के लिए समय-समय पर कई आंदोलन हुए जिन्होंने हिंदी कहानियों को नई समृद्धि दृष्टि और कलात्मक ऊंचाई भी दी।

नई कहानी :

नई कहानी आंदोलन में कहानी के पारंपरिक प्रतिमानों को नकार दिया गया और अपने मूल्यांकन के लिए नई कसौटियॉ निर्धारित की गई। उस समय स्वतंत्रता मिल जाने पर भारतीय मानस में एक नई चेतना , विश्वास और आशा थी। उसे एक बदला हुआ यथार्थ मिला। जिसने उसे नया संदर्भ में प्रदान किया। नए कहानीकारों ने 'परिवेश की विश्वसनीयता' , 'अनुभूति की प्रमाणिकता' और 'अभिव्यक्ति और ईमानदारी' का प्रश्न उठाया और यह बताया कि नई कहानी यथार्थ से जुड़ी हुई है । जिसका मूल उद्देश पाठक को यथार्थ से परिचित करवाना है । नई कहानी आंदोलन की अगुवाई तीन महान लेखक - राजेंद्र यादव , मोहन राकेश , कमलेश्वर कर रहे थे । नई कहानी में स्थूल कथानको के स्थान

पर सूक्ष्म कथा तंतुओं का प्रधानता मिली। सांकेतिकता, प्रतीकात्मक और बिम्बात्मकता का प्रधान्य हुआ। नई कहानी ने समाज को एक नई चेतना का मार्ग दिया इसके प्रमुख हैं - धर्मवीर भारती , रांगेय राघव , राजेंद्र यादव , बलवंत सिंहलेखक।

10.5 सारांश

हिंदी कहानियों का इतिहास भारत में सदियो पुराना है। प्राचीन काल से ही कहानियां भारत में बोली, सुनी और लिखी जा रही है। ये कहानियां ही है जो हमें हिम्मत से भर देती है और हम असंभव कार्य को भी करने को तैयार हो जाते है और अत्यंत कठिनाइयों के बावजूद ज्यादातर कार्य पूरे भी होते है शिवाजी महाराज को उनकी माता ने कहानी सुना सुनाकर इतना महान बना दिया कि शिवाजी महाराज छत्रपति शिवाजी महाराज बन गए।

हिंदी साहित्य की प्रमुख कथात्मक विधा है। आधुनिक हिंदी कहानी का आरंभ 20 वीं सदी में हुआ। पिछले एक सदी में हिंदी कहानी ने आदर्शवाद, आदर्शवाद, यथार्थवाद, प्रगतिवाद, मनोविश्लेषणवाद, आँचलिकता, आदि के दौर से गुजरते हुए सुदीर्घ यात्रा में अनेक उपलब्धियां हासिल की है। निर्मल वर्मा के वे दिन जैसे कहानी संग्रह साहित्य अकादमी से भी सम्मानित हो चुके हैं। प्रेमचंद, जैनेंद्र, अज्ञेय, यशपाल, फणीश्वरनाथ रेणु, उषा प्रियंवदा, मन्नु भंडारी, ज्ञानरंजन, उदय प्रकाश, ओमप्रकाश बाल्मिकी आदि हिंदी के प्रमुख कहानी कार हैं।

हिन्दी कहानी की अब तक की विकास-यात्रा लगभग सौ वर्षों की ऐसी यात्रा है जिसमें जल्दी-जल्दी नये परिवर्तन होते रहे हैं। उसकी विकास-गति तीव्र और अपने समय-संदर्भो से घनिष्ठ रूप से जुड़ी रही है। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि हिन्दी कहानी ने बहुत कम समय में एक श्रेष्ठ साहित्यिक विधा का रूप प्राप्त कर लिया। इसका प्रमुख कारण यह है कि आरंभ में ही कुछ महत्वपूर्ण रचनाकारों ने अपनी प्रतिभा से उसे (हिन्दी कहानी) प्रारंभिक दौर की लड़खड़ाहट और अनगढ़पन से मुक्त कर दिया। चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' की उसने कहा था कहानी की गणना हिन्दी की श्रेष्ठ कहानियों में होती है। यह कहानी सन् 1915 में प्रकाशित हुई थी। मधुरेश ने लिखा है – 'उसने कहा था' वस्तुत: हिन्दी की पहली कहानी है, जो शिल्प विधान की दृष्टि से हिन्दी कहानी को एक झटके में प्रौढ़ बना देती है।' प्रेम, बलिदान और कर्तव्य की भावना से अनुप्राणित तमाम कहानियाँ लिखी गई हैं किन्तु यह कहानी अपनी मार्मिकता और सघन गठन के कारण आज भी अद्वितीय बनी हुई है। हिन्दी कहानी के उदयकाल में ही ऐसी श्रेष्ठ रचना का प्रकाशित होना एक महत्वपूर्ण घटना है। इसने आगे के कहानीकारों के लिए उत्कृष्ट कहानी की रचना के लिए एक चुनौती प्रस्तुत कर दी। कहना न होगा कि परवर्ती कथाकारों ने उस चुनौती को स्वीकार किया जिसके फलस्वरूप हिन्दी कहानी का विकास बड़ी ही तेजी से हुआ।

10.6 अभ्यास प्रश्न :

1. कहानिकी परिभाषा देते हुए उयाके स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।
2. कहानी के तत्वो पर एक सारगर्भित निबन्ध लिखिए।
3. कहानी के विकास क्रम पर प्रकाश डालिए।
4. कहानी में कथा वस्तु का क्या स्थान है।
5. कहानी कला में शैली तत्व को रेखांकित कीजिये।
6. नयी कहानी के विकास क्रम को समझाइए।

अध्ययन के लिए आधार ग्रंथ :

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - सं. डॉ. नगेन्द्र
2. हिन्दी कहानी अंतरंग पहचान - डॉ. राम दरश मिश्र

3. हिन्दी कहानी का विकास - डॉ. देवेश ठाकुर
4. हिन्दी कहानी के सौ वर्ष - डॉ. वेद प्रकाश अमिताब
5. आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास – डॉ. बच्चन सिंह

****

- डॉ. यम. मंजुला

11. अन्य विधाएँ

उद्धेश्य :

साहित्य में आधुनिक विचार और बोध के परिणामस्वरूप गद्य का प्रचलन हुआ। पारंपरिक समाज के टूटने और नए समाज के गठन के कारण नई साहित्यिक विधाओं का प्रचलन अनिवार्य था। आधुनिक समाज ने अभिव्यक्ति के उन बंधनों को तोड़ने की प्रेरणा दी जो अनुभूति की वास्तविकता के संप्रेषण में बाधा दे रहे थे। आधुनिक युग में व्यक्ति अपनी निजी भावना और निजी अनुभवों की अभिव्यक्ति करने के लिए स्वतंत्र था। निजता की यह स्वतंत्रता हमारे बोध में आए परिवर्तन को सांकेतित करती है। निबंध तथा अन्य गद्य विधाओं की प्राथमिक शर्त है निजी अनुभवों की प्रामाणिक तथा विश्वसनीय अभिव्यक्ति। इसका अर्थ यह नहीं है कि आधुनिक युग गद्य विधाओं में लेखक अनुभवों तक ही सीमित है। निजी शब्द का अर्थ यहाँ अभिव्यंजना सामर्थ्य की विविधता के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। चूँकि आधुनिक साहित्य ने संरचना बद्ध ढाँचे को स्वीकार नहीं किया। उसने अपनी विशिष्टता और मौलिकता को प्रस्तुत करने के लिए अनुभवों की प्रामाणिकता को आधार बनाया। अनुभवों की विविधता ने ही आधुनिक साहित्य में विध गाओं और विविध शैलियों को प्रस्तावित किया।

किसी भी कलाकार के सामाजिक जीवन के अनुभव के साथ उसके व्यक्तिगत जीवन के अनुभवों का भी महत्त्व है। उसके जीवन की छोटी-छोटी घटनाएँ भी उसके संवेदन तंत्र को प्रभावित कर देती हैं। चाहे उसका ऐतिहासिक और नाटकीय महत्त्व नहीं हो परंतु वे भी हमारी साहित्यिक अनुभूतियों के हिस्से हैं। रेखाचित्र, संस्मरण, जीवनी, आत्मकथा, और डायरी आदि विध गाओं का संबंध कलाकार के व्यक्तिगत जीवन से है, परंतु संवेदना के स्पर्श के कारण वे व्यक्तिगत अनभूतियाँ भी साहित्य की सजनात्मक विधाओं के रूप में प्रस्तुत होने लगी हैं।

इस इकाई में हम रेखाचित्र, संस्मरण, आत्मकथा आदि विधाओं के अध्ययन के संदर्भ में इस बात पर भी चर्चा करेंगे कि किस प्रकार से अनुभूतियों ने साहित्यिक विधाओं के रूप गठन को प्रभावित किया। वैयक्तिक लेखन होने के कारण इन विधाओं का कोई प्रवृत्तिगत रुझान नहीं दिखाई पड़ता है। हर लेखक और रचनाकार अपनी अभिव्यक्ति के लिए स्वतंत्र है। इसलिए इस विधा में प्रवृत्तिगत ऐतिहासिक अध्ययन की संभावनाएँ बहुत ही क्षीण हैं । निबंध के संदर्भ में रचनाकार की व्यक्तिगत विशेषताओं के साथ-साथ युग की सामान्य प्रवृत्तियों पर भी चर्चा करेंगे।

अन्य गद्य विधाओं के अन्तर्गत हम रेखाचित्र, संस्मरण, जीवनी, आत्मकथा, यात्रावृतांत, रिपोर्ताज, साक्षात्कार, तथा डायरी का अध्ययन करेंगे । जीवन की ईमानदार और प्रामाणिक अनुभूति की यथार्थ अभिव्यक्ति के लिए इन विधाओं का विकास हुआ। इन विधाओं में व्यक्ति का व्यक्तिगत जीवन प्रकाशित होता है। उनके व्यक्तिगत जीवन के द्वंद्व, उल्लास और पीड़ा के वास्तविक चित्र इन गद्य विधाओं में मिलते हैं। कलाकार के व्यक्तिगत अनुभव में उसके युग की संवेदनशीलता छिपी होती है। इन विधाओं के अध्ययन के माध्यम से आपं कलाकार की व्यक्तिगत विशिष्टता के साथ-साथ उस युग के यथार्थ को पहचान सकेंगे।

रूपरेखा :

- 11.1 एकांकी
- 11.2 रेडियो नाटक
- 11.3 रेखाचित्र
- 11.4 संस्मरण

11.1 एकांकी

एक अंक वाले नाटकों को **एकांकी** कहते हैं। अंग्रेजी के 'वन ऐक्ट प्ले' शब्द के लिए हिंदी में 'एकांकी नाटक' और 'एकांकी' दोनों ही शब्दों का समान रूप से व्यवहार होता है।

पश्चिम में एकांकी 20 वीं शताब्दी में, विशेषतः प्रथम महायुद्ध के बाद, अत्यन्त प्रचलित और लोकप्रिय हुआ। हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में उसका व्यापक प्रचलन इस शताब्दी के चौथे दशक में हुआ। इसका यह अर्थ नहीं कि एकांकी साहित्य की सर्वथा आभिजात्यहीन विधा है। पूर्व और पश्चिम दोनों के नाट्य साहित्य में उसके निकटवर्ती रूप मिलते हैं। सस्कृंत नाट्यशास्त्र में नायक के चरित, इतिवृत्त, रस आदि के आधार पर रूपकों और उपरूपकों के जो भेद किए गए उनमें से अनेक को डॉ॰ कीथ ने एकांकी नाटक कहा है। इस प्रकार 'दशरूपक' और 'साहित्यदर्पण' में वर्णित व्यायोग, प्रहसन, भाग, वीथी, नाटिका, गोष्ठी, सट्टक, नाटयरासक, प्रकाशिका, उल्लाप्य, काव्य प्रेंखण, श्रीगदित, विलासिका, प्रकरणिका, हल्लीश आदि रूपकों और उपरूपकों को आधुनिक एकांकी के निकट संबंधी कहना अनुचित न होगा। 'साहित्य दर्पण में 'एकांक' शब्द का प्रयोग भी हुआ है :

प्रस्ताविक :

एकांकी नाटक साधारणत: 20 से लेकर 30 मिनट में प्रदर्शित किए जा सकते हैं, जबकि तीन, चार या पाँच अंकोंवाले नाटकों के प्रदर्शन में कई घंटे लगते हैं। लेकिन बड़े नाटकों और एकांकियों का आधारभूत अंतर आकारात्मक न होकर रचनात्मक है। पश्चिम के तीन से लेकर पाँच अंकोंवाले नाटकों में दो या दो से अधिक कथानकों को गूँथ दिया जाता था। इस प्रकार उनमें एक प्रधान कथानक और एक या कई उपकथानक होते थे। संस्कृत नाटकों में भी ऐसे उपकथानक होते थे। ऐसे नाटकों में स्थान या दृश्य, काल और घटनाक्रम में अनवरत परिवर्तन स्वाभाविक था। लेकिन एकांकी में यह संभव नहीं। एकांकी किसी एक नाटकीय घटना या मानसिक स्थिति पर आधारित होता है और प्रभाव की एकाग्रता उसका मुख्य लक्ष्य है। इसलिए एकांकी में स्थान, समय और घटना का संकलनत्रय अनिवार्य सा माना गया है। कहानी और गीत की तरह एकांकी की कला घनत्व या एकाग्रता और मितव्ययता की कला है, जिसमें कम से कम उपकरणों के सहारे ज्यादा से ज्यादा प्रभाव उत्पन्न किया जाता है। एकांकी के कथानक का परिप्रेक्ष्य अत्यंत संकुचित होता है, एक ही मुख्य घटना होती है, एक ही मुख्य चरित्र होता है, एक चरमोत्कर्ष होता है। लंबे भाषणों और विस्तृत व्याख्याओं की जगह उसमें संवादलाघव होता है। बड़े नाटक और एकांकी का गुणात्मक भेद इसी से स्पष्ट हो जाता है कि बड़े नाटक के कलेवर को काट छाँटकर एकांकी की रचना नहीं की जा सकती, जिस तरह एकांकी के कलेवर को खींच तानकर बड़े नाटक की रचना नहीं की जा सकती।

संस्कृत नाट्यशास्त्र के अनुसार बड़े नाटक के कथानक के विकास की पाँच स्थितियाँ मानी गई हैं : आरम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम। पश्चिम के नाट्यशास्त्र में भी इन्हीं से बहुत कुछ मिलती जुलती स्थितियों का उल्लेख है : आरम्भ या भूमिका, चरित्रों और घटनाओं के घात प्रतिघात या द्वंद्व से कथानक का चरमोत्कर्ष की ओर आरोह, चरमोत्कर्ष, अवरोह और अंत। पश्चिम के नाटकशास्त्र में द्वंद्व पर बहुत जोर दिया गया है। वस्तुत: नाटक द्वंद्व की कला है; कथा में चरित्रों और घटनाओं के क्रमिक विकास की जगह बड़े नाटक में कुछ चरित्रों के जीवन के द्वंद्वों को उद्घाटित कर कथानक को चरमोत्कर्ष पर पहुँचाया जाता है। एकांकी में इस चरमोत्कर्ष की धुरी केवल एक द्वंद्व होता है। बड़े नाटक के कथानक में द्वंद्वों का विकास काफी धीमा हो सकता है, जिसमें सारी घटनाएँ रंगमंच पर प्रस्तुत होती हैं, या उस घटना से कुछ ही पूर्व होता है जो बड़े वेग से द्वंद्व को चरमोत्कर्ष पर पहुँचा देती है। अक्सर यही चरमोत्कर्ष एकांकी का अंत होता

है। जीवन की समस्याओं के यथार्थवादी और मनोवैज्ञानिक चित्रण के अतिरिक्त रचनाविधान की यह विशेषता आधुनिक एकांकी को संस्कृत और पश्चिमी नाट्य साहित्य में उसके निकटवर्ती रूपों से पृथक् करती है।

अक्सर अभिनय के लिए कहानियों के रूपांतर से यह भ्रम पैदा होता है कि एकांकी कहानी का अभिनेय रूप है। लेकिन रचनाविधान में घनत्व और मितव्ययता की आधारभूत समानता के बावजूद कहानी और एकांकी में शिल्पगत भेद है। रंगमंच की वस्तु होने के कारण एकांकी में अभिनय और कथोपकथन का महत्व सबसे ज्यादा है। इन्हीं के माध्यम से एकांकी चरित्रचित्रण, कथानक और उसके द्वंद्व, वातावरण और घटनाओं के अनुबंध का निर्माण करता है। कहानी की तरह एकांकी वर्णन का आश्रय नहीं ले सकता। लेकिन अभिनय की एक मुद्रा कहानी के लंबे वर्णन से अधिक प्रभावशाली हो सकती है। इसलिए रंगमंच एकांकी की सीमा और शक्ति दोनों है। इसकी पहचान न होने के कारण अनेक सफल कहानीकार असफल एकांकीकार रह जाते हैं।

इसी प्रकार किसी विषय पर रोचक संभाषण या कथोपकथन को एकांकी समझना भ्रममात्र है। जीवन के यथार्थ, घटना या कथानक, चरित्रों के द्वंद्व, संकलनत्रय इत्यादि के अभाव में संभाषण केवल संभाषण रह जाता है, उसे एकांकी की संज्ञा नहीं दी जा सकती।

एकांकी की अद्भुत संभावनाओं के कारण आधुनिक काल में उसका विकास अनेक दिशाओं में हुआ है। रेडियो रूपक, संगीत तथा काव्यरूपक और मोनोलोग या स्वगत नाट्य इन नई दिशाओं की कुछ महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं। रेडियो के माध्यम से इन सबके क्षेत्र में निरंतर प्रयोग हो रहे हैं। रंगमंच, सदेह अभिनेताओं और अभिनेत्रियों, उनके अभिनय और मुद्राओं के अभाव में रेडियो रूपक को शब्द और उनकी ध्वनि तथा चित्रात्मक शक्ति का अधिक से अधिक उपयोग करना पड़ता है। मूर्त उपकरणों का अभाव रेडियो रूपक के लिए सर्वथा बाधा ही नहीं, क्योंकि शब्द और ध्वनि को उनके मूर्त आधारों से पृथक् कर नाटककार श्रोताओं के ध्यान को चरित्रों के आंतरिक द्वंद्वों पर केंद्रित कर सकता है। रेडियो रूपक मुश्किल से ५० वर्ष पुराना रूप है। प्रारंभिक अवस्था में इसमें किसी कहानी को अनेक व्यक्तियों के स्वरों में प्रस्तुत किया जाता था और रंगमंच का भ्रम उत्पन्न करने के लिए पात्रों की आकृतियों, वेशभूषा, साज सज्जा, रुचियों इत्यादि के विस्तृत वर्णन से यथार्थ वातावरण के निर्माण का प्रयत्न किया जाता था। अमरीका, जर्मनी, इंग्लैंड आदि पश्चिमी देशों में रेडियो एकांकी के प्रयोगों ने उसके रूप को विकसित किया और निखारा। रेडियो के लिए कई प्रसिद्ध अमरीकी और अंग्रेज कवियों ने काव्यरूपक लिखे। उनमें मैक्लीश, स्टीफ़ेन विंसेंट बेने, कार्ल, सैंडवर्ग, टाइरोम ग्थ्रा, लूई मैकनीस, सैकविल वेस्ट, पैट्रिक डिकिंसन, डीलन टामस आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इन प्रयोगों से प्रेरणा ग्रहण कर हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के एकांकीकारों ने भी रेडियो रूपक, गीतिनाट्य और काव्यरूपक प्रस्तुत किए हैं। पर इनमें अभी अनेक त्रुटियाँ हैं।

एकांकी के तत्व

एकांकी एक अंग का दृश्य काव्य है जिसमें एक ही कथा और कुछ ही पात्र होते है। उसमे एक विशेष उद्देश्य की अभिव्यक्ति करते हुए केवल एक ही प्रभाव की पुष्टि सृष्टि की जाती है। कम से कम समय मे अधिक से अधिक प्रभाव एकांकी का लक्ष्य होता हैं। आज हम एकांकी किसे कहते हैं? एकांकी के तत्व और एकांकी के प्रकारों के बारें मे विस्तार से चर्चा करेंगे। हम आपसे अनुरोध करते हैं कि आप इस लेख को पूरा पढ़े बीच से छोड़कर ना भागें क्योंकि आप जितना ज्यादा पढ़गें आपको उतना ही ज्यादा और अच्छे से समझ आएगा।

एक अंग वाले नाटक को एकांकी कहते हैं। आकार मे छोटा होने के कारण इसमे जीवन का खण्ड चित्र प्रस्तुत होता है। नाटक के समान इसके भी छः तत्व होते हैं।

आज मनुष्य के पास पहले की तरह प्रचुर अवकाश नही हैं। अपनी व्यस्तता के कारण महाकाव्यों तथा मोटे-मोटे उपन्यासों को पढ़ने और नाटकों को देखने के लिए उसे पर्याप्त समय नही मिल पाता। इसलिए थोड़े समय मे पढ़ी जाने वाली कहानियों और खेल जाने वाली एकांकीयों के प्रति उसका झुकाव स्वाभाविक ही हैं।

एकांकी के तत्व

- कथावस्तु
- पात्र और चरित चित्रण
- भाषा-शैली
- देशकाल-वातावरण
- रंगमंचीयता
- उद्देश्य

1. कथावस्तु

कथावस्तु के माध्यम से एकांकीकार अपना उद्देश्य व्यक्त करता है। इसे वह प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करता है। अपेक्षित प्रभाव उत्पन्न करने के लिए इसे कथा के क्रम मे इस प्रकार योजना करता है कि दर्शक का मन उसमें रम जाए, कहीं भी उचटने न पाए। उसका मन निरंतर आगे का घटनाक्रम या दृश्य जानने के लिए उत्सुक बना रहे। सरल शब्दावली मे कहें तो उसका कौतूहल बना रहना चाहिए। कथानक या कथावस्तु को तीन भागों मे विभाजित किया जा सकता है। 1. प्रारंभ 2. विकास 3. चरमोत्कर्ष।

2. पात्र और चरित चित्रण

एकांकी का दूसरा तत्व पात्र और चरित्र चित्रण है। नाटकों मे नायक तथा उसके सहायकों का चरित्र-चित्रण मूलतः घटनाओं के माध्यम से किया जाता हैं, किन्तु एकांकी के पात्रों के चित्रण नाटकीय परिस्थितियों, भीतर बाहर के संघर्षों के सहारे सांकेतिक रहते है। एकांकी के चरित्र चित्रण मे स्वाभाविकता, यथार्थता और मनोवैज्ञानिकता का ध्यान रखना आवश्यक होता है। प्रत्येक पात्र के क्रिया-कलाप मे कार्य कारण भाव अवश्य सांकेतिक होना चाहिए।

3. भाषा-शैली

एकांकी का तीसरा तत्व भाषा और शैली हैं। साहित्य की विभिन्न विधाओं की भाषा-शैली अलग-अलग होती है। एक सी विषय वस्तु के आधार पर कहानी भी लिखी जा सकती है और एकांकी भी काव्य भी लिखा जा सकता है, और नाटक भी। किन्तु उसी विषय वस्तु को कवि अपने ढंग से ग्रहण करेगा और नाटककार अपने ढंग से। विषयवस्तु के प्रति लेखक का जैसा दृष्टिकोण होगा, उसकी अभिव्यक्ति के लिए वह वैसा ही माध्यम भी चुनेगा। माध्यम के भिन्न हो जाने से भाषा शैली भी भिन्न हो जाती है। कहानी की भाषा शैली वर्णन के लिए अधिक उपयुक्त होती है। केवल संवाद मे लिखी गई कहानी की भाषा शैली एकांकी की भाषा-शैली नही हो सकती है, क्योंकि उसमें नाटकीय तत्व नही रहता।

एकांकी की भाषा शैली के संबंध मे एक बात और ध्यान देने योग्य है। भाषा का प्रयोग पात्र की शिक्षा, संस्कृति वातावरण, परिस्थितियों के अनुरूप होना चाहिए।

4. देशकाल-वातावरण

एकांकी के नाट्यशिल्प को सफल बनाने के लिए संकलन-त्रय का प्राय: आधार लिया जाता है। कहा जाता है कि एकांकी मे देश, काल और कार्य-व्यापार की अन्विति का अर्थ है कि संपूर्ण घटना एक ही स्थान पर घटित हो और उसमें दृश्य परिवर्तन कम से कम हो। सामान्यतः काल की अन्विति से अभिप्राय है कि एकांकी की घटना वास्तविक जीवन मे जितनी देर मे घटित हुई उतनी देर मे उसका अभिनय भी हो सके। यदि दो घटनाओं मे वर्षों का अंतर हो तो उन्हें एकांकी का विषय नही बनाया जाना चाहिए। कार्य की अन्विति का अर्थ है प्रासंगिक कथाओं को उसमें स्थान न दिया जाए और कार्य व्यापार मे क्रमिकता बनी रहें।

5. रंगमंचीयता

एकांकी के सफल अभिनय के लिए उपयुक्त रंगमंच सज्जा के साथ-साथ कुशल अभिनेताओं का होना अनिवार्य है, क्योंकि एकांकी के मूल उद्देश्य की अभिव्यक्ति का मुख्य दायित्व उन्हीं पर होता हैं। उसे और प्रभावशाली बनाने के लिए और प्रकाश का भी यथावसर उपयोग किया जाता हैं।

6. उद्देश्य

एकांकी का कोई ना कोई उद्देश्य होना चाहिए। एकांकी में एकांकीकार का उद्धेस्य अपने विचारों की अभिव्यक्ति रहता है, परंतु इसका अर्थ यह नहीं कि दर्शकों को शिक्षा या उपदेश दे । एकांकी का एक मिख्या उद्धेस्य मनोरंजन भी है , पर मनोरंजन भी मुख्य उद्देश्य नहीं है ।

एकांकी के प्रकार:

हिन्दी के विद्वानों ने अपने अनुसार एकांकी का वर्गीकरण किया है । डॉ. नगेन्द्र द्वारा किया गया वर्गीकरण इस प्रकार है ।

1. सामाजिक एकांकी
2. ऐतिहासिक एकांकी
3. मनोवैज्ञानिक एकांकी
4. राजनीति एकांकी
5. चरित्र प्रधान एकांकी
6. पौराणिक एकांकी
7. सांस्कृतिक एकांकी
8. आंचलिक एकांकी
9. दार्शनिक एकांकी
10. तथ्यपरक एकांकी

1.सामाजिक एकांकी :

सामाजिक समस्याओ को आधार बनाकर सामाजिक एकांकी की रचना की जाती है। सामाजिक एकांकी का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। सामाजिक जीवन के विविध पक्ष, यथा-प्रेम-प्रवाह, वर्ग-संघर्ष, पीढ़ी-संघर्ष तथा अस्पृश्यता इसके अंतर्गत आते है। जैसे-'फैसला' (विनोद रस्तोगी), 'लश्मी का स्वागत ' (उपेंद्रनाथ अश्क)

2 . ऐतिहासिक एकांकी :

इतिहास अथवा ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के आधार पर लिखे गये एकांकी ऐतिहासिक एकांकी होते है। जैसे-'दीपदान' (डॉ रामकुमार वर्मा)

3. मनोवैज्ञानिक एकांकी :

मनोविज्ञानं के आधार पर रचित एकांकी मनोवैज्ञानिक एकांकी होते है। जैसे-'मकड़ी का जाला' (जगदीशचन्द्र माथुर)

4 . राजनैतिक एकांकी :

किसी राजनैतिक गतिविधि पर प्रकाश डालनेवाले एकांकी राजनैतिक एकांकी होते है। जैसे- 'पिशाचो का नाच' (उदयशंकर भट्ट , सीमा-रेखा' विष्णु प्रभाकर

5 . चारित्रिक एकांकी :

जिन एकांकियों का मूलोद्देश्य किसी चरित्र-चित्रण का सौंदर्य या असौंदर्य अनुभूत करना होता है। जैसे- 'उत्सर्ग' डॉ रामकुमार वर्मा

6 . पौराणिक एकांकी :

पुराणों पर आधारित कथावस्तु को लेकर लिखे गए एकांकी पौराणिक एकांकी होते है। जैसे- 'मुद्रिका' (सद्गुरूशरण अवस्थी), 'राजरानी सीता' डॉ रामकुमार वर्मा

7 . सांस्कृतिक एकांकी :

सांस्कृतिक समस्या पर आधारित एकांकी सांस्कृतिक एकांकी होते है। जैसे- 'प्रतिशोध' (डॉ रामकुमार वर्मा), 'सच्चा धर्म' (सेठ गोविंददास)

8 . आंचलिक एकांकी :

किसी अंचल-विशेष की घटना पर आधारित वहा की लोकभाषा,रीति-व्यवहार, रहन-सहन, भूगोल आदि का चित्रण आंचलिक एकांकी में किया जाता है।

9 . दार्शनिक एकांकी :

दार्शनिक विषयो पर आधारित दार्शनिक एकांकी है। यथा-उदयशंकर भट्ट, लश्मीनारायण मिश्र दार्शनिक एकांकीकार है।

10 . तथ्यपरक एकांकी :

एकांकीकार किसी विशेष सन्देश अथवा उद्देश्य पर बल न देकर किसी प्रसंग का नाटकीय चित्र अंकित करके प्रभाव

अ) प्रतिपाद्य की दृस्टि से

प्रतिपाद्य की दृस्टि से एकांकी के अनेक भेदो की कल्पना की जा सकती है, यद्यपि इनकी कोई निश्चित सीमा नहीं निर्धारित की जा सकती। इसके अंतर्गत समस्यामूलक एकांकी, हास्य एकांकी, विचारपरक एकांकी और वैज्ञानिक एकांकी विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

समस्यामूलक एकांकी में वैयक्तिक अथवा सामाजिक समस्या से सम्बंधित उलझनों के चित्रण तथा कही-कही उसके सुलझने का संकेत देते हुए एकांकी का गठन होता है। आज के समस्या-संकुल जीवन में ऐसे एकांकी बड़े प्रभावपूर्ण और भावोत्तेजक सिद्ध होते है। हास्य एकांकी एकांकी में हास्य-विनोद का पूत रहता है, एकांकीकार ऐसे घटना-चक्र तथा ऐसे विचित्र मनमौजी पात्रो की सृस्टि करता है , जिससे संवाद पाठक और दर्शक के चित्त में एक प्रकार की गुदगुदी जागते हुए उसे हँसाते चलते है। मनोरंजन और नयी स्फूर्ति के प्रेरक ऐसे एकांकी बड़े लोकप्रिय होते है। इनमे प्रायः सरल, सहज और उत्तेजनयुक्त वातावरण का निर्वाह होता है।

आ) व्यंग्य एकांकी में हास्य- विनोद के पुट के साथ-साथ व्यक्ति, समाज अथवा परिवार की किसी विषमता अथवा विडंबना के प्रति तीखा और चुटीला व्यंग्य होता है। एक-एक घटना-व्यापर और संवाद का एक-एक शब्द बाह्य आवरण के पीछे छिपकर झांकती हुई अनेक ग्रंथियों और प्रतिक्रियाओं का रोचक तथा सांकेतिक पर्दाफाश करता चलता है। ऐसे एकांकियों की भाषा-शैलियों दुहरे अर्थ की व्यंजना करती हु पग-पग पर एक नए रहस्य का उद्घाटन करती चलती है।

विचारात्मक एकांकी किसी विशेष बौद्धिक दृश्टिकोण की अभिव्यक्ति करता है। इसके पात्र अपने निजी विचारो को नाटकीय रोचकता के साथ व्यक्त करते हुए विशेष समाधान की ओर संकेत करते है। वैज्ञानिक एकांकी आज के विज्ञानं-जगत की किसी पहेली को लेकर प्रयोगशाला के वातावरण की झलक संवादों के माध्यम से देते है तथा व्यवहार-जगत में विज्ञानं की चर्चा को मनोरंजक रूप प्रदान करते है डॉ धर्मवीर भारती का 'सृस्टि का आख़िरी आदमी' इसी प्रकार का एकांकी है। अथवा निष्कर्ष ग्रहण करने का दायित्व पाठक या दर्शक पर छोड़ देता है। जैसे- 'मानव-मन' (सेठ गोविंददास)

इ) शैली अथवा शिल्प की डरती से

शैली अथवा शिल्प की डरती से एकांकी को चार कोटियों में बांटा जा सकता है-

(i) स्वप्न रूपक (फैंटेसी) ((ii) प्रहसन (iii) काव्य एकांकी (iv) रेडियो-रूपक।

स्वप्न रूपक अर्थात अतिकल्पना प्रधान एकांकी में एकांकीकार बहुत दूर तक अपनी कल्पना का सहारा लेता है। डॉ रामकुमार वर्मा का ' बादल की मृत्यु' ऐसा ही एकांकी है। प्रहसन में व्यंग्यात्मक ढंग से व्यंग-विनोद और परिहास की सृस्टि की जाती है।

भारतेन्दु हरिश्चंद्र का प्रहसन 'अंधेर नगरी' प्रसिद्ध है। काव्य एकांकी का माध्यम काव्य होता है। वह छंदबद्ध,तुकांत और अतुकांत रूप में हो सकता है। काव्य एकांकी में आवश्यक है कि उसमे नाटकीयता और कवित्त दोनों हो। उदयशंकर भट्ट का 'तारा', भगवतीचरण वर्मा का 'कर्ण ' और सुमित्रानंदन पंत 'रजत शिखर' काव्य एकांकी है। रेडियो-रूपक आज का बहुत ही लोकप्रिय प्रकार है। इन एकांकियों की रचना आकाशवाणी पर प्रसारण के लिए की जाती है। इनमे ध्वनि-विशेष के द्वारा अभिनय और क्रिया-व्यापारों का निर्वाह होता है। यहाँ पर श्रोता आँख का काम कान से लेते है। विशेष प्रकार की ध्वनियों को सुनकर वे विशिष्ट दृश्य एवं भाव की कल्पना करके इन एकांकियों है।

रचना-विधान के अनुरूप एकांकी के एक दृश्यीय, एक पात्रीय तथा अनेक पात्रीय जैसे भेद भी संभव है। एक पात्रीय एकांकी वे है जिनमे केवल एक ही पात्र अपनी विशिष्ट कलां से कई पात्रो के संवाद एवं क्रिया-व्यापारों का अभिनय करने में समर्थ होता है। मुख्यतः रेडियो-रूपक के दो भेद होते है- ध्वनि रूपक और वृत्त रूपक। ध्वनि रूपक की कथावस्तु वृत्त रूपक की कथावस्तु से भिन्न होती है। ध्वनि रूपक में केवल ध्वनि का महत्त्व होता है तथा वृत्त रूपक संवाद के बीच-बीच में बहुत-सा वर्णन सूत्रधार के माध्यम से दिया जाता है। एकांकी के उपयुक्त प्रकारो के अतिरिक्त अन्य भेद-विभेद व्यक्तिगत और सामाजिक रुचि के अनुरूप किये जा सकते है। वैषम्य एकांकी, विद्रूपएकांकी, फीचर, मालावत एकांकी, दुःखान्त एकांकी, मेलोड्रमैटिक (अति नाटकीय) एकांकी, व्याख्यात्मक एकांकी, आदर्शकमूलक एकांकी, अनुभूतिमय एकांकी, यथार्थवादी एकांकी, कलावादी एकांकी, प्रगति एकांकी आदि अनेक प्रकार की चर्चा भी की जा सकती है।

एकांकी का उद्भव और विकास

आधुनिक एकांकी का जन्म

आधुनिक एकाकी एक स्वतन्त्र विधा के रूप में प्रगति कर रही है। वैसे तो भारत के प्राचीन काव्य में इसका संकेत मिलता है। जैसे-अंक, वीथी, प्रहसन आदि किन्तु आधुनिक एकांकी को इनसे जन्मी विधा नहीं माना जाता।

दोनों में अन्तर यह है कि भारतीय काव्य से अंक, वीथी, प्रहसन तथा अन्य विधाओं को जिस प्रकार प्रस्तुत किया गया है वह आधुनिक एकांकी के प्रस्तुतीकरण, उसके कथ्य तथा शिल्प से भिन्न है। इसे भी पढ़ें :अंधेर नगरी की नाट्य विशेषताओं के आधार पर समीक्षा कीजिए ।

आधुनिक एकाकी का जन्म 'मिरेकल्स' और 'मॉरेलिटीज' जैसे नाटक रूपों से माना जाता है। ये नाटक धर्म-प्रचार के लिए खेले जाते थे। अंग्रेजी साहित्य में शेक्सपीयर के लम्बे नाटक अपन यौवन पर थे। इन नाटकों के बीच-बीच में विनोदपूर्ण 'इन्टरल्यूड' (अन्तर्नाटक) खले जाते थे।

इन्हीं इन्टरल्यूडों में आधुनिक एकांकी के जन्म की झलक मिलती है। उन्नीसवीं शताब्दी में लम्बे नाटकों के प्रस्तुतीकरण के मध्य दर्शकों के मनोरंजन के लिए एक प्रकार के प्रहसन खेले जाते थे। इन प्रहसा को 'कर्टन रजर' (पट उत्थानक) कहा जाता था। सच तो यह है कि इसी 'कर्टन रेजर' को आधुनिक एकांकी का जन्मदाता कहा जाता है।
सन् 1903 में 'मंकीज पॉ' (बन्दर का पंजा) कर्टन रेजर के रूप में खेला गया था जो बहुत सफल हुआ। इसके पश्चात् इब्सन, शॉ तथा ओ नील जैसे अंग्रेज नाटककारों ने इस विधा में पर्याप्त सुधार किया तथा इसे प्रहसन से हटाकर गम्भीर विषयों के लिए उपयुक्त सिद्ध किया।

उद्भव और विकास-अध्ययन की सुविधा के लिए आधुनिक हिन्दी एकांकी को तीन भागों में बाँटा जा सकता है-

1. प्रारम्भ काल, 2. विकास काल और 3. स्वातंत्र्योत्तर काल।

इसे भी पढ़ें :अंधेर नगरी के उद्देश्य पर टिप्पणी लिखिए

1. **प्रारम्भ काल**-इस काल का आरम्भ भारतन्दु युग से माना जाता है। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के रूप में एक एसे व्यक्तित्व ने जन्म लिया जिसने हिन्दी को प्रत्येक क्षेत्र में आगे बढ़ाया। उसका जीवन दर्शन एकदम नदीन या। उनकी हिन्दी के प्रति सेवाएँ अविस्मरणीय हैं।

उन्होंने वैदिकी हिंसा, हिंसा न भवति' लिखकर हिन्दी एकांकी के जन्म का प्रारम्भ किया तो भी इस एकांकी की रचना में संस्कृत नाटक की झलक है, तथापि इसमें एक नयेपन का भी समावेश है
जो पुरानी परिपाटी को त्यागकर नवीन मार्ग का अनुसरण करने को आतुर था। न तो ये नाटक संक्षिप्त थे, न इसमें संकलनत्रय का निर्वाह था, न ये नाटक आरम्भ, संघर्ष तथा चरम-सीमा के शिल्प विधान का स्पर्श करते थे, किन्तु तो भी ये नाटक प्राचीन लोक से (परम्परा से) हटकर चलने का संकेत देते थे।
इस युग के नाटककारों में भारतन्दुजी, प्रतापनारायण मिश्र, राधाकृष्णदास, बदरीनारायण चौधरी, अम्बिकादत्त व्यास तथा बालकृष्ण भट्ट आदि का नाम प्रमुख हैं। -
इसे भी पढ़ें :अंधेर नगरी का सारांश

2. **विकास कला**-बीसवीं शताब्दी का आरम्भ हिन्दी के विविध विकास का काल माना जाता है। दीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में एकांकी लिखे तो गये, किन्तु या तो वे कोरे अनुवाद थे या भावानुवाद ये। उन पर बंग तथा मराठी और सबसे अधिक अंग्रेजी का प्रभाव था। धीरे-धीरे हिन्दी से यह प्रभाव हटता गया।

सन् 1939 में बाबू जयशंकर प्रसादजी का 'एक घुट' प्रकाशित हुआ। यह एकांकी के एकदम निकट की वस्तु थी। कथावस्तु में प्रभाव था। संकलन त्रय की स्थिति भी स्पष्ट यी तथा प्रस्तुति का दृष्टिकोण भी भारतेन्दु युग से भिन्न तथा विकसित था।

इसी काल में गुरुदेव रवीन्द्र के एकांकी प्रकाश में आये। उनकी 'मुक्तधारा' ने एक नये मार्ग के खुल जाने तथा विकास के नये आयामों का संकत दिया। इसी समय इब्सन, शॉ, सिंह, बेरी, ओ नील तथा गाल्सवर्दी व एकांकी के क्षेत्र में नये प्रयोग किये। इन प्रयोगों के लिये स्थान खोजने में कठिनाई नहीं उठानी पड़ी।

स्कूलों, कॉलों व यूनिवर्सिटियों में मंच तैयार थे। रचनाकारों के सामने एक विशाल और उपयोगी क्षेत्र था। अतः एकांकी की कला शनैः-शनैः निखरती चली गई। इसी काल में रेडियो ने भी एकांकी के विकास में अभूतपूर्व योगदान दिया। इसे भी पढ़ें :अंधेर नगरी से क्या शिक्षा मिलती है।

फीचर तथा रिपोर्ताज की ध्वनि के माध्यम से अपने पाठकों तक पहुँचाने में इस काल का अद्भुत सहयोग है। इस काल में सतेन्द्र का 'कुणाल', पृथ्वीनाथ शर्मा का 'दुविधा', राजकुमार वर्मा का 'पृथ्वीराज की आँखें' व भुवनेश्वर का 'कारवाँ' प्रसिद्ध है। इन्हीं के साथ-साथ श्री अश्क, श्री विष्णु प्रभाकर, श्री उदयशंकर भट्ट, श्री जगदीशचन्द्र मायुर, श्री एस. पी. खत्री आदि ने अपनी कृतियाँ हिन्दी में भेंट की।

3. **स्वातंत्र्योत्तर काल**-स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात एकांकी में नये परिवर्तन आये। आज का एकांकी अपने शिल्प विधान में अपने चरम की ओर पूर्ण सफलता के साथ बढ़ता जा रहा है। वह प्रगति के नये आयामों का स्पर्श कर रहा है। उसमें हास्य के साथ मानव-मन का गहन विश्लेषण भी सम्मिलित हो गया है।

आज का लेखक मनोविज्ञान, घुटन तथा आदमी की रोजमर्रा (नित्य प्रति) की जिन्दगी से जूझ रहा है। उसके सामने आदमी अपनी सम्पूर्ण विविधताओं के साथ रचनाकार के सामने हैं। आज का एकांकीकार पश्चिमी विधा 'एसई के साथ-साथ चल रहा है। इस क्षेत्र में श्री धर्मवीर भारती, मोहन राकेश, मुद्राराक्षस, विनोद रस्तोगी, शंभुनाथसिंह, नरेश मेहता, विपिन अग्रवाल, शान्ति मेहरोत्रा अपना पूरा सहयोग दे रहे हैं।

ऐतिहासिक विकास और वर्गीकरण
प्रतिनिधि रचनाएँ और रचनाकार
समसमायिक सामाजिक सांस्कृतिक समस्याएँ और
हिन्दी का समकालीन गद्य साहित्य

11.2 रेडियो नाटक

रेडियो एक दूरभाष यंत्र है जिस यंत्र के माध्यम से कोई भी सन्देश को आवाज के रूप में एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाया जाता है। नाटक दृश्य माध्यम में प्रस्तुत किया जाता है लेकिन इसमें श्रव्य माध्यम में प्रस्तुत किया जाता है। रेडियो द्वारा प्रचार या किसी संदेश के लिए जो नाटक लिखे जाते हैं उसे रेडियो नाटक कहते हैं। यह दृश्य नहीं होता, श्रव्य होता है।

एक तरह से यह अंधेरे का ही नाटक होता है। अदृश्य अंधकार ही इसका रंगमंच है। दर्शक नाटक देख नहीं सकता, लेकिन सुन सकता है। पर नाटक सुनकर एक मानसी की बिम्ब अवश्य बनता है। मन की आंख सब कुछ देख लेती है। चांदनी का दृश्य उपस्थित होने पर जैसी चांदनी देखी है वैसी ही चांदनी कल्पना में दिखाई पड़ती है।क्योंकि यह श्रव्य है इसलिए रेडियो नाटक की कुछ सीमाएं भी है। नाट्यशाला में प्रस्तुत होने वाले नाटकों में देश, काल और स्थान का बंधन होता है, परंतु रेडियो नाटकों में इस प्रकार का कोई बंधन नहीं होता।

उसमें ध्वनियों के माध्यम से दृश्य उपस्थित होते हैं। डॉ मधुकर गंगाधर लिखते हैं - "रेडियो नाटक की कुछ सीमाएं हैं जिनसे होकर इसे गुजरना होता है। इसकी पहली सीमा है कि यह केवल माइक के भरोसे जीता है। सिर्फ माईक ही इसको व्यक्तित्व और जीवन देता है। दूसरी बड़ी सीमा यह है कि यह केवल सुना जाता है इसका माध्यम श्रवण है। एक श्रोता को बांधे रखने के लिए इसके पास शब्दों के अलावा कोई साधन नहीं है। तीसरी बात यह है कि रेडियो सेटस से निरंतर कार्यक्रम चलते हैं इस बीच रेडियो नाटक का प्रसारण होता है। इसलिए इसके श्रोता सिनेमा के दर्शकों की तरह टिकट कटा कर एक जगह जमा होकर इसका इंतजार नहीं करते। इसका श्रोता तो परिवारिक गोरखधंधा में भी फँसा हो सकता है।"

1. रेडियो नाटक की संरचना
2. रेडियो नाटक के तत्व
3. रेडियो नाटक के परिभाषा
4. रेडियो नाटक के प्रकार

1. रेडियो नाटक की संरचना-

रेडियो नाटक की सफलता उसके प्रसारण में ही है क्योंकि रेडियो नाटकों को रंगमंचीय रूप में प्रस्तुत करने की परंपरा नहीं है। इसलिए इसकी संरचना का सवाल उसके प्रसारण से संबद्ध है।

रेडियो नाटक की संरचना के आधारभूत तत्वों का उल्लेख डॉक्टर मधुकर गंगाधर ने अपनी पुस्तक "भारतीय प्रसारण विविध आयाम" में इस प्रकार किया है -

1. शीर्षक - रेडियो नाटक में सर्वाधिक महत्वपूर्ण उसका शीर्षक है। शीर्षक ऐसा आकर्षक एवं जीवंत हो कि श्रोता सुनकर ही प्रभावित हो जाए। इसके लिए आवश्यक है कि रेडियो नाटक के शीर्षक सरल उच्चारण योग्य, समझने लायक, रोचक तथा नवीन हो।

2. प्रारंभ - किसी भी चीज का प्रारंभ ही महत्वपूर्ण होता है। रेडियो नाटक का प्रारंभिक कुछ ऐसा होना चाहिए कि वह कलात्मक हो। रेडियो नाटक का प्रारंभ संगीत से होता है उससे श्रोता के लिए एक वातावरण तैयार होता है उसके बाद प्रारंभिक संवाद ऐसा हो जो गत्यात्मक हो। उसमें ऐसी रफ्तार हो जो श्रोताओं को बांधकर रखें और यह रफ्तार संवेदक हो आक्रामक ना हो।

3. विषय - रेडियो नाटक के लिए किसी भी विषय का चुनाव किया जा सकता है पर हमें ध्यान रखना चाहिए श्रोताओं के अनुकूल ही विषय का चयन करें। सही विषय का चयन से कार्यक्रम उपयोग हो जाता है। मुख्य रूप से रेडियो नाटक के लिए निम्नांकित विषय लिए जा सकते हैं -

1. सामाजिक
2. ऐतिहासिक
3 सेक्स
4. राजनीतिक
5. रोमांचक
6. हास्य

4. दृश्यांतर - रेडियो नाटक में दृश्यांतर या दृश्य परिवर्तन में अधिक रुकावट नहीं होती है किंतु इतना तो ध्यान रखना ही चाहिए कि एक दृश्य तभी बदला जाए जब वहां अनुकूल वातावरण बनाकर अपनी बातें कह चुके हैं। अत्यंत छोटे दृश्यों द्वारा नाटक जमता नहीं है उसी तरह अत्यंत लंबी दृश्यों के कारण श्रोता बोर हो जाने होने लगता है। अतः इस पात्रों को लेकर एकरस्ता तोड़ी जाए और कथा में गति दी जाए।

6. संवाद - संवाद ही रेडियो नाटक है। संवाद के अतिरिक्त रेडियो नाटक में ध्वनि और संगीत भी सहायता करते हैं किंतु संवाद के बिना रेडियो नाटक प्राण हीन हो जाता बात का ध्यान रखना चाहिए। रेडियो नाटक में निम्नांकित ढंग से दृश्यांतर किया जाता है-

1. चुप्पी
2. क्रमागत लोप (फेडिंग)
3. प्रवक्ता
4. ध्वनि प्रभाव
5. संगीत और
6. प्रतिध्वनि, अनुगूंज (इकोज)

5. पात्र - नाटक में पात्रों का बड़ा महत्व है। इसलिए पात्रों के निर्माण एवं प्रसूति के लिए रेडियो नाटक लेखक को, अत्यंत सावधान रहना चाहिए। जहां तक हो सके कम पात्र रखे जाएं। रेडियो नाटक में केवल आवाज का ही महत्व है अतः अधिक पात्र एक साथ उपस्थित न किए जाएं तो अच्छा है।

साथ ही पात्रों के व्यक्तित्व को शब्दों द्वारा उखाड़ना चाहिए, क्योंकि यह वीडियो नाटक है जिसमें शब्द और ध्वनि का महत्व है। शब्द के बिना रेडियो नाटक की कल्पना भी नहीं की जा सकती। अतः टाइपचरित्रों के अनुकूल भाषा दी जाए। उसे वास्तविक जीवन के अनुरूप बनाने की चेष्टा की जाए। प्रमुख पात्र लगातार और अधिक देर तक वे बोलते हैं। बीच-बीच में छोटे और सहायक है। संवाद में चुप्पी, कसाव, तेजी, तीखापन आदि होना चाहिए। इसलिए संवाद में तीन शब्द रखने योग्य हैं - 1. संक्षिप्त, 2. सरल, 3. साफ। इन तीनों शब्दों का पालन करने से संवाद महत्वपूर्ण बन जाता है।

रेडियो नाटक में रंगमंच पर प्रस्तुत होने वाले नाटकों की भांति पात्र सामने नहीं रहते हैं अदृश्य रहते हैं इसलिए संवाद इतना जीवंत और प्रभावी हो कि वह पात्रों को पूरी तरह उपस्थित कर सकें। पात्रों के आने जाने की सूचना भी संवादों के द्वारा ही दी जानी चाहिए। जैसे कोई पात्र जो पहले से मौजूद है, एक आने वाले पात्र के बारे में कहना- यह लो कौन भीम आ रहा है, भीम कहने से आगंतुक का एक नक्शा को उभर जाता है।

इसी प्रकार आने जाने की गतिविधि का विवरण भी संवादों द्वारा ही दी जाए। हर संवाद वातावरण और घटनानुक्रम के अनुसार लिखे जाएं। संवेदना के क्षण में छोटे-छोटे वाक्य और कम शब्दों में बोलना चाहिए। प्रत्येक वाक्य, प्रत्येक शब्द साफ़ और तथ्य पूर्ण होना चाहिए। "नरो वा कुंजारोवा" की स्थिति रेडियो नाटक के लिए उचित नहीं है। प्रश्नवाचक, आश्चर्य बोधक, फुसफुसाहट कराह आदि बिल्कुल वास्तविक जैसे हो। अगर यह थोड़ा भी अस्वाभाविक हुए तो रेडियो नाटक का महत्व कम हो जाता है।

7. ध्वनि संगीत - रेडियो नाटक में संगीत और ध्वनि श्रोता को अधिक प्रभावित करते हैं। इससे भावात्मक आवेग उत्पन्न किया जाता है। ध्वनि से चित्रमयता लाने की कोशिश करनी चाहिए। मुख्य रूप से इनके प्रयोग के उद्देश्य इस प्रकार हैं -

1. मानसिकता की तैयारी
2. प्रवाह की रक्षा
3. चित्रमयता
4. वातावरण निर्माण और
5. उत्सुकता की रक्षा

लेकिन एक बात हमेशा याद रखना चाहिए कि ये तमाम बातें नाटक के लिए पूरक रूप में आती हैं। जैसे - किसी खूबसूरत लड़की के शरीर पर गहने। अतः उसकी एक सीमा होनी चाहिए। सीमा से आगे जाने पर हास्यास्पद स्थिति पैदा हो जाती है।

डॉक्टर चंद्र प्रकाश मिश्र के अनुसार रेडियो नाटक लेखन के लिए उनके द्वारा कहे गए निम्नलिखित बिंदुओं पर हम संक्षेप में प्रकाश डाला चाहेंगे। वे इस प्रकार हैं-

1. नाटक का बीज
2. स्थापत्य और कथानक - अ) कथानक का निर्माण ब) कथानक निर्माण के बाद
3. चरित्र
4. दृश्य संयोजन
5. आरंभ, विकास और अंत
6. रेडियो नाटक के उपकरण - अ) भाषा ब) संवाद स) नैरेशन द) ध्वनि प्रभाव इ) संगीत उ) उद्देश्य

1. नाटक का बीज - सैमुएल सेल्डन के अनुसार नाटक के पाँच प्रमुख स्रोत हैं - कोई मूड या मनोदशा कोई सत्य, कोई स्थिति, कोई कहानी और चरित्र ये सब नाटक की विषय हो सकते हैं।

नाटक का बीज कहीं से भी प्राप्त किया जा सकता है अध्ययन से अनुभव से, समाज से, आसपास के जीवन से आदि, किंतु उनको हूबहू उतार देने से नाटक नहीं बनता उसे काट-छांट कर, तराश कर उसमें जोड़ घटाकर नाटक बनाना पड़ता है।

2. स्थापत्य और कथानक - रेडियो नाटक में दृश्य तत्व नहीं होता अतः उसका कथानक अधिक सरल होता है। आधे घंटे का रेडियो नाटक आदर्श माना जाता है। उसके अंको का सवाल नहीं है। एक दृश्य भी रह सकता है और अनेक दृश्य भी। संकरलनत्रय के बंधन से मुक्त होता है। विषय चाहे कैसा भी हो किंतु उसका प्रभान्विति बनी रहे।

3. चरित्र - पात्र सजीव होने चाहिए। सजीव पात्र विश्वसनीय होते हैं किंतु यह तभी संभव है जब पात्र के कार्यों संवादों, संवेगों आदि में सामंजस्य बना रहे।

4. दृश्य संयोजन - रेडियो नाटक में दृश्यों की संख्या का कोई बंधन नहीं है। नाटक में एक दृश्य भी हो सकता है और अनेक दृश्य भी हो सकते हैं। दृश्य छोटे भी हो सकते हैं और बड़े भी। किसी दृश्य में 10 सेकंड लग सकते हैं और किसी में 5 मिनट। यह सब नाटक के प्रयोजन और कथावस्तु के द्वारा निर्दिष्ट होते हैं।

5. आरंभ विकास और अंत - रेडियो नाटक का प्रारंभ संगीत से होता है। संगीत कैसा हो इसका चुनाव करना प्रोड्यूसर का काम है। उसके बाद नाटक का प्रारंभ पात्रों की किसी बेचैनी, विवशता या मनोवैज्ञानिक कारणों के आधार पर करना चाहिए। ऐसे प्रारंभ से नाटक के कार्य व्यापारों के विकास को स्वतः दिशा मिलती जाती है। नाटक का अंत नाटककार से बड़ी सूझबूझ की अपेक्षा रखता है।

6. रेडियो नाटक के उपकरण - रेडियो नाटक के उपकरण, भाषा, संवाद, नैरेशन ध्वनि प्रभाव, संगीत और उद्देश्य हैं। इसकी चर्चा पूर्व में की जा चुकी है। जहां तक रेडियो नाटक के उद्देश्य का प्रश्न है - रेडियो नाटक का उद्देश्य मनोरंजन के साथ-साथ मनुष्य के आंतरिक जीवन को चित्रित करना है।

रेडियो नाटक के तत्व

इसके लिए 3 तत्वों का सहारा लिया जाता है।रेडियो नाटक में ये 3 तत्व महत्वपूर्ण है

- भाषा
- ध्वनि
- संगीत

इन तीनों के कलात्मक संयोजन से विशेष प्रभाव उत्पन्न किया जाता है। भाषा केंद्र में है और या ध्यातव्य है कि भाषित शब्द की शक्ति लिखित सबसे अधिक होती है और शब्द प्रयोग ऐसे हो जिन का उच्चारण अभिनय संपन्न हो सके। यहां वाचिक अभिनय की ओर संकेत है। प्रसंग वश यहां उल्लेखनीय है कि **अभिनय चार प्रकार का माना गया** है-

१. अंगिक
२.आहार्य
३.सात्विक
४.वाचिक

केवल वाचिक अभिनय इस श्रव्य माध्यम पर हो सकता है।

संगीत सामान्यता दृश्य परिवर्तन के लिए उपयोग में आता है। यह संवाद के बीच के अंतराल को भरने के लिए भी होता है। और नाटक की विषय वस्तु और कथ्य के अनुरूप वातावरण के निर्माण के लिए भी। यह वातावरण अदृश्य होता है इसलिए संगीत की आवश्यकता और भूमिका और बढ़ जाती है। शब्दों के माध्यम से तो वातावरण का सृजन होता ही है संगीत का योगदान भी विशिष्ट होता है। चिड़ियों का चहचहाना, सुबह का संकेतक होता है विविध भारतीय की सिगनेचर ट्यून से भी सुबह का आभास कराया जाता है । प्लेटफार्म का शोर गाड़ियों के हॉर्न की आवाज कांच का टूटना या तेज हवाओं का प्रभाव ध्वनि की विशेषताओं के माध्यम से उत्पन्न किया जाता है। भाषा संगीत और ध्वनि तीनों के समन्वित और कलात्मक प्रयोग से श्रोता की कल्पना शक्ति को जागृत करते हुए उसके मानस में दृश्य रचा जाता है। इस प्रकार के दृश्य की रचना श्रोता की कल्पनाशील ग्रहण क्षमता पर भी निर्भर है।

रेडियो नाटक के लेखन क्रम में रचनाकार अत्याधिक कल्पनाशील हो सकता है। उसके लिए कोई सीमा नहीं है, ना दृश्य की, ना समय की और ना स्थान की। इस प्रकार किसे नाटक के अनिवार्य पक्ष के रूप में देखा जाता है वह संकलनत्रय रेडियो नाटक के लिए महत्वपूर्ण नहीं रह जाता।

ऊपर कहा गया है कि रेडियो नाटक के लिए समय की कोई सीमा नहीं है। रचना के संदर्भ में या बात सही है लेकिन प्रसरण अवधि के संदर्भ में सही नहीं है। या माना जाता है कि श्रोताओं के ध्यान केंद्र की सीमा होती है। इसलिए सामान्यतः नाटक 30 मिनट की अवधी का हो बहुत लंबा ना हो।

कल्पना का तत्व महत्वपूर्ण है। कल्पना का महत्व तीन स्तरों पर आवश्यक उपयोगी और कलासृजन में सहायक है। ये तीन मुख्य स्तर है -

1. नाटककार का रचनाकर्म
2. प्रस्तुतकर्ता की सृजनात्मकता
3. श्रोता की कल्पनाशीलता

श्रव्य नाटक सबसे पहले नाटक करके मानस के दृश्य रूप में घटित होता है। इसके बिना संवाद क्रम में दृश्य रचना नहीं की जा सकती दूसरा पक्ष प्रस्तुतकर्ता का है संगीत और ध्वनि प्रभाव का पक्ष इसमें शामिल है। प्रस्तुति क्रम में कैसे संगीत और कैसा ध्वनि प्रभाव अपेक्षित है। इसका चयन निर्धारण प्रस्तुतकर्ता के माध्यम से होता है। तीसरा पक्ष अनिवार्यतः श्रोता का है। उसकी कल्पनाशीलता के बिना वंचित प्रभाव का ग्रहण करना संभव नहीं।

ध्वन्यांकन के क्रम में कई तरह की व्यक्तियों का सहारा लिया जाता है। प्रकारान्तर से यह माइक्रोफोन आवाज ध्वनि और संगीत का रचनात्मक उपयोग है जैसे पात्र का बोलते हुए माइक्रोफोन से दूर हट जाना ऐसा प्रभाव उत्पन्न करता है कि जैसे पात्र दूर या बाहर या कहीं और जा रहा हो। इसे फेड आउट कहा जाता है। इसके विपरीत हैं

फेड इन। इसमें पात्र दूर से बोलते हुए माइक्रोफोन के निकट आता है। रेडियो नाटक के माध्यम से अनंत की यात्रा संभव है। जैसे देश या स्थान की कोई सीमा नहीं वैसे ही काल की भी सीमा नहीं। **30 मिनट** के नाटक में शताब्दियों का अंकन हो सकता है। 1 ईसवी शताब्दी से अकबर के युग तक का सफर संवादों ध्वनि प्रभाव और संगीत के माध्यम से सहज संभव है। कम साधनों से अत्याधिक प्रभाव उत्पन्न करने की क्षमता रेडियो नाटक में है।

यह अन्य नाटकों की अपेक्षा गतिशील नाटक है जैसे ऊपर कहा गया है शताब्दियों का सफर संवाद के कुछ टुकड़ों के माध्यम से किया जा सकता है। दूर तक फैली धरती शब्दों के दायरे में है। श्रव्य माध्यम का यह नाटक नाटक के कार्य व्यापार को मानस के धरातल पर बड़ी सहजता से उतार सकता है। इसके साथ ही से 2 दिशाओं में बड़ी संस्था से की जा सकता है। भाषा के माध्यम से शब्दों के धरातल से बाह्य दृश्य विधान तो होता ही है। आंतरिक मानसिक द्वंद के अंकन में भी उतना ही सफल होता है। यही कारण है कि **इससे अंतर्मन का नाटक भी कहा जाता है।** मंच पर स्वागत कथन अटपटा और अस्वीकार्य लगता है। या कला अनुभूति और सौंदर्य अनुभूति का मार्ग और उद् करता है यही स्वागत कथन रेडियो नाटक में स्वाभाविक लगता है। व्यक्ति मन के अंकन के लिए मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में चेतना प्रवाह शैली अपनाई जाती है। रेडियो नाटक इस शैली का प्रभावशाली उपयोग करता है। इस शैली के अंतर्गत अतीत वर्तमान भविष्य किसी भी दिशा में यात्रा संभव है।

जिन रचनाकारों ने रेडियो नाटक के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान किया है। उनमें से कुछ ये है- **सिद्धनाथ कुमार, उदय शंकर भट्ट, भगवतीचरण वर्मा, गिरिजाकुमार माथुर, भारत भूषण अग्रवाल और धर्मवीर भारती।** धर्मवीर भारती का गीतिनाट्य अंधा युग पहली बार रेडियो से ही प्रसारित किया गया।

परिभाषा :

सिद्धनाथ कुमार के अनुसार

दृश्य सीमाबद्ध है अदृश्य सीमाहीन। रेडियो नाटक अदृश्य है फलतः इसका क्षेत्र सीमाहीन है।

सिद्धानाथ कुमार के अनुसार

जिस चित्रण के लिए उपन्यासकार को अनेक पृष्ठों की आवश्यकता होती है जिन दृश्यों के लिए दृश्य नाटकों, यथार्थवादी रंगमंच, टीवी और फिल्म को अनेकानेक साधनों की अपेक्षा होती है। उन्हें श्रव्य नाटक न्यूनतम साधनों से चित्रित कर देता है एक वाक्य में कहे तो रेडियो नाटक मितव्ययी नाटक है।

सिद्धनाथ कुमार के रेडियो नाटकों का संकलन है पर अभी भी कुंवारी है उनका अशोक नाटक भी रेडियो के लिए उपयुक्त है इसमें अशोक का आंतरिक अंकित चित्रित है।

प्रोफेसर वचर कहते हैं सब अपनी उच्चारित शक्ति से वंचित होने पर अपने मुद्रित रूप में केवल अर्ध्दजीवित रहते हैं।

रामकुमार वर्मा रेडियो नाटक को ध्वनि **नाटक** कहते हैं।

रेडियो नाटक के प्रकार :

1. नाटक क. मौलिक ख. अनूदित ग. रूपान्तरित
2. एक पात्री नाटक
3. झलकी
4. फैंटसी
5. गीति नाट्य
6. धारावाहिक नाटक

7. रेडियो कार्टूंन

1. नाटक :- (क) **मौलिक नाटक** - नाटक , नाटककार की भौतिक सर्जना होती है। किसी भी कथावस्तु केा संवाद , ध्वनि प्रभाव और संगीत तथा रेडियो की तकनीकियों में बांधकर नाट्य रचना की जाती है इसमें नाटककार अपनी कल्पना के रंग भरता है , अपने ही अनुसार पात्रों के चरित्रा की सृष्टि करता है और वातावरण का प्रदर्शन करता है , यह उसकी अपनी कृति होती है।

(ख) **अनूदित नाटक:-** विभिन्न भाषाओं के नाटकों का हिन्दी में अनुवाद करके रेडियो पर उसका प्रस्तुतीकरण किया जाता है। इसके लिए अनुवादक को उस भाषा को पूर्णरूपेण जानकारी होनी आवश्यक है। नाटक में परिवर्तन की स्वतन्त्राता उसे नहीं होती।

(ग) **रूपान्तरित नाटक :-** आकाशवाणी से जब नाटकों का प्रसारण प्रारंभ हुआ था तो अनुदित तथा रूपान्तरित नाटक ही प्रसारित किए जाते थे ,अंग्रेजी , संस्कृत ,बंगला ,मराठी ,गुजराती और हिन्दी के प्रतिष्ठित साहित्यकारों की कृतियों का नाट्य रूपान्तर कर उसकी प्रस्तुति रेडियो पर की जाता थी। रूपान्तरण में रचनाकार का दायित्व बढ़ जाता है। उसे मूल कृति में से उन्हीं अंशों का चयन करना पड़ता है जिसमें नाटकीयता हो। मूल रचना की आत्मा तथा रचनाकार के कथ्य उद्देश्य की सुरक्षा हो , सके नाटक के दृश्यबन्ध में बन्धकर भी रचना का घटनाक्रम वही रहे , प्रारंभ विकास और अन्त में मूल रचना की भांति हो। मूल कथावस्तु को खोजने का प्रयास करे। कुछ संवाद भी मूल रचना से लेने पड़ते हैं और उन्हें रूपान्तरकार अपने लिखे संवादों में इस प्रकार जोड़ देता है कि एकरूपता बनी रहती है। रेडियो की तकनीकियों ध्वनि प्रभाव संगीत आदि द्वारा रूपान्तरित नाटकों का प्रसारण होता है। रूपान्तरण मौलिक नाट् रचना से अधिक कठिन विधा है। इससे एक लाभ यह होता है कि प्रख्यात साहित्यकारों की रचनाएं हर वर्ग के लोग चाव से सुनते हैं , परिचित होते है। अब इस विधा ने स्वतन्त्रा रूप धारण कर लिया है , और रूपान्तकार का प्रतिष्ठा मिल गई है।

2. एक पात्री नाटक या स्वगतनाट्य :- एक पात्री नाटक को अंग्रेजी में मोनोलाग कहते हैं , इस नाटक में मात्रा एक ही पात्रा होता है , जो अपने अन्तद्र्वन्द्व के द्वारा सम्पूर्ण नाटक को उजागर करता है। शेक्सपीयर के नाटकों में मंच सज्जा के परिवर्तन के बीच का जो अन्तराल होता या उसमें एक नैरेटर दर्शकों को मंच से जुड़ा रहने के लिए अपने अभिनय और वाचन का एकल प्रस्तुतीकरण करता था संभवतः उसी से मोनोलाग या एक पात्री नाटक का विकास हुआ। सशक्त संवाद इसके लिए आवश्यक होते है।

3. झलकी (हास्य नाटक):- नाट्यशास्त्रा में हास्य नाटक को प्रहसन कहते हैं और रेडियो में झलकी। इसमें हास्य का प्राधान्य रहता है , इसकी प्रसारण अवधि 5, 10, 15 मिनट होती है। इसकी कथावस्तु काल्पनिक होती है , और हास्य , व्यंग्य से परिपूर्ण होती है। झलकी का प्रांरभ रेडियो से हुआ , प्रख्यात साहित्यकार कमलेश्वर का कहना है कि रेडियो में अगर कोई वार्ताकार न आए अथवा कार्यक्रम में अन्तराल की संभा

वना हो तो उसी समय बैठकर झलकियां लिखा करते थे। लेखक अभिनेता , प्रस्तुतकर्ता सभी रेडियो के होते थे क्योंकि तत्क्षण ही इनका प्रसारण करना होता था।

झलकी रेडियो की एक लोकप्रिय विधा के रूप में स्थापित हेा गई। श्रोता इसे सुनकर रसमग्न हो जाते हैं। इसमें हास्य और व्यंग्य की प्रधानता होती है।

4. फैंटेसी - फैंटेसी से तात्पर्य है प्रती नाटक, इसमें कथा पात्रा ,
वातावरण काल्पनिक होता है इसमें अति मानवीय चरित्रों को उपस्थित
किया जा सकता है। पशु पक्षी , पेड पौधे , मूर्तियां - जड़ वस्तुएँ सभी मनुष्य की भाषा में संवाद बोल सकते हैं। कभी - कभी मानवीय समस्याओं को भी प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्त किया जाता है। प्राकृतिक उपक रणों को मूर्त रूप देकर उनके द्वारा नाटक की प्रस्तुति होती है।

5. गीतिकाव्य या काव्य नाट्य :-

गीतिमय संवाद वाले नाटक को गीतिनाट्य कहते हैं। इसमें संगीत तत्व प्रधान होता है। सम्पूर्ण कथावस्तु गीतिमय संवादों में पिरोई हुई होती है। जिसे पात्रा अपने गायन व वाचिक अभिनय द्वारा प्रस्तुत करते हैं। यह श्रुतिमधुर विधा है।

रेडियो के लिए विशेष रूप से लिखित पहला अंग्रेजी नाटक बी .बी. सी. से 15 जनवरी 1924 को प्रसारित हु आ था - रिचर्ड हयुजेज का ए .कामेडी आफ डेंजर।

6.**धारावाहिक नाटक :**

अभी तक जिन नाटकों का विवेचन किया गया वे अपन में पूर्ण और स्वतन्त्रा होते हैं। इनसे भिन्न धारावाहिक नाट क होते हैं। जेा कई किस्तों में प्रसारित किए जाते हैं। नाटक सम्बन्धी जो बाते कहीं गयी हैं वे इन पर भी लागू होती है। पर कुछेक बातें इनके सम्बन्ध में अलग से कही जा सकती हैं। धारावाहिक नाटक
दो प्रकार के होते हैं। पहला प्रकार उन नाटकों का है जिनमें शीर्षक एक ही रहता है और मुख्य पात्रा भी सब में वहीं रहते हैं पर स्थितियाँ और समस्याएँ बदलती रहती हैं। आइना ,दर्पण ,घर बाहर
आदि नामों से इस तरह के नाटक प्रसारितहोते रहते हैं।इस प्रकार के धारावाहिक नाटक की प्रत्येककडीको एक स्वतन्त्रा नाटक समझना चाहिए और स्वतन्त्रा नाटक की तरह उनमें वस्तु विन्यास
करना चाहिए।

ध्यातव्य यही है कि चूंकि मुख्य पात्रा सबमें एक ही रहते हैं। उनमें
चरित्रिक वैशिष्ट्य की अनिवति रहनी चाहिए। ऐसा नहीं हो कि एक कड़ी में नायक दृढ संकल्प का व्यक्ति हो , और दूसरी में कमजोर पर निर्भर व्यक्ति। चरित्रा की दृष्टि से ऐसा परिवर्तन विश्वसनीय हो तो किया जा सकता है।किसी भी धारावाहिक की दो कड़ियों में पात्रा वही रहें पर उनके चरित्रा बिल्कुल भिन्न हो , इसे प्रशंसनीय नहीं कहा जा सकता। प्रसिद्ध भोजपुरी धारावाहिक लोहासिंह की हर कड़ी में समस्या बदलती है। स्थिति बदलती है। पर लोह सिंह का
विशिष्ट चरित्रा सबमें वही रहता है - सोचने और बोलने का अपना विशेष ढंग,वही शब्दों को तोड़ मरोड कर प्रस्तुत करने की शैली ,जिनके फलस्वरूप उस पात्रा की अपनी पहचान बनी रहती है।

7. कार्टून नाटक :- आजकल रेडियो पर नाटक अत्यन्त लोकप्रिय हो रहे हैं। " इस शब्द का प्रयोग सन् 1972 ई 0 से प्रारंभ हुआ। इसके प्रथम प्रयोगकर्ता कलकता रेडियो केन्द्र के तत्कालीन निदेशक श्री दिलीप

कुमार सेन गुप्ता हैं। उनके अनुसार रेडियो कार्टून, शब्दों द्वारा वही काम करता है, जो अखबारी कार्टून रेखाओं द्वारा" -

दिलीप कुमार सेन गुप्ता का कहना है कि रेडियो कार्टून की अवधि केवल डेढ से दो मिनट के बीच होती है। रेडियो कार्टून की रचना इस तरह की होनी चाहिए कि अखबारों में जो कार्टून मिलते हैं। उसी तरह का ए क हू - ब - हू कार्टून का नक्शा इसी अवधि के अन्दर श्रोताओं की आंखों के सामने खिंच जाए। शब्दों के माध्यम से ही कार्टून नाटक भी बनते हैं। रेडियो नाटक श्रव्य साहित्य की वह विधा है ,जिसका शरीर है प्रसारण, सशक्त संवाद जिसके प्राण हैं जिसे तकनीकि माध्यम से ध्वनि प्रभाव, संगीत, पात्रा तथा सुन्दर कथावस्तु के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। कसी हुई कथावस्तु, सशक्त एवम् मर्मस्पर्शी संवादों के कारण वह श्रव्य होते हुए भी दृश्य नाटकों के गुणों से आपूरित होता है। यदि उपन्यास एक पॉकेट थियेटर है, बिहारी के दोहे गागर में सागर हैं, कहानी द्रुतगति से गन्तव् तक पहुंचाने वाला अश्व है तेा रेडियो नाटक मनोरंजन की मंजूषा है। यह साहित्याकाश में धूमकेतू की भांति आच्छादित होकर श्रोताओं का कौतूहल शान्त करने में, संवेदना से सरोबार करने में पूर्ण सक्षम है।

11.3 रेखा चित्र

किसी भी चित्र के मूल तत्व रेखाएँ होती हैं। ड्राइंग को पढ़ने के लिए अधिक अभिव्यंजक और समझने योग्य बनाने के लिए, इसे विभिन्न पंक्तियों में किया जाता है, जिसकी रूपरेखा और उद्देश्य सभी उद्योगों और निर्माण के लिए राज्य मानक द्वारा स्थापित किया जाता है। ड्राइंग में वस्तुओं की छवियां विभिन्न प्रकार की रेखाओं का एक संयोजन हैं। प्रत्येक ड्राइंग को ठोस पतली रेखाओं के साथ पूर्व-निर्मित करने की अनुशंसा की जाती है। आकार, आयाम, साथ ही परिणामी छवि के लेआउट की शुद्धता की जांच करने और सभी सहायक लाइनों को हटाने के बाद, ड्राइंग को विभिन्न आकृतियों और मोटाई की रेखाओं के अनुसार रेखांकित किया गया है।

1. रेखा चीत्र
2. रेखा चित्र की प्रवृत्ति
3. रेखा चित्र के तत्व
4. रेखा चित्र की विशेषता

रेखा चित्र

रेखा चित्र हिन्दी गद्य साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा है। इसके अनेक पर्याय शब्द है – स्केच, शब्द चित्र, तूलिका चित्र, चरित्र लेखा रेखा चित्र आदि। रेखाचित्र, दृश्य अभिव्यक्ति का एक रूप है और दृश्य कला के अंतर्गत प्रमुख रूपों में से एक है। कार्टून सहित, रेखाचित्र की कई उपश्रेणियां हैं। रेखाचित्र के कुछ तरीके या दृष्टिकोण जैसे, "डूडलिंग" और रेखाचित्र की अन्य अनौपचारिक विधियां जैसे भाप स्नान के कारण बने धूमिल दर्पण पर चित्र बनाना, या "इन्टॉप्टिक ग्राफोमेनिया" का अतियथार्थवादी तरिका, जिसमें सादे कागज पर अशुद्धता के स्थानों पर बिंदु बनाए जाते हैं और फिर इन बिन्दुओं के बीच रेखाएं बनाई जाती हैं, इसे "फाइन आर्ट्स" के रूप में "रेखाचित्र" का हिस्सा

नहीं भी माना जा सकता है। इसी तरह अनुरेखण, कागज के एक पतले टुकड़े पर रेखाचित्र बनाने को, कभी-कभी इसी उद्देश्य के लिए डिजाइन किया गया (अनुरेखण कागज), पूर्व-मौजूद आकृतियों की बाह्य-रेखा के आसपास जो इस कागज़ से दिखती है, फाइन आर्ट नहीं माना जाता, हालांकि यह नक़्शानवीस की तैयारी का हिस्सा हो सकता है। 'रेखाचित्र' के लिए अंग्रेज़ी के शब्द 'ड्रॉइंग' का प्रयोग एक क्रिया और एक संज्ञा, दोनों के रूप में किया जाता है:

- ड्रॉइंग (क्रिया) एक छवि, रूप या आकार बनाने के लिए किसी सतह पर निशान बनाने का कार्य है।
- निर्मित छवि को भी एक ड्रॉइंग (संज्ञा) कहा जाता है। एक त्वरित, अपरिष्कृत रेखाचित्र को एक स्केच के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

रेखाचित्र का सम्बन्ध आमतौर पर कागज पर रेखाओं और टोन के क्षेत्र के अंकन के साथ है। पारंपरिक चित्र मोनोक्रोम थे, या कम से कम उनमें थोड़ा रंग होता था,जबकि आधुनिक रंगीन-पेंसिल के रेखाचित्र, रेखाचित्र और चित्रकला की सीमा तक या उसके पार जा सकते हैं। पश्चिमी शब्दावली में, तथापि, रेखाचित्र इस तथ्य के बावजूद चित्रकला से भिन्न है कि दोनों ही कार्यों में समान माध्यमों का प्रयोग होता है। शुष्क माध्यम, जिसका सम्बन्ध आम तौर पर रेखाचित्र से होता है, जैसे चॉक, उसका प्रयोग पैस्टल चित्रकारी में किया जा सकता है। रेखाचित्र को ब्रश या कलम के प्रयोग से एक तरल माध्यम से किया जा सकता है। इसी प्रकार, समान तरीके से दोनों को किया जा सकता है: चित्रकारी में आम तौर पर तैयार कैनवास या पैनल पर तरल रंग का प्रयोग शामिल होता है, लेकिन कभी-कभी उसी सतह पर पहले एक अधो-रेखाचित्र को बनाया जाता है। रेखाचित्र अक्सर खोजपूर्ण होते है, जिसमें अवलोकन, समस्या समाधान और संरचना पर काफी जोर होता है। रेखाचित्र को एक पेंटिंग की तैयार करने में नियमित रूप से प्रयोग किया जाता है, जिसे बाद में धुंधला कर दिया जाता है।

रेखाचित्र मे लेखक कम से कम शब्दों मे सजीवता भर देने का प्रयास करता है और उसके छोटे-छोटे पैने वाक्य तीव्र एवं मर्मस्पर्शी होते हैं। महादेवी वर्मा ने अपने आश्रित सेवकों को ही नही बल्कि पशुओं को भी रेखाचित्र के माध्यम से अमर बना दिया हैं। रेखाचित्र गद्य साहित्य की आधुनिक विधा है।

रेखाचित्र शब्द अंग्रेजी के 'स्क्रेच' शब्द का अनुवाद है तथा दो शब्दों रेखा और चित्र के योग्य से बना है। जिस विधा में क्रमबद्धता का ध्यान न रखकर किसी व्यक्ति की आकृति उसकी चाल-ढाल या स्वभाव का, किन्हीं विशेषताएंओं का शब्दों द्वारा सजीव चित्रण किया है, रेखाचित्र कहलाती है। रेखाचित्र शब्द चित्रकला का है जिसका अर्थ ऐसा खाका जिसमें क्रमबद्ध ब्यौरे न दिए गए हों उसी के अनुकरण पर लिखना रेखाचित्र कहलाता हैं। इसी प्रकार थोड़े से शब्दों मे किसी व्यक्ति, घटना, स्थान या वस्तु को चित्रित कर देना कुशल रेखाचित्रकार का ही काम है। रेखाचित्र मे लेखक कम से कम शब्दों मे सजीवता भर देने का प्रयास करता है और उसके छोटे-छोटे पैने वाक्य तीव्र एवं मर्मस्पर्शी होते हैं। महादेवी वर्मा ने अपने आश्रित सेवकों को ही नही बल्कि पशुओं को भी रेखाचित्र के माध्यम से अमर बना दिया हैं।

रेखा चित्र की परिभाषा

रेखा चित्र शब्द अंग्रेजी के " स्केच" शब्द का अनुवाद है तथा दो शब्दों **रेखा** और **चित्र** के योग से बना है। इस विधा में क्रम बंधुता का ध्यान रखकर किसी व्यक्ति की आकृति उसकी चाल ढाल यह स्वभाव का, किन्हीं

विशेषताओं का शब्द द्वारा सजीव चित्रण किया है, उसे रेखा चित्र कहलाते है। हिंदी में रेखाचित्र के पर्याय रूप में व्यक्ति चित्र, शब्द चित्र, शब्दांकन आदि शब्दों का प्रयोग भी होता है, परंतु प्राया विद्वान इस विधा को रेखाचित्र नाम से अभिहित करते हैं।

रेखा चित्र की प्रवृत्ति :

नगेन्द्र लिखते हैं, **रेखाचित्र** का विषय निश्चय ही एकात्मक होता है उसमें एक व्यक्ति या एक वस्तु की उद्दिष्ट रहती है। कहानी में एक डायमेंशन और बढ़ जाती है। यह अतिरिक्त डायमेंशन विषय के अन्तर्गत होती है। कहानी का विषय एकात्मक नहीं रह सकता, उसमें द्वैत भाव होना चाहिए, अर्थात् एक व्यक्ति अपने में कहानी नहीं बन सकता। रेखाकित्र की प्रवृत्ति विस्तार में न होकर तीव्रता में होती है।

आधुनिक काल में अनेकों रेखाचित्र लिखे गये। इस क्षेत्र में बनारसी दस चतुर्वेदी , महादेवी वर्मा , राम वृक्षा बेनीपुरी , प्रकाश चंद्र गुप्त ,कन्हैयालाल मिश्र ,'प्रभाकर' आदि का विशेष योगदान है। बनारसी दस चतुर्वेदी का 'रेखाचित्र' महादेवी वर्मा का 'अतीत के चलचित्र' 'स्मृति की रेखाएँ' और 'शृंखला की कड़ियाँ' रामवृक्ष बेनीपुरी का' माटी की मूरते' तथा 'गेहूँ और गुलाब' प्रकाश चंद्र गुप्त' और 'नये स्केच तथा रेखाचित्र' 'कन्हैयालाल मिश्र के भूले बिसरे चित्र' आदि का महत्वपूर्ण स्थान है।

रेखाचित्र के तत्व अथवा गुण

- रेखाचित्र एक ऐसी साहित्यिक विधा है, जिसमें अन्य गद्य विधाओं की कोई-न-कोई विशेषता समाहित है। फिर भी इसके तत्वों में विषयसंबंधी एकात्मकता, अंर्तमुखी चारित्रिक विशेषता, संवेदनशीलता, संक्षिप्तता, विश्वसनीयता, प्रतिकात्मकता को लिया जा सकता है। **रेखाचित्र के तत्व** अथवा गुण **रेखाचित्र** एक ऐसी साहित्यिक विधा है, जिसमें अन्य गद्य विधाओं की कोई-न-कोई विशेषता समाहित है। ...
- 1 विषयसंबंधी एकात्मकता ...
- 2 अंर्तमुखी चारित्रिक विशेषता ...
- 3 संवेदनशीलता ...
- 4 संक्षिप्तता ...
- 5.विश्वसनीयता ...
- 6.प्रतिकात्मकता

रेखा चित्र जीवन एवं जागत के बाह्य और अंतः दोनों को सर्वांग जानने का प्रयत्न करता है। अतः मानवता के तथ्यों को उद्घाटित करने के लिए निम्नलिखित तत्वों का सहारा लेता हैं :

1. कथ्य अथवा आलंबन
2. चरित्रांकन
3. संकेतात्मकता
4. भाषा शैली , अभिधा , लक्षण और व्यंजना
5. उद्देश्य

कथ्य अथवा आलंबन :

रेखा चित्र की प्रमुख **विशेषताएँ** निम्नांकित हैं-

(1) **रेखाचित्र** में लेखकीय प्रतिभा और सूक्ष्म निरीक्षण का उपयोग होता है। (2) **रेखाचित्र** में गति की व्यंजना स्थल ही नहीं, सूक्ष्म रूप में भी होती है। (3) शब्द-रेखाओं से चित्र-रचना की जाती है। पाठक को अपनी कल्पना के अनुसार इस शब्द-रेखा में रंग भरने का अवसर प्राप्त रहता है। रेखा चित्र की विशेषताएं यह होती है कि इसमें साहित्यकार अपनी कल्पना या अनुभूति का अलग से कोई रंग नहीं भरता, जिस व्यक्ति, वस्तु या दृश्य का वर्णन करना है, उसका हू-ब-हू चित्र अंकित कर देता है। रेखा चित्र वर्णन-प्रधान संस्मरण है किंतु इनकी चित्रात्मकता संस्मरण से पृथक कर देती हैं।

रेखा चित्र की विशेषता विस्तार में नहीं तीव्रता में होती है। रेखाचित्र पूर्ण चित्र नहीं है-वह व्यक्ति, वस्तु, पटना आदि का एक निश्चित विवरण की न्यूनता के साथ-साथ तीव्र संवेदनशीलता वर्तमान रहती है। इसीलिए रेखा चित्रांकन का सबसे महत्वपूर्ण उपकरण है, उस दृष्टि बिंदु का निर्धारण, जहां से लेखक अपने वण विषय का अवलोकन कर उसका अंकन करता है। इस दृष्टि से व्यंगचित्र और रेखा चित्र की कलाएं बहुत समान है। दोनों में दृष्टि की सूक्ष्मता तथा कम से कम स्थान में अधिक से अधिक अभिव्यक्ति करने की तत्परता परिलक्षित होती है।

11.4 संस्मरण

स्मृति के आधार पर किसी विषय पर अथवा किसी व्यक्ति पर लिखित आलेख **संस्मरण** कहलाता है। यात्रा साहित्य भी इसके अन्तर्गत आता है। संस्मरण को साहित्यिक निबन्ध की एक प्रवृत्ति भी माना जा सकता है। ऐसी रचनाओं को 'संस्मरणात्मक निबंध' कहा जा सकता है। व्यापक रूप से संस्मरण आत्मचरित के अन्तर्गत लिया जा सकता है। किन्तु संस्मरण और आत्मचरित के दृष्टिकोण में मौलिक अन्तर है। आत्मचरित के लेखक का मुख्य उद्देश्य अपनी जीवनकथा का वर्णन करना होता है। इसमें कथा का प्रमुख पात्र स्वयं लेखक होता है। संस्मरण लेखक का दृष्टिकोण भिन्न रहता है। संस्मरण में लेखक जो कुछ स्वयं देखता है और स्वयं अनुभव करता है उसी का चित्रण करता है। लेखक की स्वयं की अनुभूतियाँ तथा संवेदनायें संस्मरण में अन्तर्निहित रहती हैं। इस दृष्टि से संस्मरण का लेखक निबन्धकार के अधिक निकट है। वह अपने चारों ओर के जीवन का वर्णन करता है। इतिहासकार के समान वह केवल यथातथ्य विवरण प्रस्तुत नहीं करता है। पाश्चात्य साहित्य में साहित्यकारों के अतिरिक्त अनेक राजनेताओं तथा सेनानायकों ने भी अपने संस्मरण लिखे हैं, जिनका साहित्यिक महत्त्व स्वीकारा गया है।

इतिहास[संपादित करें।

संस्मरणों को साहित्यिक रूप में लिखे जाने का प्रचलन आधुनिक काल में पाश्चात्य प्रभाव के कारण हुआ है। किन्तु हिन्दी साहित्य में संस्मरणात्मक आलेखों की गद्य विधा का पर्याप्त विकास हुआ है। संस्मरण लेखन के क्षेत्र में हमें अत्यन्त प्रौढ तथा श्रेष्ठ रचनायें हिन्दी साहित्य में उपलब्ध होती हैं।

विषय सूची :

1 स्वरूप एवं परिभाषा

2 हिन्दी साहित्य में संस्मरण का उद्भव एवं विकास

3 संस्मरण के तत्व – 1 वर्ण्य विषय 2. पात्र एवं चरित्र चित्रण

3. परिवेश 4. भाषा शैली

4 संस्मरण के प्रकार

5 संस्कारण की विशेषताएँ

स्वरूप एवं परिभाषा

आधुनिक गद्य साहित्य में संस्मरण साहित्य का अपना एक विशिष्ट स्थान है। संस्मरण शब्द की व्युत्पति स्मृ धातु में सम् उपसर्ग तथा ल्युट प्रत्यय लगने से हुई है जिसका शाब्दिक अर्थ है सम्यक् रूप से स्मरण करना। भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने संस्मरण शब्द को अपने-अपने ढंग से परिभाषित किया है। आगे यहाँ कुछ विद्वानों की परिभाषाएँ दी जा रही है-

(1) डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत के अनुसार, ''भावुक कलाकार जब अतीत की अनन्त स्मृतियों में से कुछ रमणीय अनुभूतियों को अपनी कोमल कल्पना से अनुरंजित कर व्यंजनामूलक शैली में अपने व्यक्तित्व की विशेषताओं से विशिष्ट कर रोचक ढंग से यथार्थ रूप से प्रस्तुत कर देता है, तब उसे संस्मरण कहते हैं।''

(2) बाबू गुलाबराय संस्मरण के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखते है कि '' वे (संस्मरण) प्रायः घटनात्मक होते हैं, किन्तु वे घटनाएँ सत्य होती है और साथ ही चरित्र की परिचायक भी उनमें थोडा सा चटपटेपन का भी आकर्षण होता है। संस्मरण चरित्र के किसी एक पहलू की झाँकी देते है।''

अन्य परिभाषाएँ **(3)** डॉ . शान्ति खन्ना के अनुसार, ''जब लेखक अतीत की अनन्त स्मृतियों में से कुछ रमणीय अनुभूतियों को अपनी कोमल कल्पना से अनुरंजित कर व्यंजनामूलक संकेत शैली में अपने व्यक्तित्व की विशेषताओं से विशिष्ट कर रमणीय एवं प्रभावशाली रूप से वर्णन करता है, तब उसे संस्मरण कहते है।''

(4) डॉ . शिवप्रसाद सिंह ने संस्मरण की व्याख्या नये ढंग से की है ''संस्मरण ललित निबन्ध का बहुत ही लोकप्रिय प्रकार है। बीते काल और घटना को बार-बार दुहाकर न सिर्फ मनुष्य संतोष पाता है, बल्कि वह अपने वातावरण में घटित समसामयिकता की अतीत के चित्रों से तुलना करके अपने को जाँचता-बदलता रहता है। संस्मरणात्मक निबन्ध मुख्य तथा महान व्यक्तियों के सानिध्य में अपने को तथा समाज को रखकर देखने की नई दृष्टि देते है।''

स्मृति के आधार पर और स्वयं के अनुभवों के आधार पर जो लिखा जाता है। उसे संस्मरण कहते हैं। संस्मरण में लेखक जो कुछ स्वयं देखता है और स्वयं अनुभव करता है उसी का चित्रण करता अथवा करवाता है। संस्मरण लेखन की एक परंपरागत विधा है ओर साहित्य में भी इसका विशेष महत्व है।

संस्मरण का तात्पर्य है सम्यक अर्थात जब लेखक स्वंय की अनुभूत की गई घटनाओं का व्यक्ति या वस्तु का मार्मिक वर्णन अपनी स्मृति के आधार पर करता है, तो वह संस्मरण कहलाता है।

हिन्दी साहित्य में संस्मरण का उद्भव एवं विकास :

संस्मरण- अर्थ और स्वरूप- व्युत्पत्ति की दृष्टि से **संस्मरण** शब्द 'स्मृ' धातु में सम् उपसर्ग एवं ल्युट् प्रत्यय लगने से बना है। इस प्रकार संस्मरण का शाब्दिक अर्थ है सम्यक् स्मरण। सम्यक् का अर्थ है पूर्णरूपेण। इस प्रकार संस्मरण का शाब्दिक अर्थ है किसी व्यक्ति, घटना, दृश्य, वस्तु आदि का आत्मीयता और गम्भीरतापूर्वक रचे गये इतिवृत्त अथवा वर्णन ही संस्मरण कहलाते है।

लेखक अपने निजी अनुभवों को कभी किसी व्यक्ति के माध्यम से व्यक्त करता है तो कभी घटना, वस्तु या क्रियाकलाप के माध्यम से। ये घटनाएँ एवं क्रिया-व्यापार कभी किसी महान व्यक्ति के साथ जुडे होते हैं या कभी किसी सामान्य व्यक्ति के साथ।

ये घटनाएँ चाहे जिसके साथ क्यों न जुडी हों, किन्तु लेखक सदैव उनके माध्यम से ऐसे मानव गुणों को तलाशता रहता है जो मनुष्य को जड एवं यांत्रिक बनने से रोकते हैं, जो हमारे जीवन के सामने एक अनुकरणीय एवं महनीय आदर्श प्रस्तुत करते है।

संस्मरण एक अत्यन्त लचीली साहित्य-विधा है। इसके अनेक गुण साहित्य की अन्य अनेक विधाओं में भी रचे-बसे है। इसका एक स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि इसे तथा रेखाचित्र, जीवनी, रिपोर्ताज आदि अन्य साहित्य रूपों को प्रायः एक ही समझा जाता रहा है। हिन्दी साहित्य का इतिहास में संस्मरण और रेखाचित्र को प्रायः एक-दूसरे के साथ जोडकर देखने की प्रवृत्ति रही है।

इसका दुष्परिणाम यह हुआ है कि जिन रचनाओं को रेखाचित्र की संज्ञा दी गयी है, उनमें से अधिकांश ऐसी हैं जो केवल संस्मरण की संज्ञा पाने की अधिकारिणी है।

संस्मरण तथा रेखाचित्रों में साम्य की अपेक्षा वैषम्य अधिक है। इन दोनों विधाओं में प्रथम अन्तर तो यही है कि संस्मरण केवल अतीत का ही हो सकता है जबकि रेखाचित्र के संदर्भ में ऐसा नहीं कहा जा सकता है- वह वर्तमान का भी हो सकता है और यदि सर्जक के अन्तर्मन में भविष्य का कोई निभ्रांत चित्र हो तो वह उसे भी रेखाओं में समेट सकता है।

संस्मरण के तत्व

संस्मरण अतीत पर आधारित होता है इसमें लेखक अपने यात्रा , जीवन की घटना , रोचक पल , आदि जितने भी दुनिया में रोचक यादें होती है , उसको सहेज कर उन घटनाओं को लिख रूप में व्यक्त करता है। जिसे पढ़कर दर्शक को ऐसा महसूस होता कि वह उस अतीत की घटना से रूबरू हो रहा है उसको आत्मसात कर रहा है।

1वर्ण्य विषय: संस्मरण में लेख प्रत्यक्षा दर्शी रहता है । वह जन दृश्यों एवं घतनाओं से अधिक प्रभावित होता है , कालान्तर में उन्हें अपनी स्मृति के आधार पर कलात्मक ढंग से लिखता है । लेखक की यह स्मृतियाँ इतिहास एवं सती के लिए रहती हैं । संस्मरण में कुछ कल्पना का भी अंश रहता है । इसे सौंदर्य की वृद्धि होती है । संस्मरण में लेखक अधिकतर आत्मनिष्ठ होता है किन्तु ईमानदार होना उसकी आवश्यक शर्त है । क्यों कि लेखक अपने निकट का विषय चुनता है । जिसके विषय में उसकी जानकारी और समझ भी पेनी है । अतः उसे सत्य वर्णन ही करना चाहिए । इस प्रकार के सत्य वर्णन में सुसंबद्धता और सुसंगठितता होगी और यह गुण वर्ण्य विषय को रोचक तथा महत्वपूर्ण बनाने में सफल होंगे ।

वर्ण्य विषय-आत्मकथन तथा जीवन फरक दो प्रकार का होता है । यदि लेखक अपने विषय में लिखता है तो उसका साहित्य आत्मकथा के निकट ठहरता है और जब दूसरी पद्धति अपनाता है तो उसकी रचना जीवनी के निकट होती है । कोई भी पद्धति हो लेखक को स्पष्ट कहने का साहस होना चाहिए ।

2 पता एवं चरित्र चित्रण : संस्मरण लेखकों को पत्र और उनके चरित्र चित्रण में विशेष सावधानी बरतनी चाहिए क्योंकि वर्णित पत्र एवं उनके चरित्र से ही कथ्य में सजीवता अति है । संस्मरण के व्यक्तित्व की रोचक अभिव्यक्ति ही उसकी सफलता की कुंजी है । प्रायः संस्मरणकार समग्र जीवन को न लेकर जीवन की कुछ विशिष्ट घतनाओं या कथ्यों को कुछ विशिष्टता के साथ प्रस्तुत कर आकर्षक बना देता है । पत्रों के चरित्रांकन में लेखक अपनी रुचि एवं अभिव्यक्ति प्रयोग करता है । चरित्र चित्रण संस्मरण में वर्णनात्मक होता है । पत्रों को अपनी पात्रता करने का मौका कम ही दिया

जाता है। स्वयं लेखक अपनी ओर से ही चरित्र चित्रण को आकर्षक और स्पष्ट बनता है या पात्र सर्वत्र मौन ही रहे ऐसा भी नहीं होता। इतना अवश्य है कि पत्रों की ओर से लेखक ही अधिक नजर आता है।

3 परिवेश : संस्मरण में परिवेशांकन का भी महत्वपूर्ण स्थान है। राजरानी शर्मा ने इस संदर्भ में कहा है – वातावरण उन परिस्थितियों का संकुल नाम है जिनके पत्रों के संघर्ष करना पड़ता है तथा वर्ण्य विषय विकासोन्मुख होता है। घटना क्रम को ग्राह्य बनाने के लिए परिवेशांकन अत्यधिक महत्व होता है। ग्राह्य बनाने के लिए संस्मरणकार अपने वर्णन को इधर उधर के प्राकृतिक दृशों तथा कथ्यों से लगाए रहता है। किन्तु वर्णात्मकता तभी आती है जब केखक ने स्वयं इससे साक्षात्कार किया हो। यशपाल के संस्मरण इसके विशेष उदाहरण है। स्वतंत्रता संग्राम संबंधी संस्मरण
उनके सहयोगी साथी राजगुरु सहदेव तथा भगतसिंह संबंधी संस्मरण उनके व्यक्तिगत परिचय पर निर्भर है। इसीलिए वे सत्य होने के साथ- साथ रोचक और आकर्षक भी है। संस्मरणकार के सूक्ष्म निरीक्षण परीक्षण का परिचय परिवेशांकन से ही प्राप्त होता है।

4 भाषा शैली : भाषा शैली , भावों की वाहक हैं ही , साथ ही उस कथन विशेष को इस ढंग से प्रतिपादित करती है कि विषय मुकर हो उठता है। इसके अंतर्गत लेखक की भावभिव्यक्ति का ढंग , उसका वाक्य नियोजना , शब्द रचना तथा शक्ति का स्थान एवं विचारों की तरतम्यता होना आवश्यक है तो भाषा को पात्रोनुकूल होना , संस्मरण में अनेक प्रकार की शैलियाँ प्रयोग की जाती है। जैसे –

अ). आत्मकथात्मक शैली आ). निबंधात्मक शैली इ). पत्रात्मकऔर डायरी शैली

अ). आत्मकथात्मक शैली :

यदि लेखक अपने विषय में संस्मरण लिखता है तो आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग किया जाता है। यह रचना संस्मरण की अपेकषा आत्मकथा के अधिक निकट ठहरती है।

आ). निबंधात्मक शैली :

बाबू गुलाब राय ने निबंधात्मक शैली में – 'मेरी असफलताएँ' नामक संस्मरण लिखा। यह शैली निबंधात्मक संस्मरण बनाती है। इसका स्वरूप निबन्धात्मक होता है।

इ). पत्रात्मक और डायरी शैली :

जैनेन्द्र और प्रेमचंद संबंधी कई संस्मरण पात्रात्मक शैली में हैं और राहुल संस्कृत्यायन ने डायरी शैली में संस्मरण लिखे है।

भाषा वास्तव में अभिव्यक्ति का साधन है। संस्मरण की भाषा में प्रसाद गुण के साथ प्रवाह का होना आवश्यक है। भाषा के प्रसाद एवं प्रवाह गुण संस्मरण को सजीव आकर्षक , रोचक तथा महिमापूर्ण बनाते है। भाषा शैली में अलंकारिकता विषय के अनुकूल होना चाहिए। इसकी भाषा शैली में स्वाभाविकता, भावानुकूलता , प्रवाहमयता होनी चाहिए जो प्रत्येक दृष्टि से संस्मरण को रोचक ही बनाएगी।

संस्मरण के प्रकार :

संस्मरण मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं। आत्म **संस्मरण** के केन्द्र में लिखने वाला व्यक्ति मुख्य **होता हैं**। वह अपनी स्मृति से, अपने देखे, सुने या भोगे हुए यथार्थ को लिखता है। जबकि दूसरे से सुन कर लिखे जाने वाले **संस्मरण** में लेखक किसी व्यक्ति से बातचीत करके, उसकी स्मृति को टटोल कर, उसे लिपिबद्ध करता है।

1. आत्म संस्मरण
2. दूसरे से सुनकर लिखे गए संस्मरण

आत्म संस्मरण के केन्द्र में लिखने वाला व्यक्ति मुख्य होता हैं। वह अपनी स्मृति से, अपने देखे, सुने या भोगे हुए यथार्थ को लिखता है। जबकि दूसरे से सुन कर लिखे जाने वाले संस्मरण में लेखक किसी व्यक्ति से बातचीत करके, उसकी स्मृति को टटोल कर, उसे लिपिबद्ध करता है।

संस्मरण भी साहित्य की एक विधा है और बहुत से विद्धानों ने जीवन के अपने अनुभव, अपने संघर्ष और अपनी सफलताओं को साहित्य में संस्मरणों के रूप में लिख कर अमर कर दिया हैं। महादेवी वर्मा की 'स्मृति की रेखाएं' और 'अतीत के चलचित्र' शिवानी की 'जालक', 'कैंजा', तथा नरेन्द्र कोहली की 'स्मरामि' आदि संस्मरण साहित्य की उल्लेखनीय कृतिया हैं।

लेकिन पत्रकारिता में भी संस्मरणों का योगदान कम नहीं है। विशिष्ट अवसरों पर संस्मरणों के आधार पर विशेष सामग्री का प्रकाशन किसी भी अखबार को अलग बना देता है। आजादी की पच्चीसवीं, पचासवीं वर्षगांठ जैसा अवसर हो या किसी बड़ी खेल प्रतियोगिता में कोई खास अवसर, संस्मरणों के आधार पर पाठक को अतीत की जानकारी भी मिल जाती है और वर्तमान के लिए लक्ष्य भी। विश्वकप क्रिकेट को ही लीजिए। इसके आयोजन के दौरान पूर्व विश्वकप विजेता टीम के सदस्यों के संस्मरण पढ़ना किसे अच्छा नहीं लगेगा। इसी तरह किसी विशिष्ट व्यक्ति के जीवन के किसी खास मौके पर उससे जुड़े लोगों के अनुभवों के संस्मरण पाठक को रोचक भी लगते हैं और उसे उनसे कुछ सीखने को भी मिल जाता है।

संस्मरण लेखन एक कला है और इसके लेखन में इस बात का सबसे अधिक ध्यान रखा जाना चाहिए कि जो कुछ लिखा जाए वो सत्य हो। बढ़ा चढ़ा कर लिखी गई बातें या असत्य बातें संस्मरणों की दुश्मन हैं। यह भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि संस्मरणों से किसी भी छवि या मान-मर्यादा को अकारण कोई क्षति न पहुॅंचे। संस्मरणों में इस बात का भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि देश अथवा समाज के व्यापक हितों को हानि पहुंचाने वाली बातें न लिखी जाएं। संस्मरण की भाषा सरल और रोचक होनी चाहिए।

संस्मरण में कहानी की तरह की गति और सरसता होनी जरूरी है। पत्र-पत्रिकाओं में संस्मरण बड़े लेखों के रूप में भी प्रकाशित होते है और एक-एक, दो-दो वाक्यों के रूप में भी इनका इस्तेमाल होता है। कई बार संस्मरणों के छोटे-छोटे अंश, फीचर को रोचक बनाने के लिए भी इस्तेमाल किए जाते हैं। किसी घटना अथवा दुर्घटना से जुड़े समाचारों को विशिष्टता देने के लिए भी उनमें संस्मरणों के छोटे-छोटे अंशों का इस्तेमाल किया जाता है। पत्र-पत्रिकाओं में पत्रकारों के लिए संस्मरण लिखने की कला में माहिर होना इसलिए भी जरूरी है कि इसके जरिए वो किसी भी व्यक्ति से अत्यन्त महत्वपूर्ण जानकारी हासिल कर सकते हैं। जिस तरह संस्मरण लिखना एक कला है उसी तरह संस्मरण हासिल करना भी एक कला है। इसके लिए पत्रकार में धैर्य होना चाहिए। उसे उस व्यक्ति की उपलब्धियों, उसके जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं आदि की पर्याप्त जानकारी होनी चाहिए। उसे इस बात पर अपना पूरा ध्यान केन्द्रित रखना चाहिए कि जिस व्यक्ति से वह संस्मरण सुन रहा है वह मुख्य विषय से भटक न जाए। ऐसा होने से सही जानकारी हासिल करने में अनावश्यक विलम्ब होता है। सुनाने वाले की तो यह इच्छा होती ही है कि वह अपना सारा ज्ञान, सारे अनुभव सामने वाले के सम्मुख उंडेल दे। इसलिए इस बात का खास ध्यान रखा जाना चाहिए कि जानकारी हासिल करने के लिए बात घुमा फिरा कर न पूछी जाए। यह भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि बात ऐसे भी न पूछी जाए कि किसी की संवेदनाओं और भावनाओं को चोट पहूँचे।

चूंकि संस्मरण का अर्थ स्मृति के आधार पर किसी विषय या व्यक्ति पर लिखा आलेख होता है, इसलिए इसमें किसी व्यक्ति पर व्यक्तिगत आक्षेपों से बचा जाना चाहिए ताकि संस्मरण की विश्वसनीयता बरकरार रहे और उससे कटुता भी न पैदा हो। यात्रा साहित्य भी संस्मरण की एक विधा है ।

संस्मरण की विशेषताएँ :

संस्मरण से मिलती-जुलती विविध विधाओं के साम्य-वैषम्य, विषय अध्ययन उपलब्ध संस्मरण साहित्य का चिन्तन-मनन करने के बाद इस विधा के अनेक महत्वपूर्ण विशेषताएँ यथा वैयक्तिकता, जीवन के खण्ड विशेष का चित्रण, सत्यकथा का निरूपण, चित्रोपमता आदि सहज ही मुखर हो उठती है। ये विशेषताएँ ही इस साहित्य रूप के विधायक उपकरण है।

वैयक्तिकता-

चूँकि संस्मरण में लेखक अपने जीवन के किसी ऐसे प्रसंग, ऐसी घटना को निबद्ध करता है जिसे भूल नहीं पाता और जो समय की पर्याप्त धूल जम जाने के बाद भी ताजी बनी रहती है अतएव इसका पहली महत्वपूर्ण उपकरण तो वैयक्तिकता ही माना जाना चाहिए।

हिन्दी के सभी संस्मरण लेखकों ने यह स्वीकार किया है कि उनके स्मृति चित्रों में उनके जीवन-सूत्र भी अनुस्यूत है। उदाहरण के लिए महादेवी वर्मा ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि ''इस स्मृतियों में मेरा जीवन भी आ गया है। यह स्वाभाविक भी था।

अंधेरे की वस्तुओं को हम अपने प्रकाश की धुंधली या उजली परिधि में लाकर ही देख पाते है। उनके बाहर तो वे अनन्त अंधकार के अंश है। मेरे जीवन की परिधि के भीतर खडे होकर चरित्र जैसा परिचय दे पाते हैं, वह बाहर रूपान्तरित हो जायेगा।

फिर जिस परिचय के लिए कहानीकार अपने कल्पित पात्रों को वास्तविकता से सजाकर निकट लाता है, उसी परिचय के लिए मैं अपने पथ के साथियों को कल्पना का परिधान पहनाकर भूरी-सी सृष्टि क्यों करती।

निष्कर्ष :

रेखाचित्र गद्य साहित्य की आधुनिक विधा है। इस विधा मे लेखक रेखाचित्र के माध्यम से शब्दों का ढ़ाँचा तैयार करता है। लेखक किसी सत्य घटना की वस्तु का या व्यक्ति का चित्रात्मक भाषा मे वर्णन करता है। इसमें शब्द चित्रों का प्रयोग आवश्यक है। रेखाचित्रकारों मे महादेवी वर्मा, कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' बनारसीदास चतुर्वेदी, रामवृक्ष बेनीपूरी एवं डॉ . नगेन्द्र विशेप रूप से उल्लेखनीय है ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि संस्मरण-लेखन प्रमुखतः दो रूपों में प्राप्त होता है- इसका एक रूप तो वह है जिसमें लेखक दूसरों के बारे में लिखता है और दूसरा वह जिसमें वह स्वयं अपने बारे में लिखता है। पहले प्रकार के लेखन को रेमिनिसेंस कहते हैं और दूसरे प्रकार के लेखन को मेमोयर। यद्यपि मेमोयर में लेखक अपने बारे में लिखता है, किन्तु यह साहित्यिक आत्मकथा से सर्वथा भिन्न है। यह भिन्नता आकारगत न होकर तत्वगत है।

आत्मकथा में लेखक स्वयं को केन्द्र में रखकर पूरे परिवेश को यानी स्थितियों और व्यक्तियों को देखता है जबकि मेमोयर में संस्मरण को केन्द्र में रखता है और स्वयं उसके आलोक में उद्भासित होता है। इस प्रकार यहीं उनकी अपनी स्थिति गौण हो जाती है, मुख्यतता प्राप्त होती है सम्पर्क में आए व्यक्तियों को। संक्षेप में, यही संस्मरण का स्वरूप है।

अभ्यास के लिए प्रश्न

1. एकांकी की परिभाषा – देते हुए उसके तत्वों पर प्रकाश डालिए।
2. एकांकी के भेदों पर विस्तृत चर्चा कीजिए।

3. रेडियो नाटक क्या होता है? कैसे बनता है ?
4. रेडियो नाटक के प्रकार क्या क्या हैं ?
5. रेडियो नाटक की संरचना पर प्रकाश डालिए।
6. रेखाचित्र की परिभाषा देते हुए उसकी प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए।
7. रेखाचित्र के तत्वों का विवेचन कीजिए।
8. संस्मरण का स्वरूप एवं परिणाम बताइए।
9. हिन्दी साहित्य में संस्मरण का उद्भव कब हुआ ?
10. हिन्दी के महत्वपूर्ण संस्मरणों का उल्लेख कीजिए।

अध्ययन के लिए आधार ग्रन्थ

1. एकांकी कला - डॉ. रामकुमार वर्मा
2. प्रतिनिधि एकांकी - सं. उपेंद्र नाथ अश्क
3. रेडियो नाटक की कला - सिद्धनाथ कुमार
4. हिन्दी रेखाचित्र सिद्धांत और सृजन – अनीता पाण्डे
5. हिन्दी रेखाचित्र – हरवंश लालशर्मा
6. रेखाचिते और संस्मरण - प्रेमचंद
7. हिन्दी रेखाचित्र : सिद्धांत और विकास – माखनलाल शर्मा
8. हिन्दी का संस्मरण साहित्य - राजरानी शर्मा
9. आत्मकथा और संस्मरण - पं . गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी

****

- - डॉ. यम. मंजुला

201HN21

M.A. DEGREE EXAMINATION

SECOND SEMESTER

HINDI

Paper I - **HISTORY OF HINDI LITERATURE**

Time Three Hours Maximum 70 Marks

हिन्दी साहित्य का इतिहास

किन्हीं पाँच प्रश्नों के उत्तर दीजिए ।

सभी प्रश्नों के अंक समान हैं ।

1. (a) आधुनिक काल की सामाजिक सएवं राजनीतिक परिस्थितियों का संक्षिप्त परिचय दीजिए । (14)

(अथवा)

(b) हिन्दी गद्य को विकास के पर्याप्त अवसर देने मे भारतेन्दु युग की देन को स्पष्ट कीजिए ।

2. (a) ठायावादी कविता की मुख्य प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए । (14)

(अथवा)

(b) सुमित्रानंदन पंत की कविताओं की मुख्य प्रवृत्तियों को स्पष्ट करते हुए एक लेख लिखिए ।

3. (a) हिन्दी उपन्यास के विकास में प्रेमचंद के योगदान को स्पष्ट कीजिए । (14)

(अथवा)

(b) हिन्दी कहानी के विकास - क्रम को स्पष्ट करते हुए निबंध लिखिए ।

4. (a) निबंध - कला की दृष्टि से रामचंद शुकल के निबंधों की समीक्षा कीजिए (14)

(अथवा)

(b) मीहन राकेश के नाटकों की विशिष्टता को स्पष्ट कीजिए ।

5. (a) किन्हीं दो विषयों पर टिप्पणी लिखिए । (7)

(i) उपन्यासकार अजेय ।

(ii) नाटककार जयशंकर प्रसाद ।

(iii) कवि मेथिली शरण गुप्त ।

(iv) कवि दिनकरा ।

(b) किन्हीं दो विषयोंपर टिप्पमी लिखिए ।

(i) हालावाद ।

(ii) समस्यानाटक ।

(iii) संस्मरण ।

(iv) रेखाचित्र ।